RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation
USA

वर्ष : 9, अंक : 36
जनवरी-मार्च 2025
मूल्य 50 रुपये

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

कहानी विशेषांक

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

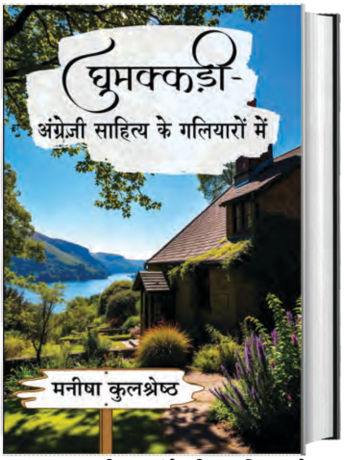

घुमक्कड़ी - अंग्रेज़ी साहित्य के गलियारों में, यात्रा संस्मरण
लेखक - मनीषा कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2025

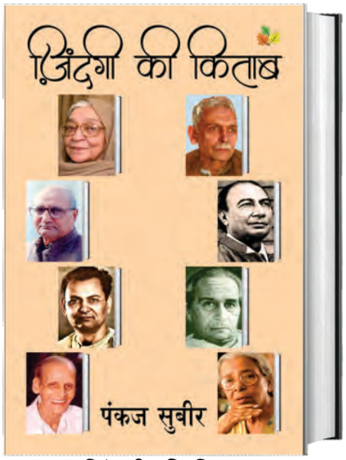

ज़िंदगी की किताब
जीवनी आलेख
लेखक - पंकज सुबीर
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

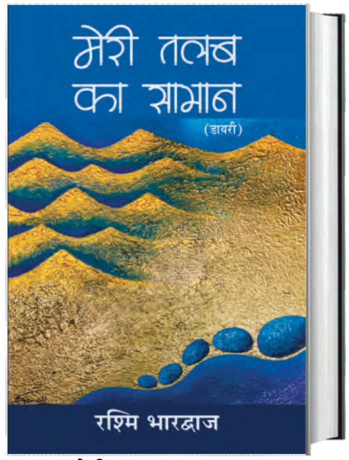

मेरी तलब का सामान
डायरी
लेखक - रश्मि भारद्वाज
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2025

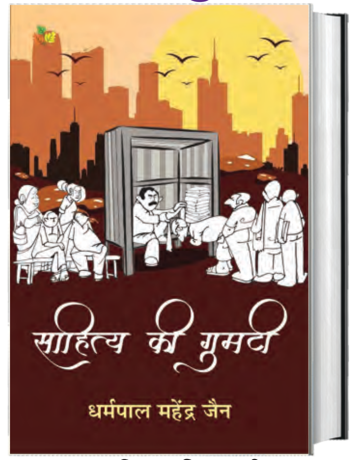

साहित्य की गुमटी
व्यंग्य संग्रह
लेखक - धर्मपाल महेंद्र जैन
मूल्य- 275 रुपये, वर्ष- 2025

गोद उतराई
कहानी संग्रह
लेखक - तेजेन्द्र शर्मा
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

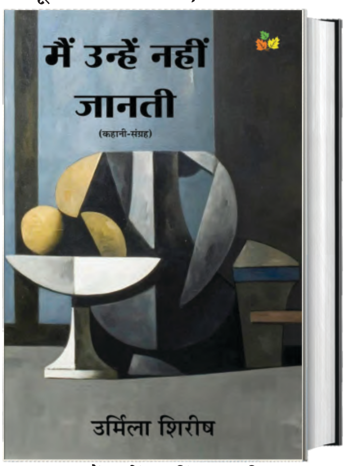

मैं उन्हें नहीं जानती
कहानी संग्रह
लेखक - उर्मिला शिरीष
मूल्य- 275 रुपये, वर्ष- 2025

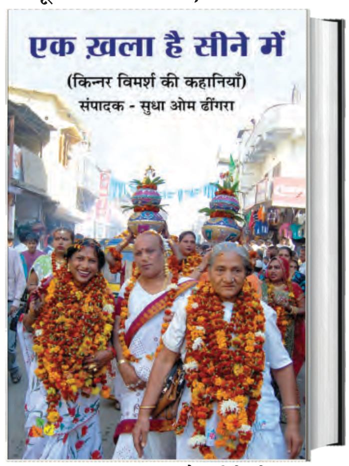

एक ख़ला है सीने में
कहानी संकलन
संपादक - सुधा ओम ढींगरा
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2025

कैसे जीता बीजेपी ने एमपी
रिपोर्ताज
लेखक - ब्रजेश राजपूत
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2025

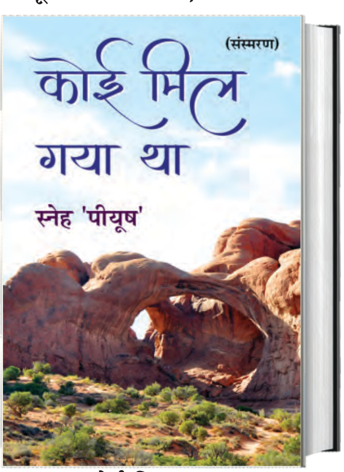

कोई मिल गया था
संस्मरण
लेखक - स्नेह 'पीयूष'
मूल्य- 225 रुपये, वर्ष- 2025

इत्तू सी इरा
डायरी
लेखक -मुकेश नेमा
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

हवाओं से आगे
कहानी संग्रह
लेखक - रजनी मोरवाल
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

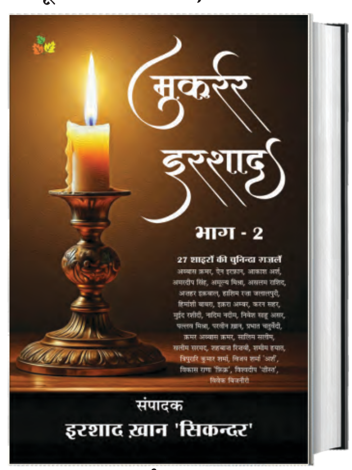

मुकर्रर इरशाद
ग़ज़ल संकलन
संपादक - इरशाद ख़ान सिकंदर
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार)
व्हाट्सएप- +91-6265665580, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

Dhingra Family Foundation USA

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 9, अंक : 36, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2025
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

रेखाचित्र
अशोक अंजुम

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 36

जनवरी-मार्च 2025

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

साक्षात्कार

हम साहित्य में गहरे और व्यापक होने की जगह उथले हो रहे हैं
कहानीकार-उपन्यासकार मनीषा कुलश्रेष्ठ से आकाश माथुर की बातचीत 8

विस्मृति के द्वार

स्मृतियों के झरोखे से
अरुणा सब्बरवाल 13

कथा-कहानी

दरवाज़े
उर्मिला शिरीष 17

एक धड़कन चूक गई
लक्ष्मी शर्मा 22

किसी और मिट्टी की बनी
डॉ. रमाकांत शर्मा 26

रेड सिग्नल
सुधा आदेश 32

मैं तुम्हें गाता रहूँगा
रंजना अनुराग 36

दस्तूर
विवेक द्विवेदी 40

सूरज की तरह नहीं ढलते पिता...
विनीता राहुरीकर 44

यूँ ही चलते चलते
छाया श्रीवास्तव 48

प्रायश्चित
राजा सिंह 52

लघुकथा

सिग्नल
सौरभ सोनी 16

तुरपाई
रचना श्रीवास्तव 31

साहस
वीरेंद्र बहादुर सिंह 47

रानी गोटी
ट्विंकल तोमर सिंह 59

बुझी हुई मोमबत्ती
डॉ. मृदुल शर्मा 62

ललित निबंध

अप्प दीपो भव
डॉ. वंदना मुकेश 56

संस्मरण

स्मृति शेष - ज़ाकिर हुसैन
जब ताल-तलैयों की नगरी में जागा ताल के उस्ताद का तिलिस्म
विनय उपाध्याय 58

ग़ज़ल

जयप्रकाश श्रीवास्तव 55

अशोक 'अंजुम' 67

व्यंग्य

खट्टे-मीठे संपादक जी
धर्मपाल महेंद्र जैन 60

शहरों की रूह

तुर्की यात्रा
प्रतिभा अधिकारी 63

आख़िरी पन्ना 68

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is “Zero”)

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

इतिहास फिर से स्वयं को दोहरा रहा है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

समय से पहले कही गई बातों को समझना कई बार मुश्किल हो जाता है, पर जब वे सही होनी शुरू होती हैं, तब उन बातों के महत्त्व का पता चलता है। यह पढ़ा और सुना है कि इतिहास स्वयं को दोहराता है। यह सही भी हो रहा है, इतिहास फिर से स्वयं को दोहरा रहा है। आज की परिस्थितियों को देखकर तो कुछ ऐसा ही लग रहा है...

एक समय ऐसा भी था जब लोग क़बीलों में बँटे हुए थे और अपने-अपने क़बीले की रक्षा के लिये लड़ते थे। साधन व संसाधन कम थे और उनका युद्ध दो वक़्त की रोटी जुटाने और अपनी रक्षा के लिए होता था। समय अपनी गति से चलता रहा और सृष्टि में भी परिवर्तन होते रहे। क़बीलों में संपर्क और संचार की सुविधाएँ न होने से भौतिक दूरियाँ बहुत होती थीं। अपने अलावा वे दूसरों के बारे में अधिक जानते भी नहीं थे। प्रवृत्ति और मानसिकता में स्वार्थ और क्रूरता थी। समय के साथ जब संपर्क और संचार के साधनों का निर्माण हुआ तो यह दूरी घटने लगी। अमेरिकन और ब्रिटिश इंजीनियर्स ने रेल के निर्माण से पहले भाप के इंजन का निर्माण किया। इससे प्रेरित होकर कारें, ट्रकों और अंत में जहाज़ों का निर्माण हुआ। रेडियो, टेलीविज़न, फिल्मों, समाचार पत्रों और अंतरजाल का आविष्कार भी इन्हीं देशों ने किया। विश्व के देशों की दूरी समाप्त हो गई। लोग एक-दूसरे के बारे में, अलग-अलग समाजों के बारे में जानने लगे। मानवतावादी सोच और रोटी, कपड़ा तथा मकान हरेक का मौलिक अधिकार है, की प्रवृति भी जाग्रत हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि एक-दूसरे से अपरिचय कम हो गया।

18वीं सदी में इंग्लैण्ड ने एक महत्त्वपूर्ण काम किया, नस्लवाद पर एक आधुनिक नज़रिये को विकसित किया। 18वीं सदी के शुरू में इंग्लैण्ड में कई समाचार पत्रों की शुरुआत हुई, जिनमें आज़ादी, समृद्धि और शिक्षा पर लोगों के विचार लिए-दिये गए। जनता की राय इतनी ताक़तवर रही कि सामाजिक और राजनीतिक कई परिवर्तन हुए।

पूरी दुनिया में क़बीला संस्कृति और नस्लवाद उस समय तक रहे, जब तक अमेरिका और इंग्लैण्ड के लोगों ने सोचने का नया तरीक़ा नहीं खोजा। इंग्लैंड के लेखकों ने इन विचारों को बहुत बढ़ावा दिया। जॉन लोके ने बहस की, कि हर मानव का जीवन क़ीमती है, उसका सृजन दूसरे के प्रयोग के लिए नहीं है। डेविड ह्यूम ने लिखा कि सभी मानव एक से हैं। 18वीं सदी के इस अभियान ने विश्व के बहुत से हिस्सों में बदलाव ला दिया जबकि अफ़्रीका और एशिया में क़बीला और नस्लवाद संस्कृति क़ायम रही।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूनाइटेड नेशंस की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य शांति, सुरक्षा और मानवीय अधिकारों तथा देशों को मानवीय सहायता देना है। तब से अब तक तकनीकी प्रगति ने विश्व को एक परिवार की तरह बना दिया है। बहुत से लोगों ने दूसरे देशों में पलायन किया और उन देशों की सभ्यता और संस्कृति को जाना।

औद्योगिकी और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ स्वतंत्रता और मानवता को लेकर कई विचारधाराओं ने जन्म लिया। उनमें कम्युनिज़्म और सोशलिज़्म ने विश्व के कई भागों में पैर पसारे। इन विचारधाराओं ने अल्पसंख्यकों के लिए बहुत काम किया पर अल्पसंख्यकों की सहायता करते-करते बहुसंख्यकों की ज़रूरतों को नज़रअंदाज़ कर दिया गया, जिसके घातक परिणाम भी हुए हैं। ब्राज़ील, रूस, चीन, वेन्ज़्यूवेला और क्यूबा जैसे देशों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति बिगड़ गई है। इन विचारधाराओं की सबसे बड़ी जो कमी सामने आई है, वह है अल्पसंख्यकों को सामान अधिकार दिलवाते हुए उन्हें उनकी ज़िम्मेदारियों के प्रति जागरूक न करना। इससे देशों के सामाजिक और आर्थिक ढाँचे का स्वरूप बिगड़ गया है।

इन समय विश्व के सामने सबसे बड़ी समस्या है देशों के सत्ता प्रदर्शन की। जो उपनिवेश देश बड़ी कठिनाई से आज़ाद हुए थे अब शक्तिशाली देश उन पर अधिकार जताना चाहते हैं। चीन हाँगकाँग के बाद अब ताइवान को अपने अधिकार में लेना चाहता है। रूस यूक्रेन के साथ पूर्वी यूरोप अपने साथ मिलाना चाहता है। यू एस कनाडा, पनामा कनाल, ग्रीनलैंड पर अधिकार चाहता है और कनाडा को यू एस की 51वीं स्टेट बनाने की इच्छा रखता है। देशों की मानसिकता

संपादकीय

बड़ी स्वार्थी हो गई है। मानवीय अधिकारों के लिए लड़ने वाले भी अब अपनी पसंद के लोगों की तकलीफ़ पर झंडे उठाते हैं। मानवता की रक्षा के लिए नहीं। अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियाँ यूनाइटेड नेशंस, डब्लूएचओ अपनी विश्वसनीयता खो चुकी हैं, वे भी अपनी पसंद के देशों की बात सुनती और उन्हीं की बात कहती हैं। कहने का भाव है सत्ता हर जगह पर हावी हो गई है। यह कोई नई बात नहीं है। सृष्टि के आरम्भ से ही शक्ति प्रदर्शन की भावना रही है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' भारतीय दर्शन का अभिन्न हिस्सा है, जिसकी विदेशों में वैश्विक परिवार के रूप में अवधारणा की गई थी, वह अब समाप्त हो रही है। आधुनिक तकनीक, उपकरणों और साधनों से लैस देश अपने-अपने स्वार्थ के लिए और स्वयं की प्रभुता को दर्शाने के लिए प्रयत्नशील हैं। जब युद्ध होते हैं और देशों पर अधिकार जमाये जाते हैं तब सबसे पहले मानवता का अंत होता है। त्रासदी यह है कि देशों की राजनीति और सत्ता स्थापना में बेक़सूर जनता मारी जाती है। जिस जनता को लेकर प्रदेशों और देशों की स्थापना हुई होती हैं, उन्हीं की रक्षा और देश की सुरक्षा के नाम पर असंख्य लोग मारे जाते हैं। यह सिर्फ तानशाही नेता ही कर रहे हैं, जिनकी संख्या अब पूरे विश्व में बढ़नी शुरू हो गई है। मानवतावादी भी उनकी ओर ध्यान नहीं देते और समय ही बताएगा कि विश्व का भविष्य क्या होगा ? ऐसा लगता है कि आधुनिक उपकरणों, साधनों, तकनीक से लैस देश, आधुनिक क़बीला प्रवृत्ति की ओर मुड़ रहे हैं, जहाँ उनके बाशिंदे जाकर बसे हैं, अपने देश के साथ वह जगह भी उनकी है, उस जगह को अपने साथ मिलाना चाहते है।

कैलिफ़ोर्निया की आग में झुलसे लोग, यूक्रेन में मर रहे मासूम बच्चे और स्त्रियाँ, गाज़ा के बेघर लोग, बांग्ला देश के पीड़ित हिन्दुओं, विश्व के हर कोने में आपदाओं और किसी भी प्रकार के शोषण से पीड़ित लोगों के साथ शिवना साहित्यिकी तथा विभोम-स्वर की टीम की पूरी संवेदनाएँ हैं...

नववर्ष की आप सबको बहुत-बहुत बधाई !! विश्व में शांति बनी रहे इसकी कामना करते हैं...नव वर्ष का पहला अंक 'कहानी विशेषांक' है... उम्मीद करती हूँ यह अंक आपको पसंद आएगा। आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार रहेगा...

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन के स्टाल पर आपका स्वागत है

स्टाल क्रमांक- 0-13, हॉल क्रमांक- 2

भारत मंडपम, प्रगति मैदान, नई दिल्ली

संपर्क- 9806162184, व्हाट्सएप- 6265665580

अनुकूलन... प्रकृति ने इस गुण को हर प्राणी में डाला है। जैसी परिस्थिति हो उसके अनुसार अपने आप को अनुकूलित कर लो। कीट-पतंगे, पशु-पक्षी... सब अनूकूलन से ही प्रकृति के साथ अपना तादात्म्य बनाये रखते हैं। केवल मानव ही अनुकूलन नहीं सीखा है और प्रकृति को अपने अनुकूल करने का प्रयास करता है।

मित्रनामा

'विभोम स्वर' के अक्टूबर-दिसम्बर 2024 अंक में प्रकाशित विकेश निझावन की कहानी "एक दरवाज़ा नया सा" पर खंडवा में साहित्य संवाद तथा वीणा संवाद के सदस्यों ने चर्चा की। इस चर्चा के संयोजक श्री गोविंद शर्मा तथा समन्वयक श्रीमती राजश्री शर्मा थे।

भावुकता से परिपूर्ण कहानी

विकेश निझावन की 'एक दरवाज़ा नया सा' भावुकता से परिपूर्ण कहानी है। कहानी का कथानक सुगठित एवं उद्देश्यपूर्ण है। पात्रों का चरित्र-चित्रण आधुनिक समाज के धरातल पर ही किया गया है। कहानी की संवाद शैली सरल, सहज एवं बोधगम्य है। कहानी को पढ़कर 'बाग़वान' और 'अवतार' जैसी फ़िल्में स्मरण हो आती हैं। माही ने जब उस बुज़ुर्ग व्यक्ति का दुख देखा तो शायद उसे यही लगा होगा-"दुनिया में कितना ग़म है, मेरा ग़म कितना कम है.." कहानी के माध्यम से लेखक ने समाज की कटु सच्चाई को वर्णित किया है जहाँ मात्र पैसे के लिए ही सगे-संबंधी, रिश्ते-नातेदार अपनेपन का ढोंग करते हैं और रुपये, ज़मीन-जायदाद मिलने के पश्चात् दूध में से मक्खी की भाँति उस व्यक्ति को निकाल कर फेंक देते हैं। जैसा कि मुंशी प्रेमचंद जी की कहानी 'पंच परमेश्वर' में बूढ़ी खाला के साथ किया गया। उनकी बहू ज़मीन की रजिस्ट्री होने के बाद खाने के साथ उन्हें कटु वचन और अपशब्द भी खिलाने लगी। मुंशी प्रेमचंद जी के शब्दों में- "जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज़ तीखे सालन भी देने लगी।" ऐसा ही व्यवहार माही के साथ उसकी सगी बेटी द्वारा कहानी में किया जा रहा है, जो बातों में मिश्री घोलकर धीरे-धीरे उसकी सारी ज़मीन जायदाद हथिया रही है। लेखक ने कहानी में जीवन-दर्शन प्रस्तुत कर दिया है। स्वयं लेखक के ही शब्दों में- "ज़िंदगी भी क्या चीज़ है...व्यक्ति सारी ज़िंदगी लड़ता ही रहता है। कभी दूसरों से कभी अपने से ही। जाने कैसा रणक्षेत्र उग आता है उसके भीतर। अपने ही सवाल, अपने ही जवाब।" कहानी जीवन की व्यथा-कथा को बहुत ही मार्मिक तरीक़े से प्रस्तुत कर रही है- "इस पृथ्वी पर कितने लोग हैं। हर जगह भीड़ ही भीड़ है। फिर भी हर आदमी अकेला है" मानों लेखक कहना चाह रहे हों- क़समें, वादे, प्यार, वफ़ा सब बातें हैं बातों का क्या... कोई किसी का नहीं ये झूठे नाते हैं नातों का क्या.." अंत में कहानी में जो ट्विस्ट आता है उससे कहानी और अधिक रोचक बन गई है। कहानी की नायिका माही को बेटी की दया और सहानुभूति पर आश्रित न छोड़कर लेखक ने उसे एक नई राह दिखाई है। इस नई राह पर नायिका को चलते देखकर पाठक के मन को ख़ुशी होती है। माही और उस बुज़ुर्ग व्यक्ति के मध्य बने उस वैचारिक संबंध को लेखक ने बड़ी ही कुशलता से गढ़ा है। पाठक स्वयं इस रिश्ते को सम्मान और आदर की दृष्टि से देखते हैं। इस अनाम से रिश्ते पर महिलाओं की चुभती हुई बातें, प्रश्नवाचक नज़रें, समाज के उन ठेकेदारों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिन्हें 'चार लोग' कहा जाता है। कृष्ण जी का वह कैलेंडर भी प्रतीकात्मक महत्त्व रखता है। कुल मिलाकर यह कहानी उत्कृष्टता के सभी मापदंडों पर खरी उतरती है।

-प्रीति चौधरी 'मनोरमा',
जनपद बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश

000

एक अच्छी कहानी

विकेश निझावन की कहानी 'एक दरवाज़ा नया सा' एक ऐसी आवाज़ सुना गई, लेखनी से जो हर क़दम चलते, आते-जाते, न जाने किन-किन रास्तों को पार करके, अनेकों डिज़ाइनों में उम्र के घटते-बढ़ते वास्तु से, हर दीवार से, दिशाओं के महत्त्व से, कारीगरों की शिल्पकला से, शोभा हर उस नींव से, खड़े मकान को घर बनाने की सुरक्षा में सैनिक सा, वफादारी सा, आँधियों में, तूफ़ानों में, हर भावना को स्पर्श महसूस करता खुला, तो कभी वर्षों बंद रहने की सज़ा पाता-कभी ख़ुशियों की चाबियों से खोलता, कोई तो ठहर जाएगा मुझे खोल एक दिन... कहानी बहुत कुछ कह भी गई... बहुत कुछ छुपा भी गई। कहानी का लेखन रहस्यमय सा लगा।

-तृप्ति सोहनी, जिला खरगोन, मध्यप्रदेश।

000

मर्मस्पर्शी रचना

विभोम-स्वर में प्रकाशित कहानी 'एक दरवाज़ा नया सा' आजकल वृद्धों की दयनीय स्थिति पर रची गई एक मर्मस्पर्शी रचना है। केंद्रीय पात्र माही अपने जीवन के उत्तरार्ध में अपने पति के नहीं रहने पर बुरी तरह अपनी ही बेटी के द्वारा बार-बार छली और उपेक्षित की जाती है। सब कुछ समझते हुए भी वह इस यंत्रणा भरे जीवन में भी अपने लिए कोई न कोई ख़ुशी का सिरा ढूँढ़ लेती है लेकिन उसकी अपनी बेटी को ही अपने क्षुद्र स्वार्थों के आगे अपनी माँ का यह छोटा-सा सम्मानजनक, शान्तिप्रद जीवन खलने लगता है और लेखक ने इसे चंदन के शब्दों में बड़ी सुंदरता से व्यक्त किया है कि 'क्या नानी तुम भी गेंद की तरह कभी यहाँ, कभी वहाँ।' माही अपनी जिजीविषा के बल पर ही न केवल अपनी परिस्थितियों से लड़ती है अपितु तिलक के लिए भी एक सहारा बनकर उभरती है। यहाँ पर भी समाज का वही रूढ़िवादी रवैया सामने आता है, जहाँ परम्परागत ढाँचों से ऊपर उठकर किसी रिश्ते को समझ पाना समाज के वश में नहीं। चैताली का पुन: माही को विस्थापित करने के प्रयास को नकार कर, अपने लिए एक नया सा दरवाज़ा ढूँढ़ लेना ही इस कहानी के अंत को रोचकता प्रदान करता है। एक अच्छी कहानी के लिए लेखक महोदय को बधाई।

-गरिमा चवरे (रतलाम)

000

हृदयविदारक कथा

विभोम-स्वर की कहानी 'एक दरवाज़ा नया सा' वर्तमान में बड़े बुज़ुर्गों की शोचनीय स्थिति पर लिखी गई एक हृदयविदारक कथा है। कहानी की मुख्य पात्र माही अपने जीवन की सांध्य बेला में अपने पति के नहीं रहने पर बुरी तरह अपनी ही बेटी के द्वारा कई बार छलना और उपेक्षा की शिकार होती है। सब कुछ जानते-बूझते भी वह अपने त्रासद जीवन

में भी अपने लिए कोई न कोई ख़ुशी के सबब की तलाश कर ही लेती है लेकिन उसकी अपनी बेटी की आँखों में माँ का ख़ुद्दारी भरा स्वतंत्र जीवन चुभने लगता है। लेखक ने इसे चंदन के मुँह से यूँ कहलवाया है, 'क्या नानी तुम भी गेंद की तरह कभी यहाँ, कभी वहाँ।' माही अपनी अथक जिजीविषा और संकल्पशक्ति के दम पर ही अपनी परिस्थितियों से लड़ती है, साथ ही अपने पड़ोसी बुज़ुर्ग तिलक के लिए भी संबल बनती है। लेकिन समाज की परंपरावादी और रूढ़िवादी मानसिकता उन्हें चैन नहीं लेने देती। चैताली माही को विस्थापित करने की कोशिश करती है लेकिन माही तिलक के घर में अपनी ठौर ढूँढ़ लेती है।

एक सार्थक कहानी के लिए लेखक महोदय बधाई के पात्र हैं।

-रेणु गुप्ता, जयपुर।

000

अकेलेपन की त्रासद स्थितियाँ

उम्र के उत्तरार्ध में अर्थात् वृद्धावस्था में अकेलेपन के दर्द की त्रासद परिस्थितियाँ अपने सगे ही निर्मित करते हैं... इसी कथ्य पर कहानीकार ने 'एक दरवाज़ा नया सा' कहानी लिखी है।

पति के न रहने पर माही की बिटिया चैताली और दामाद, माही का अपना घर बेचकर माही को स्वार्थवश उसे अपने घर ले जाते हैं, और सबसे ऊपर की छत पर बने छप्परनुमा कमरे में ठहरा देते हैं। माही भी इस लिए ख़ुश हो जाती है कि चलो इस बहाने उसे परिवार में बच्चे मिलेंगे तो अकेलेपन से छुटकारा मिलेगा। लेकिन बरसात में छत से पानी चूने और दीवारों में सीलन होने से उसका दम घुटने लगता है, तब वह नीचे किसी कमरे में आने का कहती है। ऐसी स्थिति में दामाद उसे उस कमरे में ठहराता है, जहाँ गायों का भूसा भरा होता है उसमें एक खिड़की रहती है। माही खिड़की खोल कर बच्चों का खेल देखते हुए अपना मन बहलाने लगती है। बच्चों से बात करने की ललक से वह बच्चों की गेंद पकड़ कर उन्हें कभी लुकाती है, तो उछाल कर उसे दे देती है। चन्दन जो उसका नाती है, उसे कहता है, नानी तुम तो गेंद की तरह हो, कभी ऊपर कभी नीचे... यह पंक्ति कहानी का सच बयाँ कर जाती है। फिर चैताली उसे अपने छोटे शहर के ख़ाली पड़े मकान में माही को शिफ़्ट कर देती है। माही का वहाँ दम घुटते रहने के बावजूद वहाँ आसपास रहने वालों से दिल बहलाने का सोचती रहती है। उसी के घर के पास एक बुज़ुर्ग तिलक राज भी अकेला रहता है। एक दिन उसके खाँसते रहने और उल्टी करने से उसकी आवाज़ सुन माही उसके पास जाकर उसे दिलासा देती है... फिर शनै:-शनै: उनकी मुलाक़ात होती रहती है। मोहल्ले में उनकी ऐसी मुलाक़ातों से कोई ग़लत न समझे इसलिए एक दिन माही बुज़ुर्ग तिलक से कहती है... मैं तेरे पास अब नहीं आ पाऊँगी। वह रुआँसा होकर बस, देखता रहता है। माही इसका भी तोड़ निकालती है। उसके घर के पीछे के कमरे की दीवार की कुछ ईंटें खिसकी हुई हैं, वह ईंटों को हटाकर देखती है, वहाँ से उसे तिलक के घर का नज़ारा दिखता है, वही उसका एक दरवाज़ा नया-नया-सा बन जाता है, जिसमें से वह उस बूढ़े बुज़ुर्ग तिलक को कभी रोटी तो कभी खिचड़ी देने लगती है। फिर उखड़ी हुई ईंट के छेद के ऊपर कृष्ण का कैलेंडर टाँग देती है, ताकि कोई उसे देखे न।

कुछ दिन बाद चैताली रिक्शा लेकर आती है और उसे कहती है, अब तुझे यहाँ से अलग रहना है, यहाँ मेरा बेटा रहकर कॉलेज की पढ़ाई करेगा। माही कहती है, मैं भी उसी के साथ रह लूँगी। चैताली मना करते हुए उसके सामान की पोटली बना कर रिक्शे में चढ़ा देती है, उसी तरह माही को भी रिक्शे में बिठा लेती है। रिक्शा चलने को होते ही माही कहती है, मेरा पैसों का रूमाल रह गया। वह नीचे उतर कर घर का ताला खोलकर पिछले कमरे में जाती है। देर होने से उसकी बेटी चैताली खीजते हुए चिल्लाती है... कहाँ मर गई अम्मा, कहते हुए पिछले कमरे में देखती है... उखड़ी हुई दीवार की ईंटें बिखरी पड़ी है। भगवान् कृष्ण का कैलेंडर नीचे हवा में पड़ा, फड़फड़ा रहा है... माही कहीं नहीं है... यक़ीनन बुढ़ापा कोई पोटली नहीं जिसे जब चाहे उठाया और उसे कहीं भी पटक दिया।

उस दरवाज़े से माही का चले जाना एक नए दरवाज़े का खुलना सा है। सच अकेलेपन की त्रासद स्थितियाँ अपने सगे ही निर्मित कर बुढ़ापे को और कष्टप्रद बना देते हैं। कहानी अच्छी लगी। लेखक को बधाई।

-अरुण सातले, खंडवा।

000

कहानीकार की सफलता

माही की लड़की चैताली के दो लड़के चंदन और बिन्नी हैं। अपने ससुर बाऊ के गुज़रते ही दामाद शमशेर माही के घर का सौदा कर लेता है। घर में बूढ़ी माँ अकेली न रहे अत: चैताली उसे अपने घर ले जाने के लिए आती है। माही को अपने घर से बहुत लगाव था। वह जाना नहीं चाहती थी। अत: वह दीवारों को खुरच कर विरोध जताती है, तिस पर चैताली कहती है कि ये घर कोई प्रेम का पहाड़ नहीं है जो तेरा लिखा हुआ पढ़ने लोग आएँगे।

माही मन ही मन कहती है.. मुई ज़िंदगी भी क्या चीज़ है व्यक्ति सारी ज़िंदगी लड़ता ही रहता है कभी दूसरों से तो कभी ख़ुद से। माही के भीतर एक रणक्षेत्र पैदा हो जाता है, अपने ही सवाल, अपने ही जवाब। इसी कारण माही का पति बाऊ इसी रणक्षेत्र में वीर गति को प्राप्त हो गया और वह बिल्कुल अकेली रह जाती है। निसहाय। घर के बिकने पर प्राप्त धनराशि पर दामाद की नीयत रहती है। घर ले आने पर चैताली अपनी माँ को ऊपर की मंज़िल के हवादार कमरे में ठहरा देती है, जिसमें अच्छी ठंडी हवा आती है जो माही को बहुत पसंद है।

ऊपर वाले इस कमरे में उसे चाय, खाना आदि पहुँच जाता लेकिन उसका दर्द बाँटने कोई भी उसके पास नहीं आता। अत: वह कहती कि केवल ठंडी हवा काफी नहीं, मुझे अपनों की गर्मी की ज़रूरत है। कहानीकार ने इस तरह के बहुत सटीक मुहावरों का इस्तेमाल किया है। एक बार ज़ोर की बरसात आने से उसका कमरा बौछारों से पूरा भीग जाता है, अत: उसे नीचे एक कमरे में शिफ्ट किया जाता है, जो घर के पीछे है, जिसमें कभी

गाय बाँधते थे अत: वह बदबूदार था। खैर! इस कमरे में एक खिड़की थी जिसे खोलने पर अंदर हवा का झोंका आता था। पड़ोस में ही एक वृद्ध तिलक अकेला रहता था। एक दिन माही की उससे मुलाकात हो जाती है। धीरे-धीरे एक दूसरे का दुख-दर्द सुनाने, बाँटने लगे क्योंकि दोनों एक ही नाव के सवार। माही के कमरे की दीवार पड़ोसी तिलक के कमरे से लगी हुई थी। इस कमज़ोर दीवार में से एक-दो ईंटें गिर जाती हैं अत: अब वे दोनों इसी में से बात कर लेते व माही इसी में से उसे चाय, खाना इत्यादि देने लगी। कोई देख न ले अत: माही ने श्रीकृष्ण का एक कैलेंडर उस ओपनिंग पर टाँग दिया था। माही कहती श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की लाज बचाई अब वे मेरी भी लाज रखेंगे। एक बार तिलक की तबियत ठीक नहीं थी अत: वह माही से रात को खाने के लिए खिचड़ी बनाने का कहता है। इस बीच चैताली माही को अपने घर से कहीं अन्यत्र शिफ़्ट करने का आदेश देती है। वह रिक्शे पर माही का सामान रखकर उसे ज़बरदस्ती रिक्शे में बिठा देती है, लेकिन जब चैताली रिक्शे में बैठ जाती है तब माही एक बहाना बनाती है कि वह अपने पैसों का रूमाल भूल गई और यह कहकर वह रिक्शे से उतरकर घर में चली जाती है। कमरे में उस नए दरवाज़े की बहुत सी ईंटें निकाल देती है। जब बहुत देर हो जाती है तो चैताली उसे ढूँढ़ने घर में जाती है लेकिन माही कहीं नहीं मिलती, केवल नए दरवाज़े का किवाड़ बना वह कैलेंडर हवा में फड़फड़ा रहा था और ईंटों का ढेर। अवश्य ही माही वृद्ध तिलक को देखने गई होगी।

कहानीकार ने माही की 'सोशल नीड' को सफलता पूर्वक व्यक्त किया।

-मोरेश्वर मण्डलोई

000

शुरू से अंत तक रोचकता

विभोम-स्वर की कहानी 'एक दरवाज़ा नया सा' में कहानीकार ने पाठकों को बाँधे रखा है। कहानी में पुत्री द्वारा घर बदलने एवं कमरे बदलते समय नायिका माही के मन की ऊहापोह का बख़ूबी चित्रण है। आज के समय की इस गंभीर समस्या को या यूँ कहें कि कटु सत्य से हर आदमी को निपटना है फिर चाहे वह गाँव का हो या शहर का। कटु सत्य से माही के मन की व्यथा को कहानीकार ने बहुत ही सरल शब्दों में पिरोया है।

कहानी में रोचकता शुरू से अंत तक बनी हुई है। कहानी ने हर एक वृद्ध जो कि उस अवस्था में है उनकी समस्याओं के साथ समाधान भी दिया है। साथ ही हिम्मत भी दी कि हर उम्र में आदमी को सक्षम होना अति आवश्यक है।

-मंजिरी "निधि"

000

शानदार रोचक कहानी

विकेश निझावन की कहानी 'एक दरवाज़ा नया सा' का विषय आज के संदर्भ में बिलकुल सटीक है। आज एकाकी वृद्धों की स्थिति सचमुच दयनीय ही है। माही की कहानी भी उन बुज़ुर्गों जैसी ही है जिन्हें समय के साथ अनुपयोगी सामान-सा एक कोने में डाल दिया जाता है। सगी बेटी ही माही का घर बेचकर पहले उसे बेघर करती है फिर अपने घर का एकांत, अनुपयोगी कमरा उसे देती है, माही इस में भी सामंजस्य बैठाती है और ख़ुश रहने की कोशिश करती है, बेटी उसे अपने पुराने मकान में भेज देती है, वहाँ भी माही ख़ुश रहना चाहती है, वहाँ उसे अपने ही जैसा एक एकाकी वृद्ध मिलता है जो बीमार है, माही उसकी सहायता करती है।

कहानी में वृद्धों की समस्या को बख़ूबी दिखाया गया है, कि किस तरह वे अकेलेपन की यातना को झेलते हैं, साथ ही उसका निराकरण भी बताया गया है। भाषा रोचक है, माँ बेटी के संवाद अनौपचारिक और उनकी अपनी भाषा में हैं जो सहज लगते हैं। कहानी के हर पात्र की भूमिका यथोचित है, यहाँ तक कि दामाद जो पृष्ठभूमि में है उसका किरदार भी मज़बूत और उपयोगी है।

कुल मिलाकर ज्वलंत समस्या पर लेखनी चलाने और शानदार रोचक कहानी के लिए लेखक विकेश निझावन को हार्दिक बधाई !

-शशि शर्मा, इंदौर।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

साक्षात्कार

हम साहित्य में गहरे और व्यापक होने की जगह उथले हो रहे हैं

कहानीकार-उपन्यासकार मनीषा कुलश्रेष्ठ से आकाश माथुर की बातचीत

मनीषा कुलश्रेष्ठ
मकान नं. 10, गली नं. 18, सड़क नं. 19
सेंट्रल पार्क, नॉर्थ एवेन्यू बी
वाटिका इन्फोटेक सिटी
जयपुर, राजस्थान 302026
ईमेल- manishakuls@gmail.com
मोबाइल- 9911252907

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर, मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

जन्म- 26 अगस्त 1967

शिक्षा- बी.एससी., एम. ए. (हिन्दी साहित्य)

एम. फिल., विशारद (कथक)

प्रकाशित कृतियाँ-

कहानी संग्रह - कठपुतलियाँ, कुछ भी तो रूमानी नहीं, बौनी होती परछाँई, केयर ऑफ स्वात घाटी, गंधर्वगाथा, अनामा, रंगरूप-रसगंध (51 कहानियाँ), दस कहानियाँ : मनीषा कुलश्रेष्ठ, वन्या, कथा-सप्तक - मनीषा कुलश्रेष्ठ।

उपन्यास- शिगाफ़, शालभंजिका, पंचकन्या, स्वप्नपाश, मल्लिका, सोफिया, त्रिमाया।

बिरजू-लय (कला वैचारिकी पर पुस्तक)

होना अतिथि कैलाश का, घुमक्कड़ी- अंग्रेज़ी साहित्य के गलियारों में (यात्रा वृत्तांत)

प्रेम की उम्र के चार पड़ाव (प्रेम कविताओं का संकलन)

शालभंजिका उपन्यास का डच में अनुवाद, कई कहानियों का अंग्रेज़ी और रूसी सहित कई भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद, 'किरदार' (कथा संकलन) अनुवाद हेतु फ्रांस सरकार द्वारा चयनित

पुरस्कार, सम्मान और फैलोशिप-

कृष्ण बलदेव वैद फैलोशिप 2007, रांगेय राघव पुरस्कार वर्ष 2010 (राजस्थान साहित्य अकादमी), डॉ. घासीराम वर्मा पुरस्कार 2011, कृष्ण प्रताप कथा सम्मान 2011, गीतांजलि इण्डो-फ्रेंच लिटरेरी प्राईज़ 2012 ज्यूरीअवार्ड, रज़ा फाउंडेशन फैलोशिप 2013, सीनियर फैलोशिप संस्कृति मंत्रालय (2015-16), वनमाली कथा सम्मान 2017, के. के. बिरला फाउंडेशन का प्रतिष्ठित बिहारी सम्मान (2018), ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अंतरराष्ट्रीय कथा सम्मान (2019), इंदु शर्मा कथा सम्मान (2019), स्पंदन सम्मान (2022), अंतर्राष्ट्रीय वातायन यू के सम्मान 2022।

अन्य- नेशनल फिल्म अवार्ड 2019 की ज्यूरी सदस्य।

इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल गोआ 2021 की ज्यूरी सदस्य।

संप्रति- स्वतंत्र लेखन

आकाश : आम तौर पर साक्षात्कार के अंत में पूछा जाने वाला सवाल मैं आपसे पहले पूछ रहा हूँ। इन दिनों आप क्या लिख रही हैं? मुझे कहीं से पता चला है कि आप एक उपन्यास पर काम कर रही हैं। यदि यह सही है, तो हम यह उपन्यास कब पढ़ पाएँगे और इसका विषय क्या है? या आप कुछ और भी लिख रही हैं, तो क्या उसके बारे में पाठकों के साथ कुछ साझा करना चाहेंगी।

मनीषा : मैंने बस कल ही अपना उपन्यास 'त्रिमाया' समाप्त किया है, जो भारत के तीन मातृवंशीय समाजों पर आधारित है, उनमें से एक समाज एशियन हाथियों का है जहाँ मातृसत्ता का सबसे मज़बूत उदाहरण देखने को मिलता है। बाकी एक नायर समाज है जहाँ 1924-25 में मातृवंश प्रणाली को ब्रिटिश सरकार के आगे समाप्त कर दिया गया था, जिसकी कई वजहें रहीं,

समय का बदलना, सामाजिक-व्यवस्था में आधुनिक हस्तक्षेप और जटिलता आना, संपत्ति बँटवारे में पुरुषों की असंतुष्टि, विक्टोरियन नैतिकता के समक्ष शर्मिंदगी और भी सूक्ष्म बातें रही होंगी, लेकिन पूर्वोत्तर आदिवासी समाज में आज भी मातृवंशीय प्रणालियाँ चल रही हैं, मज़े की बात यह है जो आदिवासी समाज सड़क से जितना दूर है वहाँ यह आज भी अक्षुण्ण है और जहाँ आधुनिकता पहुँची है, वहाँ पितृसत्ता आने को आतुर है, अनवरत विरोध हो रहे हैं। खासी एक समाज है जहाँ मातृवंशीय प्रणाली दशकों से विरोध झेल रही है। मगर बनी हुई है। क्योंकि मैं लेखक हूँ तो मैंने तीनों समाजों से जीवन की स्लाइस ली है और उपन्यास में ढाला है। मेरा उपन्यास माया हथिनी के नरेशन से शुरू होता है जो अपने अट्ठाईस सदस्यों के परिवार और जलदापारा के जंगल की अमोघ नेत्री है। उसका एक अंश देखें-

"आख़िरकार, मैं हाथियों के इस विशाल झुंड की नेत्री हूँ। मैं माया हूँ, यह मेरी कथा है। आप मेरी कथा-भूमि में पधारे हैं। तुम्हारी तरह ही मेरी उत्पत्ति भी इस संसार में एक स्नेह भरे परिवार के बीच हुई है। मेरे जन्म पर भी मेरी माँ ने पहले पीड़ा सही और फिर ख़ुशी से भर उठी। मेरा बचपन भी शोर, मिट्टी और पानी में तरह-तरह के मज़ेदार खेलों से भरा था। हमारे यहाँ भी ख़ास मौक़ों पर मौसियाँ और बहनें और उनके बच्चे, तमाम रिश्तेदार, परिवार के मित्रों के परिवार इकट्ठे होते रहते हैं। तुम लोगों की तरह मेरा भी एक वृहत्तर परिवार है। जिनसे हम साल भर में कई आनंद और उत्सव के मौक़ों पर मिलते-जुलते हैं। खाना बहुतायत में हो तो साथ जश्न मनाते हैं, जम कर खाते-पीते हैं, अभाव हो तो साथ सहते हैं।

आकाश : आपकी कहानियाँ कम आ रही हैं। इसका क्या कारण है, पाठकों को आपकी कहानियों का इंतज़ार रहता है। वे कब नई कहानियाँ पढ़ पाएँगे?

मनीषा : नहीं! शायद आपके पढ़ने में नहीं आईं। बीते साल मेरी चार कहानियाँ आई हैं, नर्सरी, नीला घर, ज़मीन और अभी कुछ दिन पहले 'मॉनिटर' कहानी वनमाली में आई है। मुझे क्या लगता है कि जब आप उपन्यास में व्यस्त हों तो बाक़ी लेखन धीमा हो जाता है। मैं चार साल से इस उपन्यास में व्यस्त रही हूँ। इसलिए भी कहानियाँ कम आईं। फिर मुझे लगता है जब लेखक परिपक्व होता जाता है तो वह हर विषय पर नहीं लिखता जब तक कि उसे गहरे तक अपील न करे, फिर वह कहानी के लिए नई भाषा को खोजना चाहता है। शिल्प पर ग़ौर करता है। वह अपने को पीछे छोड़ना चाहता है। इसलिए वह धीमा होना चाहता है। यूँ भी साल में एक कहानी आना मेरे रचनाकार की संतुष्टि के लिए काफी है। लेकिन कहानियाँ मेरा पहला प्रेम हैं, रहेंगी।

आकाश : 'कथाकहन' उन आयोजनों में से है जो नई पीढ़ी के लेखक तैयार कर रहा है। इसकी उपज कहाँ से हुई? इसके किस तरह के परिणाम आपके सामने आ रहे हैं?

मनीषा : इसकी उपज नई नहीं थी जब भी मैं विदेशी विश्वविद्यालयों के आमंत्रणों पर जाती हूँ, मैं पाती हूँ, हर जगह किसी भी भाषा में साहित्य में ग्रेजुएट-पोस्ट ग्रेजुएट होने के लिए ही विभाग नहीं हैं, बल्कि क्रिएटिव राइटिंग के भी विभाग हैं और कक्षाएँ चलती हैं। कुछ नहीं तो शिविर चलते हैं। भारत में इसका अभाव है। फिर जब हम नए थे तो बहुत उलझते थे, गुमराह होते थे। भाषा को कैसे बरतें? शिल्प क्या है? परंपरा क्या है और इस सब को तोड़ कर नव प्रयोग कैसे किया जाए। तब मैंने बस एक 'कथाकहन' प्रयोग के तौर पर किया। वह सफल रहा और फिर एक किया इस बार हम पाँचवा कथाकहन करने जा रहे हैं। इसके परिणाम वे नए लेखक हैं जो लगातार पत्रिकाओं में छप रहे हैं, पुरस्कृत हो रहे हैं। अभी 'शिवना' का नवलेखन पुरस्कार जो घोषित हुआ उसमें भी रश्मि कुलश्रेष्ठ 'कथाकहन' से जुड़ी रही हैं। हम यह दावा नहीं करते हमने गढ़ा उनको, लेकिन दिशा दिखाने का गर्व कर लेते हैं। क्योंकि 'कथाकहन' वह मंच है जहाँ नवलेखक वरिष्ठ से, युवा लेखक संपादक से, अप्रकाशित लेखक प्रकाशक से भी मिलता है और उसका जो संकोच है कि छपना कठिन है, वह दूर होता है। यह एक कार्यशाला भी है और फोरम भी है जहाँ लोग आपस में मिलते हैं और दायरा बढ़ाते हैं।

आकाश : 'कथाकहन' का आयोजन लगातार किया जा रहा है। इस दौरान कई तरह के खट्टे-मीठे अनुभव आपको हुए होंगे। क्या वे अनुभव आप हमारे साथ साझा करना चाहेंगी?

मनीषा : हर बरस आनंद-दायक अनुभव होते हैं, मैं आयोजक हूँ तो व्यस्तता इतनी रहती है कि वे स्मृति में दर्ज नहीं हो पाते। मृदुला गर्ग जी जब आई थीं और झील किनारे जब वे सैर करती थीं तो ढेर से युवा लेखक उन्हें घेर लेते, अनौपचारिक बातें चलतीं। यह सबसे सुंदर दृश्य हो सकता है रचनात्मक जगत् का। खट्टे अनुभव की 'कथाकहन' में गुंजाइश नहीं है। बाक़ी आयोजन की कठिनाइयाँ हैं वह तो होती ही हैं। लेकिन जब सफल 'कथाकहन' हो जाता है तो वे कठिनाइयाँ याद नहीं रहतीं।

आकाश : 'मल्लिका' ने आपको सबसे ज़्यादा यश दिया है, ऐसा मुझे लगता है। इस पर आपकी क्या राय है और जो मल्लिका से आपको मिला क्या इसकी कल्पना की थी?

मनीषा : मैं जब 'मल्लिका' लिख रही थी, तब मैं पूर्वोत्तर के दुआर्स जंगलों की दुनिया में थी। एकदम एकांत और विशुद्ध प्रकृति का साथ तो कोई महत्त्वाकांक्षा मेरे आस-पास नहीं थी। यश-सफलता जैसे कोई शब्द नहीं गूँजते थे। बस था तो केवल ज्यू और मल्लिका का समय, उस समय का बनारस, उनका प्रेम, उस समय के साहित्य की राजनीति, खड़ी बोली के हिन्दी भाषा बनने का संघर्ष, भारतेन्दु का जीवट भरा संक्षिप्त जीवन और उनकी मृत्यु। जब लिख लिया तो लगा इस स्वतंत्रता पूर्व की क्लिष्ट भाषा में लिखे इस उपन्यास को कौन पढ़ेगा? पर क्योंकि मुझे यूँ लगता था कि इसे मुझसे मल्लिका ने सिरहाने खड़े होकर मुझसे जिरह कर लिखवाया है तो इसे प्रकाश में तो आना है।

मैं हैरत में ही थी कि इसे हर पीढ़ी ने पढ़ा, पहली बार जब यह पुस्तक मेले में आया तो मैंने एक ही दिन में आठ सौ कॉपीज़ साइन कीं, आज भी पुस्तक मेले में हर बरस इसकी प्रतियाँ ख़त्म हो जाती हैं स्टॉल पर। उसके बाद

सोशल मीडिया पर हर दिन तीन-चार टिप्पणियाँ, रिव्यू और यह सिलसिला साल भर चला। इतना कि मैं तरसने लगी कि मल्लिका पर बात ख़त्म हो तो आगे काम करूँ। फिर फ़िल्म के लिए इसके अधिकार माँगे गए। बहुत से सम्मान और पुरस्कार। इसलिए मैंने कोई कल्पना नहीं की थी मल्लिका को इतना यश मिलेगा और यह यश मेरा कतई नहीं, भारतेन्दु ज्यू की मल्लिका का है, जिसके लिए बस मैं माध्यम भर।

आकाश : आपकी कहानी के पात्र तो देसी होते हैं लेकिन कहानियाँ विदेशी लगती हैं। आपका कहन का तरीक़ा कुछ अलग है। साथ ही आपके पात्र बिगड़ैल होते हैं, थोड़े हठी होते हैं। ऐसा क्यों है, क्या यह कहानी की माँग होती है या पात्रों के अनुसार कहानी होती है?

मनीषा : मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि कठपुतलियाँ, स्वांग, लीलण, ठगिनी, कुरजाँ, ज़मीन कहानी विदेशी है! न इनको विदेशी परिवेश में लिखा जा सकता है। यह सीमा हो सकती है कि पाठक ने भारत के मरुस्थल और राजस्थान के वे हिस्से नहीं देखे हों, जहाँ ये कहानियाँ घटती हैं, इनमें लोक भाषा, लोक प्रतीकों और मुहावरों की भी भरमार है, तो विदेशी कैसे लगीं? जहाँ परिवेश आंचलिक, पात्र आंचलिक, भाषा आंचलिक तो कहानी विदेशी कैसे हो सकती है? मेरा कहन अगर ज़रूर अलग हो सकता है, मैं अपने ढंग से लिखती हूँ। कहन तो हर लेखक का अलग होना ही चाहिए। क्लोन लेखक क्यों होना। इसकी मनोवैज्ञानिक पड़ताल करूँ तो मुझे यह लगता है - मेरे जीवन के बाईस वर्ष तो गाँव-क़स्बों में बीते और फिर मैं एकदम एयरफ़ोर्स के अँग्रेज़ीदाँ माहौल में आ गई, जहाँ अंग्रेज़ी का बोलबाला, पार्टी-प्रोटोकॉल, कैंटोनमेंट पूरा का पूरा ब्रिटिश-प्रभाव वाला वातावरण, तो शायद एक संकर क़िस्म की अभिव्यक्ति ने जन्म लिया होगा। पात्र लीक से न हटें तो कहानी कैसे बने? मैं अक्सर कहती हूँ- मैं उन पात्रों पर नहीं लिखती, जो चीख कर मुझे पुकारें कि मुझ पर लिखो, मैं उन पर लिखती हूँ जो मुझसे छिपते हैं कि कमबख़्त कहानी न लिख दे हम पर।

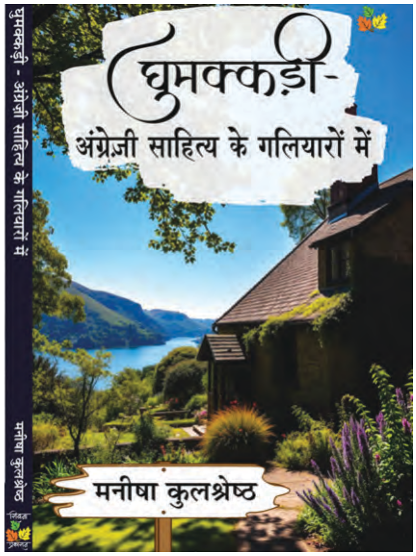

आकाश : आपके समकालीन लेखकों की कौन सी ऐसी कहानियाँ जो आपको हमेशा याद रहती हैं।

मनीषा : समकालीन ना ? अरुण कुमार असफल की 'पाँच का सिक्का', पंकज सुबीर की 'चौपड़े की चुड़ैलें', कुणाल की 'रोमियो जूलियट और अँधेरा', जया जादवानी की 'अंदर के पानियों में', मनोज कुमार पांडे की 'पानी', ओमा शर्मा की 'घोड़े' लिस्ट अंतहीन है। मुझे अपने समकालीन जो अब वरिष्ठ होने लगे हैं, उनकी क़लम बहुत अपीलिंग लगती है। चाहे वे मोहम्मद आरिफ़ हों, विमलचंद्र पांडे हों।

आकाश : आपको ग़ुस्सा बहुत आता है, इसका क्या कारण है।

मनीषा : एक समय था मुझे हर दोहरेपन पर, साहित्यिक गुटबाज़ी, इधर-उधर बात फैलाने, लेखक-लेखिकाओं के चरित्र पर गॉसिप करने वालों पर ग़ुस्सा आता था। मैं सीधे-सटीक बोलने वालों से हूँ। जो कहना है सीधे और मुँह पर, क्योंकि मैं जिस माहौल से आती थी वह बहुत उदार विचारों वाला था, वायुसेना का माहौल। ऐसे में उसने इससे बात कर ली, वह उसके साथ दिखा, उससे बात की, यह पहना, यह खाया, ये सब बहुत क्षुद्र बातें लगती थी और मैं ऐसे मज़ाकों पर डाँट देती थी या विरोध कर देती थी। अब ग़ुस्सा नहीं आता! क्योंकि कुछ मैं परिपक्व हुई, कुछ यह मान लिया कि यहाँ कुछ नहीं बदलेगा। फिर नए लोग आए, जिन्होंने पुराना बहुत कुछ ध्वस्त किया। फिर अब कौन किससे मिलता है, क्या पहनता है जैसी बातें बेमानी होती चली गईं। अब मैं साहित्यिक विवादों से स्ट्रिक्टली दूर रहना चाहती हूँ, इसलिए सोशल मीडिया के फालतू हमलों पर भी प्रतिक्रिया नहीं देती हूँ। इसलिए यह सवाल यूँ रखें आपको पहले ग़ुस्सा बहुत आता था!

आकाश : अधिकतर लेखक काव्य से गद्य की ओर आते हैं, आपने पहले कविताएँ लिखीं या कहानियाँ?

मनीषा : कविताएँ लिखीं किशोरावस्था में, लेकिन कहानियाँ भी लिखती रही थी। लेकिन प्रकाशित पहले कहानियाँ ही हुईं, तो 'हंस' और 'वागर्थ' या 'नया ज्ञानोदय' में जब भी कविताएँ भेजीं तो राजेन्द्र यादव और कालिया जी से प्रतिक्रिया मिली - अब तुम तो कविताएँ लिखने मत बैठ जाओ। तो फिर जब कविता लिखी अपने लिए लिखी। फिर पंकज सुबीर ने कहा -आप कविताओं का संकलन मुझे भेजिए। तब शिवना से 'प्रेम की उम्र के चार पड़ाव' पुस्तक के रूप में आई। और कितनी ख़ूबसूरत पुस्तक है वह। मैं लोगों को जन्मदिन पर उपहार में देती हूँ।

आकाश : किन प्रवासियों के लेखन को आप पसंद करती हैं और क्यों। प्रवासियों की कोई कहानी, उपन्यास या किसी भी विधा का कुछ भी जो आपको लुभाता हो।

मनीषा : प्रवासी लेखन मुझे आरंभ ही से पसंद रहा है, अभिमन्यु अनत हम सबके बेहद प्रिय लेखक रहे हैं, उसके बाद पुष्पिता अवस्थी, अर्चना पैन्यूली की कहानियाँ मैंने 'हंस' में पढ़ीं। प्रवास का माहौल और देश की याद, प्रवासी होने का संघर्ष जहाँ आता है, वह मुझे पढ़वा ले जाता है। दिव्या माथुर जी का विपुल साहित्य इस पर है। तेजेंद्र जी एक लोकप्रिय नाम हैं। सुधा ओम ढींगरा जी की कहानियाँ मुझे प्रिय हैं और उनका उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' मुझे अच्छा लगा था। प्रवासी लेखन को बहुत अधिक प्रोत्साहित करना होगा ताकि अब जो पीढ़ी वहाँ है, वह अपने संघर्ष सामने ला सके।

आकाश : आपकी कहानियों में प्रेम और रुमानियत हमेशा किसी न किसी रूप में मौजूद

रहता है, इसका क्या कारण है। वैसे यह कहानी को बहुत रोचक बनाता है।

मनीषा : यह जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मुझे ख़ुद प्रेम के बिना साहित्य फीका लगता है। फिर वह प्रेम कितना ही प्रच्छन्न क्यों न हो।

आकाश : हिन्दी नेस्ट के साथ आपके क्या अनुभव हैं। तब तकनीकी तौर पर सुविधाएँ कम थी, जिससे कई परेशानियाँ आती होंगी, इस सब का सामना कैसे किया?

मनीषा : विश्व में हिन्दी की पहली वेबसाइट होने के चलते हिन्दीनेस्ट अब एक इंस्टीट्यूशन है। 1998 में निश्चय ही तकनीकी सुविधाएँ तो कम थी हीं, लोगों में जागरूकता भी नहीं थी। उस पर कंप्यूटर में तब फ्लॉपी में होती थीं, ढाई एम बी का आजकल एक फ़ोटो होता है। तब एक फ्लॉपी में ऑपरेटिंग सिस्टम चलता था एक में फ़ाइल सेव होती थी। फिर हार्ड डिस्क आई बीस एमबी वाली। जब इंटरनेट आया और भाषा पर काम हुआ तो हिन्दी के दर्जनों फॉण्ट, जिसके पास एक फॉण्ट उसके लिए दूसरा फॉण्ट यानी डिब्बे-डिब्बे बन जाते फ़ाइल में। हम शुषा में काम करते जो हिन्दीनेस्ट देखना चाहते वह यह फॉण्ट डाउनलोड करते। इंटरनेट उन सीमित आय वाले दिनों में बहुत महँगा था, पाँच हज़ार महीना आप आज भी न दें। बस इन सबसे उबरे, यूनिकोड आया, नेट सस्ता हुआ।

तब मैं लेखकों की रचनाएँ हाथ से टायप करती थी, निर्मल जी को कॉल किया कि ऐसी वेबसाइट है आप रचनाएँ दें, तो वे बहुत उत्सुक हुए, उनका जवाब था मेरा लिखा सारा डाल दो। हमने ऐसा नहीं किया क्योंकि तब तक इंटरनेट के कॉपीराइट अधिकारों पर कोई पॉलिसी नहीं थी। ख़ैर एक लंबा समय हुआ 27 साल इस तकनीक में आगे बढ़ते हुए। अब यह अपने आप में एक इतिहास है।

आकाश : आपके पात्र आप गढ़ती हैं या कभी आपका उनसे सामना भी हुआ है।

मनीषा : मेरे पात्र कई लोगों का कोलाज होते हैं अक्सर दो या तीन का तो कम से कम। जैसे स्वाँग का गफ़ूरिया भी दो असल जीवन के पात्रों से बना है। एक स्वाँग के कलाकार

राष्ट्रपति से पुरस्कृत स्व. माँगी लाल जी भाट और गफ़ूरिया (गफ्फार चाचा) दोनों चित्तौड़गढ़ की शान थे। बचपन में गफ़ूरिया ने मुझे एक बार मेले में खो जाने पर साइकिल से नाहर बिल्डिंग मेरे घर छोड़ा था। दरअसल मेरी माँ बहुत बड़ी क़िस्सेबाज़ रही हैं, कुछ पात्र उनके जीवन से मैंने उठाए। कुरजाँ उनकी कथा का हिस्सा है। मेरे पात्र अक्सर असल जीवन में मुझसे टकरा कर एक कौंध देकर तो जाते हैं। फिर बाक़ी मैं उसमें जोड़-घटाव करती हूँ।

आकाश : कठपुतली का नायक हो या एडोनिस का रक्त लिली के फूल, दो अलग-अलग परिवेश के पात्र पर उनका प्रेम के प्रति समर्पण और नज़रिया एक जैसा दिखता है। असल ज़िंदगी में इनमें से एक को खोजना रेत में गिरी पानी की बूँद खोजने जैसा है। इन्हें कैसे गढ़ लेती हैं आप।

मनीषा : आकाश, प्रेम को लेकर किसी मनुष्य का जो नज़रिया होता है न वैसा ही गढ़न आपके व्यक्तित्व का होता है। जैसे प्रेम में कुछ लोग इतने व्याकुल हो जाते हैं कि अपराध कर बैठें, कुछ प्रेम में इतने उदार हो जाते हैं कि सब कुछ संसार को बाँट दें। कुछ लोग प्रेम में जकड़ते हैं, कुछ दरवाज़े खोल देते हैं कि रुको तो अच्छा न रुको तो भी यह प्रेम वही रहेगा। मुझे प्रेम का उदात्त स्वरूप मोहता है। प्रेम मेरी कहानियों में अक्सर पात्रों को बेहतर मनुष्य बनाता है... सरल और उज्ज्वल बनाता है। वैसे जटिल प्रेम कहानियाँ गहरी मनोवैज्ञानिक समझ माँगती हैं।

आकाश : स्वाँग जैसी कहानियाँ इन दिनों नहीं लिखी जा रहीं, ऐसे वर्ग को समाज से और अब साहित्य से बाहर किया जा रहा है इसे आप कैसे देखती हैं?

मनीषा : हम समूचा साहित्य पढ़े बिना ऐसा नहीं कह सकते। इस वक़्त बहुत लिखा जा रहा है। कॉर्पोरेट की दुनिया में बैठ कर भी लोग हिन्दी कहानी लिख रहे हैं तो, किसान अपने संसार में बैठा हिन्दी कहानी में अपना योगदान दे रहा है। लोक-कलाकारों पर भी लिखा जा रहा है ख़ास-तौर पर बिहार के लेखक लिखते दिखते हैं। हाँ, कम हुआ होगा क्योंकि लोक-कलाकारों की भी हमारे जीवन में पहुँच कम हो गई है। पहले हम लोग मोहल्लों में रहते थे, स्वाँग कलाकार, नट-नटनियों के खेल, लोकनाट्य मोहल्ले के चौक में होते थे। अब लोग फ्लैट्स में रहते हैं। तो लोक-कलाकारों के लिए उनके ज़मीनी मंच का विस्तार घट गया है। कठपुतली का खेल स्कूलों में होता था, अब पता नहीं होता है या नहीं। मैं राजस्थान के गाँवों-क़स्बों घाणेराव, निम्बाहेड़ा, चित्तौड़गढ़, माँडलगढ़ जैसी जगहों में रही, जन्मी पली-बढ़ी-पढ़ी हूँ, मेले हाटों की धूल फाँकी है। तो वह जो लोक है वह मेरे जीवन में फ़ौजी-अफ़सर की पत्नी बनने के बाद भी रहा। फ़ौजी इलाक़े भी शहर के बाहर होते हैं तो असम, पश्चिमी बंगाल, हरियाणा, कश्मीर के गाँवों से हमेशा संपर्क रहा तो लोक-कलाओं से निकटता रही है।

आकाश : 'कथाकहन' से अच्छे साहित्यकार निकल रहे हैं। वे कौन हैं जिनको देख कर आपको लगता है कि आपके प्रयास सफल हो रहे हैं।

मनीषा : हर वर्ष 'कथाकहन' में पहले से लिखते आ रहे लेखक और नई प्रतिभाएँ दोनों आते हैं। हमारा प्रयास रहता है पहले से लिखते आ रहे लेखकों को हमारे विशेषज्ञ माँझे और नयों को लिखने की तरफ मोड़ें। एक प्रेरणा और दिशा है 'कथाकहन' कि यहाँ से हर वर्ष पाँच-सात नए लेखक हिन्दी जगत्‌ में अपना स्थान बनाते ही हैं। नाम नहीं लूँगी क्योंकि उनकी सफलता का श्रेय लेना मुझे उचित नहीं

लगता। यह उनका काम है कि वे कथाकहन को अपनी ओर से श्रेय दें या न दें। हाँ हमें उन सभी पर गर्व बहुत होता है।

आकाश : पहले साहित्य में दशक दर दशक अंतर आते थे, इन दिनों साहित्य भी ट्रेंडिंग हो गया है। इसको आप किस तरह देखती हैं। क्या इतनी जल्दी-जल्दी हो रहे बदलाव ठीक हैं?

मनीषा : लेखक हमेशा जो जीता-देखता है, लिखता है। जब सूचना प्रौद्योगिकी, बाज़ार और विज्ञान जिस तीव्र गति से बदल रहा है उस के बरक्स जीवन, मूल्य, संबंधों, बौद्धिकता के स्तर, भाषा में बदलाव आ रहे हैं, हम ग्लोबल हो रहे हैं तो निश्चय ही कहानी और कथा साहित्य में ट्रेंड बदलेगा। मगर मुझे दुख तब होता है जब हम साहित्य में और गहरे और व्यापक होने की जगह उथले हो रहे हैं। हिन्दी कथा में जब शिल्प और प्रयोग को सघन होना था तब हम सरल और उथले हो रहे हैं। फिर भी साहित्य का मूल्यांकन कभी तात्कालिक नहीं होता है। हो सकता है एक समय बीतने पर हम समझें कि यह ट्रेंड दशक लेकर ही बदला है। इस बदलते समय की सूक्ष्म जटिलताओं को हमें पकड़ना पड़ेगा। सतही लिखने में हम मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को छोड़ देंगे। क्या कोई लेखक नोट कर रहा है नई पीढ़ी पहले विवाह से भागती है फिर संतान को जन्म देने से। हम उनको सतही तौर पर आत्मकेंद्रित कहेंगे। मगर उनके अवचेतन में कोई नहीं उतरेगा, वह त्रास नहीं देखेगा जिसे उन्होंने सफल होने के नाम पर झेला है। सो बदलते वक़्त की नब्ज़ जो लेखक पकड़ता है वही आगे चलकर मूल्यांकित होता है।

आकाश : कसूमल के रंग के पात्र और कहानी कहन का ढंग बहुत आकर्षित करता है। इस कहानी के जन्म के बारे में बताएँ।

मनीषा : यह एक बस यात्रा की कथा है। जो सच है। मैं अपने शहर चित्तौड़गढ़ से जयपुर आ रही थी। तब इस कथा का एक टुकड़ा बीता था मेरे समक्ष। जो बीता वह घर आकार हू-ब-हू लिख डाला वह साँवली विधवा और कंडक्टर। उस कंडक्टर और उस

साँवली बड़ी आँखों वाली लड़की का चेहरा मैं भूल नहीं सकती। उसके उतर जाने के बाद उसके पीछे किसी सीट पर ढह जाना भी याद है। मगर यह सूक्ष्म और मूक कहानी अधूरी थी, जब तक कि इसके बरक्स एक स्थूल और संवाद भरी नागरिक प्रेम कथा न होती तो वह उभर कर कैसे आती। तब मैंने एक कहानी गढ़ी। इस तरह यह कहानी जन्मी। यह कहानी मेरी प्रिय कहानियों में से एक है। मैंने अब तक सत्तर कहानियाँ लिख ली हैं, मगर कसूमल रंग सबसे जीवंत कथा है।

आकाश : आप अक्सर अपने उपन्यासों में शोधपरक विषय उठाती हैं। जटिल और समय के नीचे दबे हुए विषय। क्या वजह है?

मनीषा : होता यह है कि मुझे अक्सर वह विषय चुनना पसंद है, जिसमें मेरी जिज्ञासा जागे और लिखने के दौरान किया गया शोध और अर्जित ज्ञान मुझे आनन्द दे। पहला उपन्यास कश्मीर समस्या पर था और मैं बस ऊपर से ही समझती थी कश्मीर समस्या को। लेकिन जब कारगिल हुआ तब मुझे लगा मैं इस पर फिक्शनल काम करूँ तब मेरी उम्र महज बत्तीस वर्ष थी। साहित्य-अकादमी ने मुझे एक अनुवाद कार्यशाला में पहलगाम भेजा, तब यह लौ जाग चुकी थी। मैं जुट गई। अख़बार, अर्काइव्ज़, साक्षात्कार, यात्राएँ (बसों में बम फटने वाले दिनों में) कीं, लोगों से मिली और अपना पहला उपन्यास लिखा शिगाफ़ जो आज भी बहुत पढ़ा जाता है। फिर भारतीय पुराणों में निहित स्त्री-स्वातंत्र्य पर पंचकन्या उठाया, फिर मानसिक विदलन पर स्वप्नपाश, हिन्दी साहित्य के इतिहास के पन्नों में से ओझल मल्लिका को निकाला। अब मातृसत्तात्मक समाजों में त्रिमाया पूरा किया है। शायद मेरी अंदर की कोई पिपासा है कि अनजाने विषयों-क्षेत्रों में डूबूँ और जब उबरूँ तो मुझे उस विषय पर अच्छा ज्ञान हो और एक फिक्शनल किताब हो।

आकाश : आप ने एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखा है जिसका आपने ज़िक्र किया स्वप्नपाश, सिजोफ्रेनिया पर, वह बहुत वैज्ञानिक ढंग से लिखा है। इसका क्या आधार रहा होगा बताएँ। इसकी पात्र गुलनाज़ को कैसे गढ़ा?

मनीषा : ग्रेजुएशन तक मैंने विज्ञान ही पढ़ा है वह भी जीव-विज्ञान, उसके बाद हिन्दी में एम.ए. और एम फिल किया। एम फिल में भी फ्रायड पर पेपर प्रेजेंट किए। तो वैज्ञानिकता मेरे लेखन में आती ही है। शोधपरकता का भी सूत्र वहीं से जुड़ता है। हुआ यूँ कि मैं वॉन-गॉग और साल्वादोर दाली पर पढ़ रही तो पता चला दोनों मानसिक विचलन का शिकार थे और कला उनके लिए इससे निकासी का माध्यम। उन्हीं दिनों हम हासीमारा अफ़सर मैस में एक टैंपरेरी ओकोमॉडेशन में रह रहे थे और डॉक्टर दीक्षित हमारे पड़ोस में रहते थे। उनको साहित्य में रुचि थी तो उनसे पूछा मैंने इस मानसिक व्याधि के बारे में जिसमें आपको भ्रम होते हैं, लोग दिखते हैं और आवाजें सुनाई देती हैं। उन्होंने मुझे पुराने मेडिकल जर्नल्स पढ़ने को दिए। फिर मेरी जिज्ञासा पराकाष्ठा तक पहुँच गई। फिर एक चित्रकार पात्र गुलनाज़ फरीबा गढ़ी गई, जिसके कठिन और एकाकी बचपन के कारण बड़े होकर भ्रम होते थे, यौन शोषण के। वह प्रसिद्ध चित्रकार बन गई थी। वह अपने भ्रमों को चित्रों में ढाल देती थी।

आकाश : तो अगला शोध परक उपन्यास आपका किस दिशा में जाने वाला है?

मनीषा : अगला उपन्यास... वह तो मैं प्रेम पर लिखने वाली हूँ... उपन्यासिका... 'मध्यान्तर'।

000

स्मृतियों के झरोखे से

अरुणा सब्बरवाल

स्मृतियों के भंडारे से मैं पच्चास वर्ष पहले के वे पल साझा करना चाहूँगी जो मेरे जीवन में बहुत ही सार्थक और सकारात्मक रहे। जिनसे मुझे वह ऊर्जा मिली जिसे मैं अपने आदर्श बना कर अपने भविष्य जीवन के फ़ैसले कर पाई। अपना भाग्य ख़ुद लिख पाई और उन्हीं को अपना उद्‌देश्य समझ कर मैंने दो छोटी-छोटी बेटियों के साथ अपना जीवन बिताया। वही आदर्श मुझे मेरी युवावस्था में सकारात्मकता से उत्साहित करते रहे। बात 1975 की है, बदक़िस्मती से सरासर झूठ और अत्याचार की नींव पर खड़े विवाह से तंग आ चुकी थी। प्रश्न यह था कि समाज के डर से अत्याचार सहती रहूँ या फिर ख़ुद और अपनी बेटियों की जान बचाने के लिए उस विवाह के बंधन से मुक्त हो जाऊँ ...?

माँ-बाप ने उच्च शिक्षा का उपहार तो दे दिया था, किन्तु उस शिक्षा से ब्रिटेन में नौकरी मिलना आसान नहीं था। उनका पिता तो अनपढ़ था, मेरे लिए बेटियों के प्रत्यक्ष एक आदर्श उदाहरण रखने के लिए लंदन से शिक्षा पाना ज़रूरी हो गया था, इसलिए अपनी तीन महीने की बेटी को दो वर्ष के लिए भारत छोड़ना पड़ा।

पति की मार-पिटाई, गाली-गलोच और अत्याचारों से बचने के लिये दोनों बेटियों, एक बेटी दो वर्ष की और दूसरी साढ़े चार वर्ष की थी, को लेकर अपनी छोटी बहन, के साथ स्कॉट्लैंड चली गई। विवाह की बेड़ियों से निकल तो पड़ी, किंतु राह बहुत पथरीली और कँटीली थी।

पुरुष प्रधान समाज और परिवार की ओर से दुत्कार ही मिला। माँ-बाप ने क्या छोड़ा, बहन भाइयों ने भी मुख मोड़ लिया। माँ के कहे कटु शब्द "उस घर से तेरी अर्थी उठनी चाहिए, वह तो साधु है साधु (मेरा पति)"। माँ बहुत महत्त्वकांक्षी थी, उसने पूछताछ किये बिना ही लड़का लंदन से आया है, तेरे बहन भाई का भविष्य सुधर जाएगा, कह कर फिर मेरे ससुराल वालों की बड़ी सी कोठी देख कर मेरा विवाह कोठी के साथ कर दिया। मेरी माँ के दबाव में बहन ने भी छोड़ दिया।

जब भी उन पलों के बारे में सोचती हूँ तो दिल पर नुकीली कील सी ठुकने लगता है। बाप की लाड़ली बेटी दु:ख की घड़ी में समाज के भेड़ियों से लड़ने के लिए परदेस में अकेली छोड़ दी गई। यहाँ तक कि माँ के जादू-टोने के पत्र भी आने लगे।

एक दिन अचानक भारत से मेरे दादा जी तथा दादी जी के पत्र ने संजीवनी का काम किया। पत्र में दादी जी ने लिखा था "बेटा तुम हमारी बच्ची हो और हम तुम्हें जानते हैं, हमें विश्वास है, तुमने जो भी क़दम उठाया है बहुत सोच-समझ कर उठाया होगा। बस अपने इरादों पर डटी रहना, हम तुम्हारे साथ खड़े हैं।" उसी पत्र में मेरे दादा जी ने जो इंस्पेक्टर्स ऑफ स्कूल थे, लिखा "अरुण बेटा चिंता न करना, ख़ुद को अकेली मत समझना, तुम भारत वापस आ जाओ, तुम्हारी बेटियों को हम किसी कॉन्वेंट स्कूल में डाल देंगे और तुम्हारे चाचा जी (जो कि आर्मी में कर्नल थे) से कह कर तुम्हारे लिए आर्मी ऑफ़िसर ढूँढ़ कर तुम्हारी शादी कर देंगे।" उनके इस पत्र ने मेरे लिए रामबाण का काम किया। उनके पत्र से इतनी ऊर्जा मिली कि मेरा मन हौसलों और हिम्मत से भर गया। मैं निडरता से आगे बढ़ती गई।

अब मैं दादा, दादी जी की दी ऊर्जा और सकारात्मकता की ओढ़नी ओढ़े आत्मसम्मान और आत्मविश्वास से समाज का सामना करने के लिए तत्पर तैयार थी। यहाँ तक कि दो बच्चों के साथ कोई छत भी देने को तैयार नहीं था, ख़र्चा ले कर भी। जिसने भी छत दी, यही सोच कर कि पैसे भी आएँगे साथ-साथ मुफ़्त की नौकरानी भी मिलेगी। उस वक़्त जिनके घर में मैं थी उनके तीन बच्चे और दो पति-पत्नी, और तीन हम, उनकी न्यूज़ एजेंट की दुकान थी। वे तो सुबह पाँच बजे दुकान पर जा कर शाम को आठ बजे आते थे, आठ लोगों का खाना बनाना और सबका तथा पूरे घर का काम मेरे ही ज़िम्मे था। पाँच बच्चों को स्कूल भेजना, दोपहर का खाना बनाना

अरुणा सब्बरवाल
2, रशेट्टिंग्स , वेस्टफील्ड पार्क, हैच एन्ड
पिन्नर HA5. 4JF, यू.के
फ़ोन- 7557944220
ईमेल- sab_arun@hotmail.co.uk

कपड़े धोना इत्यादि। दो-तीन बार घर बदलना पड़ा क्योंकि उनके बड़े बच्चों ने मेरी बेटियों को मारना, धमकना और सताना आरम्भ कर दिया। ऊपर से मेरे पति के वहाँ आ कर गाली-गलोच करने ने हमारा वहाँ रहना भी दूभर दिया था। एक जान-पहचान के अंकल की मदद से हम तीनों लंदन आ गए। लंदन में भी जिस व्यक्ति ने हमें कमरा दिया उसमें उसका स्वार्थ छिपा था। वह पंजाबी था और उसकी पत्नी केरल की मद्रासी, पत्नी को नौवाँ महीना चल रहा था। उसने सोचा पंजाबी कुक के साथ मुफ़्त की नौकरानी भी मिलेगी, जो अपना ख़र्चा भी देगी, पत्नी की सेवा भी। मेरे पति ने वहाँ भी पहुँच कर भी हमारा जीना मुश्किल कर दिया। वहाँ भी डर-डर कर छुप-छुप कर रहे।

पाँच वर्ष इधर-उधर भागते-भागते एक दिन प्रभु ने अचानक मेरे बचपन के प्यार रमेश से मिला दिया और हम विवाह के बंधन में बँध गए। रमेश ऑर्थोपैडिक सर्जन थे। जीवन बहुत सुखमय था। एक दिन हम दोनों शॉपिंग के लिए गए हुए थे, रमेश बोले- मेरी दो बजे अस्पताल में फ्रैक्चर क्लीनिक है, मैं घर चलता हूँ, तुम लड़कियों के घर पहुँचने से पहले घर आ जाना। रमेश घर तो आ गए किंतु मेरा मन भी बाज़ार में नहीं टिका और मैंने भी घर आने का निर्णय लिया, जैसे ही घर के नज़दीक पहुँची, मेरे पाँव आगे बढ़ने से इंकार करने लगे, मैंने देखा रमेश की कार भी ड्राइव में है, बड़ी मुश्किल से घर के दरवाज़े पर पहुँची, रमेश ने दरवाज़ा नहीं खोला मुझे अपनी ही चाबी इस्तेमाल करनी पड़ी।

रमेश को मैंने कुर्सी पर बेहोश पाया, रिसेसिटेट करने का प्रयास किया, साँस तो क्या आना था, रमेश नीले होते गए। भागी-भागी डाक्टर को लाई, डाक्टर ने देख कर कहा "माफ़ करना अब वह नहीं रहे"। मैं भला उसका कैसे विश्वास कर लेती, एक घंटा पहले तो रमेश मेरे साथ थे। मैंने डाक्टर को कहा- "आपको नहीं पता इनके दोस्त अस्पताल में इन्हें रिवॉइव कर देंगे", और मैंने एम्बुलेंस बुला ली, एम्बुलेंस तो झट से आ गई मैं शशोपंज में थी कि एक ओर रमेश का मृत शरीर एम्बुलेंस में रखा जा रहा था, उधर से दोनो बेटियाँ घर की ओर आ रही थीं। विडम्बना थी रमेश के साथ जाऊँ या फिर लड़कियों के लिए घर का दरवाज़ा खोलूँ, लंदन में आप तेरह वर्ष से कम उम्र के बच्चों को अकेला घर पर नहीं छोड़ सकते। उस के बाद संस्कार के दिन तक मैं और बच्चियाँ रमेश को देख नहीं पाए। पच्चीस वर्ष की थी तलाक़ हो गया, बत्तीस वर्ष में विधवा हो गई। दो बेटियों के साथ-साथ रमेश परिवार का बड़ा बेटा होने के कारण, उनके माता-पिता की ज़िम्मेदारी भी मेरी ही थी। रिटायरमेंट के बाद उनके पास रहने को कोई घर नहीं था। रमेश को डॉक्टर बनाने में उन्होंने अपनी पाई-पाई लगा दी थी। अपने घर पर लोन ले कर मैंने दिल्ली में उनके लिए फ़्लैट लिया। भाग्य को शायद यही मंजूर था।

उस दिन के बाद एक अकेली जवान माँ का दो छोटी-छोटी बच्चियों का पुरुष प्रधान समाज में अपना और अपनी बच्चियों को बचा कर रखने का युद्ध आरम्भ हो गया। मैं जानती थी कि जब बेटियों के विवाह का समय होगा तो हमारे समाज में समस्या उत्पन होगी। बच्चों से सामने रोना भी आसान नहीं था। एक दिन जब बेटियाँ स्कूल की ट्रिप पर गई थीं। तब मैं बहुत फूट-फूट कर रोयी और भगवान् से बस दो चीज़ें माँगीं, एक कि जिस परिस्थिति में आपने मुझे डाला है, उसे पूरी हिम्मत से निभाने की शक्ति प्रदान करना, दूसरा जब मेरी बेटियाँ विवाह योग्य हों तो उनके लिये अच्छे लड़के ढूँढ़ देना। मैंने हार नहीं मानी, घुटने झाड़ कर फिर तैयार थी एक और युद्ध के लिए।

क़दम-क़दम पर माँ-बाप के संस्कार और दादा-दादी जी के दिये कूट-कूट कर भरे आत्मसम्मान और आत्मविश्वास ने पग-पग पर मेरा साथ दिया।

चयेशर जहाँ शत् प्रतिशत अंग्रेज़ों के बीच रहने में कोई समस्या तो नहीं थी, किंतु चिंता यह थी कि अंग्रेज़ों के बीच रह कर मेरी बेटियाँ अपने संस्कारों से बहुत दूर हो जाएँगी। पाँच वर्ष पश्चात् मैं अपनी बेटियों को लेकर बिर्मिंघम शिफ़्ट हो गई जहाँ मंदिर, गुरुद्वारे तथा अपने भारतीय लोग थे।

यहाँ दो ख़ूबसूरत बेटियों और जवान माँ का एक और समाजिक महायुद्ध आरम्भ हो गया। यहाँ पुरुष प्रधान समाज में प्रत्येक पुरुष इस अकेली ख़ूबसूरत औरत को जानना चाहते थे। किंतु वह डरी नहीं, दादा-दादी जी की संजीवनी ने डट कर साथ दिया।

बिर्मिंघम में नौकरी के संग मैं अपनी स्नातक डिग्री को इंग्लिश स्तर पर लाई, बी एड किया, पोस्ट ग्रेजुऐशन किया। यह सब मैं शिक्षिका होने के साथ-साथ करती रही। फिर उसी यूनिवर्सिटी से मैंने और मेरी बेटी ने एक ही क्लास में बैठ कर पोस्ट ग्रेजुएट भी किया, जिसकी बहुत चर्चा हुई, बड़े-बड़े अख़बारों में प्रकाशित हुआ- "टू जनरेशन टूगेदर सिटिंग इन द सेम क्लास रूम", एम्पलॉयमेंट ऑफ़िस में, वीडियो बने, मुझे सरकार ने सम्मानित करने के लिए लंदन बुलाया। दोनों बेटियों ने मेरा जम कर हर क़दम पर साथ दिया।

विश्वविद्यालय जाते समय मैंने बड़ी लड़की के लिए एक अनकही लक्ष्मण रेखा खींचते यही कहा कि बेटा स्थिति को ध्यान में रखना, तुम्हारी छोटी बहन भी है। अगर तुम्हें कोई पसंद भी आए तो मुझे लोगों से नहीं, सबसे पहले तुमसे पता लगना चाहिए। मैंने भी वही किया जो मेरे पापा जी ने हम तीनों बहनों के साथ किया था।

मेरी बेटियाँ जवान हो रही थीं उनके विवाह को ले कर एक और महायुद्ध आरम्भ हुआ। बेटा और पति न होने के कारण लोग कहने लगे "ओथे रिश्ता की करना जित्थे मत्थे लगने वाला कोई बंदा नयीं है न उसके बेटा है न पति"। दूसरी बोली "लोग तो दहेज़ में मकान देते हैं, वोह क्या देगी"। ऐसे-ऐसे कटाक्षों का सामना करना पड़ा।

पढ़ाई समाप्त होने के पश्चात् जब मैंने बेटियों से पूछा कोई पसंद है तो बता दो, तो बड़ी बेटी बोली मम्मी "यह बहुत मुश्किल काम है आप ही साथी ढूँढ़ दो," दोनों बेटियों ने मेरा मान रखा, सदा मेरे साथ खड़ी रहीं। यही नहीं जब बेटी की शादी तय हो गई, तो एक दिन वह मुझे पंद्रह हज़ार पाउंड का चेक देते बोली- "यह शादी में काम आएगा।" मैंने

हैरानी से पूछा "इतने पैसे कहाँ से आए ?" उत्तर देते हुए बोली "मम्मा मैंने पंद्रह महीने काम किया है ये वही पैसे हैं, मैं केवल पचास पाउण्ड पेट्रोल के लिये लेती थी।" मैंने कहा "बेटा ये तो तुम्हारे पैसे हैं।" तो बोली "मम्मा आप और मैं नहीं... इट इस अस (हम)" उसकी इस बात से मैं स्तब्ध और निशब्द थी। आज बेटी ने मुझे एक नया पाठ पढ़ाया और बहुत कुछ सिखा दिया। बड़ी बेटी की देखा-देखी छोटी ने भी वैसा ही किया। सोलह वर्ष की होते ही दोनों ने कभी मुझ से कोई ख़र्चा नहीं माँगा, वीकेंड में काम कर के अपनी ज़रूरतों की स्वयं पूर्ति करने लगीं। भगवान् ने भी दो बेटियों के वरदान के साथ-साथ दो बहुत ही संस्कारी जवाई भी मेरी झोली में डाल दिए।

मुझे याद है मेरे विश्वविद्यालय जाने से पहले मेरे पापा जी ने भी मेरे दादा जी पूछा था कि अरुण यूनिवर्सिटी जाने वाली है तो मेरे दादा जी ने कहा "सागर बेटा-बेटियों को को-एजुकेशन कॉलेज में डालना।" मेरे दादा जी की धारणा थी कि जब बच्चों पर विश्वास करके ज़िम्मेदारी सौंपी जाती है तो बच्चे आपका विश्वास कभी नहीं तोड़ते।

हम चार बहन-भाई थे, पापा जी की सरकारी नौकरी थी, अमीर तो नहीं थे किंतु बहुत ग़रीब नहीं थे। पापा जी को मिर्ग़ी के दौरे पड़ते थे, उनका आधा वेतन उनकी बीमारी पर ख़र्च हो जाता था, तंगी तो थी फिर भी घर ख़ुशियों से भरा था। सर्दियों में अँगीठी कमरे में रख कर हम सब एक ही बिस्तर में घुस कर मूँगफली, रेवड़ी और गजक का आनंद लेते थे। घर का माहौल इतना स्नेह से भरा था कि हम अपने मम्मी-पापा से हर विषय में बहुत खुल कर बात कर सकते थे। मेरे पापा जी मेरे बेस्ट फ्रेंड थे। यहाँ तक कि मैं अपने पापाजी से रमेश की बात भी कर लेती थी। उन्हें अपने बच्चों पर अटूट विश्वास था, बच्चों ने उनके विश्वास का पूरा मान रखा। मेरी मम्मी मेरी सहेलियों की भी सहेली थीं। वैसे मेरी माँ पढ़ी-लिखी थीं उन्होंने रतन-प्रभाकर किया था। अगर कहीं उनके हाथ कोई किताब लग जाए तो, जोंक की तरह उस से चिपक जाती थीं उस

दिन आप को भूखे रहना पड़ता था। हमने बहुत जले फ़्लेवर के खाने खाये हैं।

रोज़ शाम को सामने झुगियों वाले बच्चे हमारी बैठक में बैठ कर पढ़ते थे। पापा जी को उनका स्ट्रीट लाइट के नीचे बैठ कर पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। उनमें से कालू राम मेरा मित्र बन गया, क्योंकि मैं उसके होम वर्क में उसकी मदद करती थी। स्कूल के बाद कालू राम छाबड़ी लगाता था, अक्सर मैं उसे झाँसा दे कर उसकी गुड़ की सेव चोरी कर कर के खा लेती थी, वह जानता था किंतु हँसता रहता। मेरी बेटियाँ अपने अपने घरों में बहुत ख़ुश थीं। दोनों बेटियाँ मेरे लिये भगवान् का दिया वरदान सिद्ध हुईं। उनका मुझे क़दम-क़दम पर सहयोग मिला। अब मेरे युद्धों का अंत हो चुका था।

अब मेरा अपना जीवन आरम्भ हुआ था, अपनी अधूरी इच्छाओं को पूर्ण करने का समय था। अब मुझे अपने लिए जीना था। शास्त्रीय संगीत में विशारद तो थी ही, जवानी में मंच पर गाया भी ख़ूब था, विश्वविद्यालय में बेस्ट सिंगर चुनी गई, पेंटिंग की भी शौक़ीन थी। अपना तानपुरा और बाजा निकाल कर आर्ट सेंटर में पेंटिंग और संगीत की क्लास में दाख़िला ले लिया।

एक प्रेरणदायक घटना जो मैं जीवन भर नहीं भूल सकती। अवकाश के पश्चात् एक दिन एक मित्र स्वर्ण तलवाड़ जी मुझे ज़बरदस्ती एक सहित्यक संस्था "गीतांजलि बहुभाषी समुदाय" में ले गईं। जहाँ सदस्यों को हिन्दी भाषा लेखन के लिए प्रेरित किया जाता है। जिसमें मेरा झुकाव बिलकुल नहीं था।

गीतांजलि के द्वारा आयोजित आदरणीय ममता कालिया जी, रवींद्र कालिया जी और तेजेंद्र शर्मा जी द्वारा संचालित कहानी लेखन की कार्यशाला में मैंने भी भाग लिया। कार्यशाला के अंत में ममता जी ने हमें कहानी लिखने को कहा। बात आई-गई हो गई। एक दिन अपने गार्डन में बैठे-बैठे मैंने एक कहानी "वे चार पराँठे" लिख डाली। जब मैं भारत गई तो पता लगा ममता जी मेरे घर के पास ही रहती हैं। हिम्मत बटोर कर उन्हें फ़ोन किया, उन्होंने घर आने को कहा। उनके घर तो पहुँच गई किंतु कहानी का ज़िक्र करने की हिम्मत नहीं पड़ी, ममता जी समझ गईं कि मैं कुछ छुपा रही हूँ। डरते-डरते उन्हें कहानी दिखायी, कहानी पढ़ते ही वे बोलीं "यह कहानी बहुत अच्छी है, इसे मेरे पास छोड़ जाओ।" पेंसिल से लिखी होने के कारण, मैं थोड़ा हिचकिचाने लगी। उसी क्षण उन्होंने मुझे उसकी फ़ोटो कॉपी करवा कर उसकी कॉपी मुझे दे दी।

कहानी की कार्यशाला से पहले पता चला कि रवींद्र जी तथा ममता कालिया जिनका सामान हवाई अड्डे से ग़ायब हो गया था। कार्यशाला के सभी दस्तावेज़ उसी में थे। कार्यशाला के आख़िरी दिन रमा जोशी जी का बेटा ममता जी का सामान ले कर कार्यशाला पहुँचे जो ग़लती से वे उठा कर ले गए थे।

कई महीने बीत गए, मैं तो भूल चुकी थी। एक दिन जब मैं स्कूल से वापिस आई, मेरी आंसरिंग मशीन पर लाल बत्ती जगमगा रही थी। मशीन कहानी की सराहना के संदेशों से भरी पड़ी थी।

हैरान थी कि लेखन के क्षेत्र में तो मुझे कोई जानता ही नहीं था। पता लगा कि मेरा फ़ोन नम्बर लोगों को भारतीय उच्चायोग लंदन से मिला था। जो विश्वास से परे था। मैंने ख़ुद को च्यूँटी काटी कि देखूँ मैं होश में तो हूँ। उस कहानी ने मेरे लिए दीपावली के पटाखे अनार का काम किया। उसके बाद मैं रुकी नहीं।

मैं तहे दिल से आभारी हूँ ममता कालिया जी की जिनके प्रोत्साहन से मैं आज भी मैं लेखन से जुड़ी हूँ, मैं रुकी नहीं। बेशक मेरे

लेखन की आयु अधिक लंबी नहीं है।

लेखन में दूसरा प्रोत्साहन मुझे मेरे शिक्षक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. महीप सिंह जी से मिला। अवकाश के पश्चात् मैं जब भी भारत जाती, महीप सिंह जी से ज़रूर मिलने जाती थी। लेखन में आने के पश्चात् कुछ अपनी लिखी कहानियाँ लिख कर मैं डॉ. महीप सिंह जी के घर पहुँची। डॉक्टर साहब हैरान थे कि सदा चबड़-चबड़ करने वाली शरारती लड़की आज चुप कैसे बैठी है ? सर जान गए थे कि मैं कुछ कहना चाहती हूँ, मेरे शिक्षक जो थे, हर शिक्षक अपने शिष्य को भलि-भाँति जानता है। उनके बार बार पूछने पर मैंने बहुत डरते-डरते कहा- "सर जी मैंने कुछ कहानियाँ लिखी हैं।"

डॉक्टर साहब अपनी हँसी रोक नहीं पाए वह हँसते-हँसते बोले "कक्कड़ तुमने .....? कहानियाँ लिखी हैं ?.....सच में..... ?" उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ उनके हिसाब से तो उनके सामने बेहद शरारती, सदा खेलों में, संगीत में, राजनीति में भाग लेने वाली लेखन में कैसे आ गई ?

मुस्कराते हुए बोले "दिखाओ ....देखूँ ....." कहानियाँ देख कर वह फिर मुस्कराए। उन्होंने अपने एक शिष्य को बुलाया और बोले इन्हें एडिट करो। फिर सर ने अपनी पत्रिका 'संचेतना' में मेरी कहानियों को निरन्तर प्रकाशित किया। कई बार तो मुझे कहानी के गुण-अवगुण भी समझाये। उनके अचानक चले जाने से मेरा बड़ा नुक़्सान हुआ।

सुधा ओम ढींगरा ने निरंतर मेरी कहानियों को अपनी पत्रिका 'विभोम-स्वर' में स्थान दे कर मुझे प्रोत्साहित किया। बस एक मलाल है कि मुझे हमारे लंदन के स्थापित वरिष्ठ लेखकों का प्रोत्साहन तो क्या उनका सहयोग भी नहीं मिला। पिछले बारह वर्ष में मेरे चार कहानी संग्रह और दो काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। एक कहानी संग्रह और एक काव्य संग्रह प्रकाशन में हैं। मेरे लिखे की उम्र बहुत छोटी है, मैं अभी भी सीखने की प्रक्रिया में हूँ। पता ही नहीं चला कि कब प्रेम से भरा मन जवान हुआ और कब जवानी ख़त्म हो गई।

000

लघुकथा

सिग्नल

सौरभ सोनी

शाम का समय हो गया था। उस भीड़ भरी सड़क का यह सबसे बड़ा चौराहा था, जहाँ हर वक़्त लोगों की चहल-पहल बनी रहती थी। चौराहे के एक कोने पर हरीराम अपने ठेले पर रोज़ की तरह गर्मागर्म मूँगफली के पैकेट्स सजा कर, उनके बिकने की आस लगाए खड़ा था। हरीराम का आठ साल का बेटा, मुन्ना, ठेले के पास पड़े कंकड़ों से कंचे खेलने में मगन था। कई दिनों बाद आज वह ग़ुब्बारे वाला चौराहे पर आया और "गुब्बारे ले लो" की आवाज़ें लगाने लगा। आज उसके पास वे गैस वाले ग़ुब्बारे भी थे, जो हवा में उड़ने को बेताब थे, और एक गुच्छे में एक बड़ी लकड़ी से बँधे हुए थे। मुन्ना की नज़रें उन ग़ुब्बारों से हट ही नहीं पा रही थीं। बीच-बीच में वह हरीराम की ओर आशा भरी नज़रों से देख लेता था। उसके बाल मन को शायद अंदर से यह कहीं न कहीं पता था कि यह उसकी पहुँच से बाहर है। हरीराम के अंदर का पिता कई बार गल्ले में देख चुका था कि कब शाम के राशन के पैसे पूरे हो जाएँ और उसके बाद की कमाई से वह मुन्ने के लिए ग़ुब्बारा ख़रीद सके। जैसे-जैसे शाम का धुँधलका बढ़ रहा था, उसकी चिंता भी बढ़ रही थी।

तभी एक चमचमाती नीले रंग की बड़ी सी गाड़ी सिग्नल पर, सड़क के उस पार आकर रुकी, जो अभी-अभी नारंगी से लाल हुआ था। यह बड़ा चौराहा था, इसलिए यहाँ सिग्नल का इंतज़ार करीब डेढ़ मिनट का होता था। गाड़ी का शीशा धीरे-धीरे नीचे सरका और उसमें से एक नन्हें-से बच्चे का छोटा सा हाथ बाहर निकला, जो ग़ुब्बारों की तरफ़ इशारा कर रहा था। पल भर के लिए मुन्ना की नज़र उस बच्चे से मिली और दोनों के चेहरों पर एक मुस्कान दौड़ गई। लेकिन कुछ ही क्षणों में पूरा ग़ुब्बारों का गुच्छा उस कार के साथ लहराते हुए चला गया। गाड़ी का शीशा बंद हो चुका था और अंदर से उन नन्हें हाथों ने ग़ुब्बारों की डोरी को कसकर पकड़ा हुआ था। ग़ुब्बारे वाला आज बहुत ख़ुश था।

उधर, सड़क के इस पार की ग़रीबी, उस पार की अमीरी को खीजकर कोस रही थी।

000

सौरभ सोनी, 208 मेसन रिवर प्लेस,
मोर्रिस्विल, नॉर्थ कैरोलाइना-27560
मोबाइल- 732-318-7567
ईमेल- saurabh.soni25@gmail.com

दरवाज़े

उर्मिला शिरीष

503, ऑर्चिड, रुचिलाईफ स्केप,
जाटखेड़ी, होशंगाबाद रोड़ भोपाल, म.प्र.
462047
मोबाइल- 9303132118
ईमेल- urmilashirish@hotmail.com

वह दरवाज़े के बाहर है।

और वह दरवाज़े के भीतर है।

वह बार-बार आवाज़ देकर बुला रहा है। उसकी आवाज़ में तड़प है, पुकार है, हृदय से निकली कराह है।

और यह, उसकी तड़प भरी आवाज़ को सुनकर भी अनसुना कर रही है।

निर्णय लेना ही होगा।

कब लोगी निर्णय?

जल्द ही।

जल्द कब? कब? कब तक?कोई तारीख़! कोई दिन! कोई पहर!

जब बुढ़ापा और बीमारी चेहरे पर, बालों में, हड्डियों में उतरकर उन्हें गला देगी, चेहरे को मुरझा देगी, बालों को झड़ा देगी और स्मृतियों को सदैव के लिए दु:ख के सागर में डुबो देगी, तब? और सुनो फ़िल्मी तर्ज़ पर कहूँ कि कहीं देर न हो जाए।

तो! सच्चाई को देखो और समझो।

उस तरफ के सारे दरवाज़े बंद हो जाएँगे।

दरवाज़े खुले ही कब थे?

दरार तो थी झाँकने के लिए।

दरार से हवा आ सकती है? पर पूरी रोशनी नहीं। जो कभी उजाला बनकर बिखरती है तो कभी विटामिन डी के रूप में हड्डियों को सुदृढ़ बनाती है।

सबसे पहले किसके बारे में सोचना चाहिए?

बच्चों के बारे में।

वे सोचते हैं?

समाज के बारे में?

समाज सोचता है?

स्वर्गीय पति के बारे में

वे देखने आएँगे?

पति के परिवार के बारे में

उन्होंने पलटकर देखा!

सोचना है तो सिर्फ अपने बारे में सोचो, क्योंकि आज तुम्हारे बारे में सोचने वाला वह है या स्वयं तुम।

एक का साथ पाने के लिए सबका साथ छूट जाएगा।

लेकिन एक 'उससे' तुम्हें सब कुछ मिलेगा प्यार, सुरक्षा, जीने का मक़सद, रूहानी ताक़त, बुद्धि का साथ। संवाद करने वाला साथी। ज़िंदगी की क़द्र करने वाला!

और शेष सबके साथ....?

भाग्य की लिखी इबारत को पढ़ने के लिए सब तुम्हें बार-बार याद दिलाएँगे और तुम अपने एकांत में पूजा नहीं, प्रार्थना नहीं, प्रेम नहीं केवल आँसू बहाओगी और यही आँसू तुम्हारी नियति बन जाएँगे। चुनना तुम्हें है।

मन छटपटा रहा है। बुद्धि तर्क-वितर्क कर रही है। हृदय भावों से छलक रहा है, आत्मा परमात्मा को पुकार रही है। पेड़ों पर शाम की परछाइयाँ उतर आई हैं, परिन्दों का कलरव अब

धीरे-धीरे मंद होता जा रहा है, जीवित जीवों की पुकार मंद होते हुए भी हृदय में सीधे धड़कने लगती है। बीच में पेड़ों की शाख़ों से अजीब सी आवाज़ें, ध्वनियाँ और सरसराहटें उठती हैं। ध्यान से सुनती है। कान लगाकर, चित धरकर तो हर आवाज़ में, हर ध्वनि में, हर सरसराहट में कोई न कोई पुकार, व्याकुलता, आर्त और तड़प सुनाई देती है। ये भी क्या अकेले हैं मेरी तरह। मेरी आवाज़ें, मेरी पुकार, मेरी तड़प कैसे एकाकार हो गई है इस जीव-जगत् के साथ। वह खिड़कियाँ बंद कर देती है।

सुशांत का परिवार इटली में बस गया है। परिवार को लेकर सुशांत ही गया था। इधर पिता का अच्छा-ख़ासा बिज़नेस था। उधर सुशांत की नौकरी बहुत अच्छी थी। वहीं की लड़की से शादी कर ली थी। पिता ने विरोध किया था। सुशांत को बुलाते रहे पर सुशांत ने कह दिया था कि उसे बिज़नेस में कोई दिलचस्पी नहीं है। उम्र के साथ पिता चिड़चिड़े और अकेले होते गए थे। फैक्ट्री पहले घाटे में गई फिर बंद हो गई। काम करने वाले कर्मचारी, वर्कर्स सब बेरोज़गार हो गए थे। उनके घर में आर्थिक अभावों का ऐसा असर पड़ा कि एकाध ने तो आत्महत्या तक कर ली थी। पिता की मृत्यु के बाद सुशांत ने कह दिया था यहाँ की सारी संपत्ति बहन को दे दी जाए। अब इतने वर्षों बाद लौटकर आया है तो जैसे लंबी तपस्या के बाद बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हुआ था, उसी तरह उसे आत्मबोध हो रहा है। बोध हो रहा है पीछे छूट गए समय का, संबंधों का, संबंधों के बीच फैली शांत पड़ी अनुभूतियों का। लगभग डेढ़ दशक बाद तमाम तरह के भोग-विलास सुखों में जीने के बाद सुशांत को अपने देश और अपने शहर के बारे में जानने की, वहाँ से लौट आने की एकाएक बैचेनी होने लगी। सुशांत को लगा था संपत्ति देने, देश छोड़ देने से स्मृतिलोक भी उससे छूट जाएगा। लेकिन यहाँ तो ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ रही थी स्मृतिलोक उसे खींच रहा था। किसी एक की याद ने उसे जैसे सोते से जगा दिया। एक नहीं बल्कि सात-आठ रातें वह जागता रहा। भूमिका तैयार करता रहा कि

बच्चों को क्या कहेगा, पत्नी को कैसे समझाएगा? कि माँ की मृत्यु के बाद उसका मन इस ख़ूबसूरत, भव्य और आलीशान मकान में घबराने लगा था। फूलों से सजा यह मकान उसे बेरंग, उदास और ख़ामोश लगने लगा था कि वह यहाँ घुट-घुटकर मर जाएगा।

बस वही एक निर्णय की रात थी अन्यथा जीवन में कई रातें आईं होंगी जागती हुई, उल्लास से भरी, नृत्य और संगीत की स्वरलहरियों में डूबी, प्रियतमा की बाँहों में झूलती, शराब के नशे में थिरकती पर इस रात ने जैसे उसे सारे रंगों से, आवरणों से, भ्रमजालों से, आकाश, पताल और धरती की देखी-अनदेखी चीज़ों के आकर्षण से अलग-विरक्त कर दिया था। पत्नी सुनकर दो दिन ख़ामोश रही। अबोला बना रहा। नाराज़ हुई। चिंता प्रकट की पर साथ आने के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। बाद में 'आ जाऊँगी' ऐसा कोई आश्वासन भी नहीं दिया।

बच्चों ने कहा, पापा की मर्ज़ी। वे जहाँ जाना चाहे, जैसे रहना चाहें। पापा ने जीवन भर हमारे लिए किया अब उनको अपनी ज़िंदगी जीने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए। सुशांत का मन हवा की तरह हल्का होकर उड़ने लगा था। वह अगले दिन आसमान में उड़ रहा था और उसका मन सचमुच हवा की गति से भी ज़्यादा यानी प्रकाश की गति से भाग रहा था।

सुशांत को याद है। अलमारी में एक पुरानी डायरी हुआ करती थी। थोड़ी मेहनत की। सामान इधर-उधर किया तो फटी-उधड़ी पीली पड़ गई डायरी उसके हाथ लग गई। सुशांत ने मुस्कराकर डायरी को सीने से लगा लिया मानों डायरी न हो कोई प्यारी सी गुड़िया हो।

पहला फ़ोन नंबर जो खोजा वह उसी का था। घर में टेलीफ़ोन कौन रखता है? मोबाइल का ज़माना है पर आश्चर्य कि टेलीफ़ोन अस्तित्व में था। रिंग जा रही थी। एक बार, दो बार हाँ तीसरी बार भी सुशांत ने फ़ोन लगाया, पूरी लंबी घंटी सुनी।

"हलो।" एक नरम सी उदास आवाज़ सुनाई दी। सुशांत का दिल धड़का...। चौसठ साल के प्रशांत का दिल धड़का... पूरे शरीर में एक ठण्डी लहर सी दौड़ गई।

"हलो कौन बोल रहे हैं।"उधर से आवाज़ में कंपन था।

इस छोर पर नीरवता उस छोर पर भी नीरवता।

"जी मैं सुशांत... क्या मेरी बात यामिनी से हो रही है?"

ओह सन्नाटा इतना भारी इतना लंबा जैसे सदियाँ गुज़र गई हो... इसी मुद्रा में बैठे हुए, फ़ोन का चोगा पकड़े हुए। क्या मैं बुत बन गया हूँ?

"यामिनी बोल रही हूँ।"

"यामिनी, मैं सुशांत। भूल गई?"

"सुशांत, कहाँ से बोल रहे हो?"

"यहीं से... भारत से, लखनऊ से।"

"सच्च...।" उधर से उठता विस्मय में डूबा संगीत-सा स्वर दर्द में घुलता जा रहा था; जबकि इधर से जा रही आवाज़ में खुशी पानी में शहद की तरह घुलती जा रही थी।

"ठीक हो।"

"हाँ।"

"मिल सकता हूँ?"

"क्यों नहीं।"

"पता...!

"नोट कर लो।"

"कल आता हूँ।"

"जैसी तुम्हारी मर्ज़ी।"

कल यानी अब से लेकर कल तक अठारह घंटे शेष थे। सुशांत उँगलियों पर गिन रहा था। एक घंटा बाथरूम में निकलेगा। एक घंटा घूमने में। एक घंटा व्यायाम करने में।

एक घंटा खाना बनवाने और खाने में। एकाध घंटा न्यूज़ सुनी जा सकती है। फिर शेष बचे घंटों में क्या किया जाए ? किसी लाइब्रेरी में जाकर बैठा जा सकता है या पार्क में। किसी पेड़ की छाँव में भी समय बिताया जा सकता है। छह-सात घंटे सोने में निकल जाएँगे।

उफ.. नींद भी आएगी क्या? रात भर करवटें बदलते हुए बीतेगी।

यह क्या हो रहा है? वक़्त ने क्यों जकड़ लिया है। वक़्त भी कई बार लोहे की जंज़ीरों की तरह जकड़ लेता है। वक़्त क्यों नहीं बाढ़ के पानी की तरह बह जाता है।

कुछ ले जाऊँ क्या? नहीं...नहीं। उसे गिफ़्ट लेना पसंद नहीं था। पहले देखना मिलना ज़रूरी है। चीज़ें तो बहाना होती है अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की। संवाद करने की। हाँ किताबों की दीवानी थी। डायरी पेन और किताबें इन्हीं के पीछे पागल रहती थी। वह इस जगत् के पार उस अदृश्य जगत् की रहस्य में डूबी अलौकिक शक्तियों, पराशक्तियों और आध्यात्मिक जगत् की अन्वेषक थी। हर क्षण जिज्ञासा से भरी, हर पल नया कुछ पढ़ने को बेचैन रहती थी। अलमारी दोबारा खोली पर उसको देने लायक कोई किताब और डायरी नहीं थी। बहन ने कहा था कि मैं आपकी किताबें रद्दी में बेच रही हूँ या बहुत ज़्यादा आपको मोह है तो कॉलेज की लायब्रेरी में भिजवा दूँगी। सुशांत के चेहरे पर उदासी उतर आई। काश ! वे किताबें आज होतीं तो उनके बीच बैठकर कैसे भी पूरी रात बिता लेता। एहसास हो रहा था कि किताबें जाने का अफ़सोस इतना बैचेन कर सकता है।

बस अब तीन घंटे शेष बचे थे। तीन घंटे सुशांत के लिए तीन वर्ष नहीं तीन युग के समान थे। उसने थैला उठाया और बाहर निकल गया। सड़क के पार थोड़ी दूरी पर पार्क था। पार्क में बैंचें पड़ी थीं। दो-तीन झूले पड़े थे। छतरी लगी थी। पार्क में अलग-अलग ग्रुप में लड़केलड़कियाँ बैठे थे। इक्का-दुक्का बुज़ुर्ग और महिलाएँ बैठी ऊँघ रही थीं। पेड़ों के बीच में जानवरों की आकृतियाँ खड़ी थी। हरी घास पर पैदल चलने वालों की भीड़ थी।

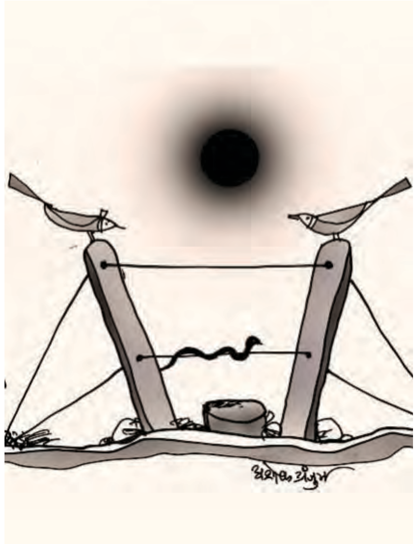

पता नहीं क्यों यहाँ परिन्दे नहीं थे। कुछ थे तो वे पिंजरे में बंद थे। बिना परिन्दों के पार्क सूना-सूना लग रहा था। लगता है इंसानों की वजह से परिन्दे कहीं और ठिकानों या वृक्षों पर चले गए हैं। एक ज़माने में सुशांत भी इसी पार्क में भागा-भागा आता था घंटों बैठकर उपन्यास पढ़ता था। यहीं पर यामिनी का इंतज़ार करता था। यामिनी की आदत थी दो घंटे इंतज़ार करवाने के बाद आना। उसके सौ बहाने होते थे फिर दो-ढाई घंटे बैठकर अविराम बोलती रहती थी, किसी उपन्यास पर या किसी अन्य विषय पर। जैसे पत्तों की बनावट और रंगों पर, फूलों की ख़ुशबू और मनुष्य के मन पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में या तितलियों की प्राकृतिक संरचना पर। या रात में देखे गए सपनों के बारे में। हँसती-हँसाती थी। उसकी हँसी की गूँज चारों तरफ़ सुनाई देती थी। उसके ठहाके भी कम न होते थे। उन ठहाकों को लेकर उस पर ख़ूब टाइटल लिखे जाते थे। यामिनी... सुशांत के मुँह से बेसाख़्ता आह सी निकली। इस मन ने हर चीज़ को त्याग दिया, भुला दिया पर तुम क्यों नहीं विस्मृत हुईं। तुम क्यों पत्थर की तरह अपने भीतर पानी का झरना छुपाये मेरे भीतर बैठी रहीं।

सुशांत ने घड़ी देखी। अभी एक घंटा और शेष था। उसने पार्क में एक लंबा राउण्ड लिया फिर बैंच पर बैठकर गहरी-गहरी साँसें लीं। रूमाल से पसीने से भीगे चेहरे को पोंछा। पहुँचते-पहुँचते समय हो ही जाएगा, सोचकर सुशांत चल दिया।

ठीक एक घंटे बाद सुशांत यामिनी के दरवाज़े पर खड़ा था। बार-बार उँगली कॉल बैल के स्विच पर जाती फिर ठहर जाती। अजीब-सी सिहरन उसके मन को, उसके तन को सिहरा रही थी। सामने वही तो होगी! यामिनी ही आएगी। दौड़ती हुई। हँसती-मुस्कराती। फिर ठहाके लगाकर उसे चुप कर देगी।

कितना लंबा अंतरांल! बीच का अंतराल जीवन में भूलने का होता होगा। विस्मृति काल! भूल जाओ और लग जाओ अपने गृहस्थ जीवन में। बच्चों की परिवरिश में। पढ़ाई में। मकान ख़रीदने या बनवाने में। सुख सुविधाएँ जुटाने के लिए कोल्हू के बैल की तरह जुते रहो। सबसे प्रिय लोग... सबसे सुंदर चीज़ें, सबसे मधुर यादें सब कुछ भूलने का समय उफ़! स्मृति और विस्मृति के पहियों पर जीवन-रथ दौड़ता रहता है।

सुशांत ने घंटी बजायी।

एक बार फिर ठहरा। दुबारा फिर ठहरा। तीसरी बार, अब दरवाज़ा खुला।

पहले स्त्री ने आधा दरवाज़ा खोलकर चेहरा बाहर निकाला और धीमी आवाज़ में पूछा- "आप कौन?"

"सुशांत।"

"आइए।"

स्त्री ने सुशांत को बैठक में बैठा दिया। बैठक की दीवारों में नमी थी, उसकी दम घोटूँ गंध थी। लगा दरवाज़ा बहुत कम खुलता है। लोग भी बैठक में कम बैठते हैं। सोफ़े भी पुराने हो चुके थे। बीच में रखी काँच की टेबल के नीचे यामिनी की प्रिय अभिनेत्री वहीदा रहमान का पोस्टर लगा था। नीचे कुछ अख़बार और पत्रिकाएँ थीं। साइड की टेबल पर भगवान् कृष्ण और राधा की मूर्ति रखी थी। ठीक सामने रखी थी यामिनी की सौंदर्य और प्रेम की नायिका, शालभंजिका की मूर्ति। भीतर और बाहर के बीच में पार्टीशन की जगह एक मोटा परदा डाला था। ज़ाहिर था उसके पीछे डायनिंग टेबिल रखी होगी। उसके बगल में रसोई घर होगा। फिर एकाध रूम भी होगा बस यही तो ढाँचा होता है, ऐसे मकानों का। आश्चर्य कि बरामदे में, कमरे में, कहीं भी

फूल, गमले और गुलदान नहीं था, क्या यामिनी ने फूलों, पत्तियों और लतरों से अपना नाता तोड़ लिया है?

"पानी लेंगे?"

"जी!"

सुशांत की बेचैन निगाहें हर दरवाज़े की ओर टकटकी लगाये हुए थीं। यामिनी किस दरवाज़े से निकलकर बाहर आएगी! आकर ज़ोर से बोलेगी, सुशांत। आख़िर हमारी याद अब आई? क्या बीवी ने भगा दिया है, फिर ठहाका लगाएगी। फिर बोलेगी, यार तुम तो बहुत बदल गए हो किसने तुम्हारी यह हालत बना दी है। तुम्हारी लायब्रेरी में कितनी किताबें बढ़ गई हैं? देखो मैं बिल्कुल नहीं बदली हूँ, वैसी ही हूँ।

अब तक दस मिनट हो गए थे पर यामिनी नहीं दिखी थी।

स्त्री ने चाय का ट्रे लाकर रख दिया था।

"शक्कर...?" स्त्री हाथ में ख़ाली चम्मच लिए उसकी तरफ़ देख रही थी।

"मैं ले लूँगा।" सुशांत ने बेमन से कहा। सुशांत के मन में आ रहा था कि ज़ोर की आवाज़ लगा दे- यामिनी। पर उसे यह भी एहसास था कि वह एक पराये घर में बैठा है। यामिनी के साथ पता नहीं कौन-कौन रहता होगा, लेकिन अब तक किसी भी कोने से, किसी भी कमरे से, बाहर-भीतर से कोई भी आवाज़ सुनाई नहीं दी थी। वह बैठा-बैठा ऊब रहा था। बैचेन हो रहा था। सामने रखी चाय ठण्डी हो गई थी। बड़ी मुश्किल से उसने दो घूँट चाय पी। वह जाकर पीछे वाले बरामदे में बैठ गया। यहाँ दीवारों पर बुक थैला बने थे, छोटी टेबल कुर्सी रखी थी। कुछ फ़ोटो और पेंटिंग्स रखी थी। सामने रखी बाँस की रैक में अंग्रेज़ी के कुछ उपन्यास, कुछ दर्शन तथा अन्य विषयों की किताबें रखी थीं। दूसरे खण्ड में पत्रिकाएँ रखी थी। बगल में रेडियो रखा था यानी यामिनी अब भी पढ़ती है। रेडियो सुनती है। चलो किसी ने तो अपनी पुरानी अभिरुचियों को ज़िंदा रखा है। अब सुशांत से बैठा नहीं जा रहा था। उसका इंतज़ार करने का धैर्य ख़त्म हो गया था। वह कभी रैक के निकट जाता तो कभी काँच के पार दिखाई दे रहे पेड़ों की कतार देखने लगता, तो कभी परदे के पास आकर खड़ा हो जाता। हर दरवाज़े के सामने परदा टँगा था। डाइनिंग टेबल पर खाली बर्तन रखे थे। क्या इन बर्तनों की तरह यह घर भी ख़ाली-ख़ाली नहीं है। परदे के पीछे किस रूम में यामिनी है वह समझ ही नहीं पा रहा था।घर में अजीब-सा सन्नाटा व्याप्त था। इस घर में आवाज़ें क्यों नहीं हैं! इस घर में किसी के आने-जाने की पदचाप क्यों सुनाई नहीं दे रही है। माज़रा क्या है? वह स्त्री भी न जाने कहाँ गायब हो गई थी। सुशांत ने फ़ोन लगाया। घर के घर में फ़ोन। हाँ आजकल यही तो हो गया है। एक दूसरे के कमरे में जाने के वजाय फ़ोन द्वारा अपनी बात पहुँचा दी जाती है।

फ़ोन की घंटी सुशांत को ही सुनाई दे रही थी। फ़ोन सामने वाले कमरे में बज रहा था यानी यामिनी को सामने वाले कमरे में होना चाहिए।

"यामिनी। यामिनी। अधीर होकर सुशांत ने पुकारा। यामिनी, मैं यहीं पर हूँ तुम्हारे घर में।"

फिर सन्नाटा।...गहरा सन्नाटा। लंबा सन्नाटा!

अब सुशांत से ठहरा नहीं गया। वह तपाक से सामने वाले कमरे के दरवाज़े पर जा कर खड़ा हो गया। सामने जो दृश्य देखा तो लगा चक्कर खाकर गिर पड़ेगा। न जाने कितनी देर तक दीवार पकड़कर खड़ा रहा। यामिनी पलंग पर पड़ी थी। धाराप्रवाह बोलने वाली यामिनी बोलने के लिए संघर्ष कर रही थी! उसके हाथ-पाँव नहीं हिल रहे थे। उसकी जुबान बमुश्किल से खुल रही थी। अब समझ में आया फ़ोन पर यामिनी इतना गैप क्यों लेती थी। वह पतझड़ के पेड़ की तरह हो गई थी सूखी, मुरझायी, रंगविहीन।

"क्या हो गया?"

"बैठो।" उसने इशारे से कहा।

"क्या हो गया है तुम्हें? क्यों हो गया! तुम यहाँ अकेली, इस हालत में।"

"कुछ नहीं हुआ, बोलने में तकलीफ़ होती है। ज़ुबान लड़खड़ाती है एक साइड का हिस्सा पैरालेटिक अटैक में आ गया था। अब ठीक हूँ बस ज़ुबान झटके लेती और देती है।" इस पूरे वाक्य को बोलने में यामिनी को अच्छा-ख़ासा समय लग गया था। और सुशांत के भीतर हज़ारों लाखों नंगे तार झटके मार रहे थे। वह पीड़ा से तड़प रहा था। उसने अपना चेहरा दूसरी तरफ फेर लिया। अपने आँसुओं को वह यामिनी के सामने नहीं बहाना चाहता था, पर वह रो रहा था। नीना। यामिनी घरघराती आवाज़ में पुकार रही थी। फिर उसने घंटी बजायी।

स्त्री जिसका नाम अभी-अभी पता चला था सामने आ खड़ी हुई।

यामिनी तकिए का सहारा लेकर बैठ गई।

"सब लोग कहाँ हैं?"

"साहब यहाँ नहीं रहते। वे बाहर हैं।"

"और....."

"बस बिटिया है वह पिछले हफ्ते ही आकर गई है। दस तारीख़ को फिर आएगी। अब तो मैडम फिर भी ठीक हैं डॉक्टर आता है देखने। नर्स इंजेक्शन लगाकर चली जाती है। और मैं हूँ। यहीं रहती हूँ।"

"ओह, यह क्या हो गया और क्यों।"

"दो बार मैडम को हॉस्पिटल में रहना पड़ा था। एक बार बीस दिन रही थीं और दूसरी बार एक महीना...। दिमाग़ का दौरा पड़ा था। ब्रेन हेमरेज।"

यामिनी ने नीना को चुप रहने का इशारा किया

"मैडम नहीं मानीं। मैडम किसी की बात नहीं सुनतीं।"

"क्यों।" सुशांत ने प्रश्न किया। उसकी आँखों में अब भी आँसू थे। दु:ख था। पछतावा था। वह स्वयं को ही अपराधी मान रहा था।

वह घर जाकर भी घर में नहीं था। उसकी आँखों के सामने यामिनी का कमरा, पलंग और उस पर लेटी यामिनी की छवि बर्फ़ की तरह जम गई थी। न तीन दिन उसने ठीक से कुछ खाया। न सोया। न किसी से बात की।

अजीब सी दर्द भरी ख़ामोशी उसके भीतर पसर गई थी!

और यह चौथा दिन था। सुशांत यामिनी के सामने आकर बैठ गया।

"चलो।"

"कहाँ?"

"फिलहाल कोई क्वेश्चन नहीं, कोई तर्क नहीं।"

"यूँ बिना बताये! अचानक। हॉस्पिटल में रहकर मैं थक गई थी।"

"ये बहाने मत बनाओ। मैंने कई डॉक्टरों से बात की है। तुम्हें अभी भी कम से कम तीन महीने देखभाल की ज़रूरत है।"

"मैं कोशिश कर रही हूँ न। ठीक तो हो रही हूँ...।" यामिनी बच्ची की तरह सुशांत को समझा रही है। लेकिन सुशांत जैसे आज प्रतिज्ञा करके आया था। वह ख़ामोश उसके बाहर आने की प्रतीक्षा में बैठा है। चेहरे पर बड़े बुज़ुर्गों जैसे भाव हैं। आदेश देकर न सुनने का भाव। उसने समय को याद कर लिया है। वह पैंतीस साल पहले का सुशांत बन गया है। बीच का समय उसने शून्य में बदल दिया है।

निर्णय लेने के लिए उसने यामिनी को थोड़ा सा समय दिया है। जानता है यामिनी लगातार असमंजस में है। उसकी आँखों में अनिश्चय का भाव दिखाई दे रहा है।

सुशांत फिर दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया।

"यामिनी, ये सोचने का समय नहीं है।"

"तुम किस किसको सफ़ाई दोगे? क्या कहोगे?"

"किस बात की सफ़ाई?"

"कि क्यों लेकर जा रहे हो?"

"अगर तुम नहीं चलती हो तो मैं यहीं आकर रहता हूँ। मैं देखभाल करूँगा।"

"यहाँ सब कुछ जमा-जमाया हुआ है। तुम कुछ ज़्यादा ही चिंता कर रहे हो।"

यामिनी सूनी-सूनी आँखों से सुशांत को देखे जा रही है।

"अब भी सबके बारे में सोच रही हो?"

"हाँ। सोचना पड़ता है।"

"तब भी सोचा था। सबकी ख़ातिर हमने शादी नहीं की थी। क्या मिला? क्या मिला बोलो! मुझे देश छोड़कर जाना पड़ा था। पिता अकेले बिज़नेस नहीं सँभाल पाए थे। फैक्ट्री बंद हो गई थी। सैकड़ों कर्मचारी बेरोज़गार हो गए थे। माँ तक पिता को छोड़कर मेरे पास आ गई थीं और वे अपनी बेटी के भरोसे ज़िंदा रहे थे। ये सब जानती हो न!"

"सुशांत.....।"

"जीवन की क़द्र करो यामिनी। अपने जीवन को इतना तकलीफ़देह और वैराग्य से भरा क्यों बना लिया है! मैं तुम्हारे नितांत व्यक्तिगत जीवन के बारे में नहीं जानना चाहता हूँ पर मुझे अंदाज़ा है कि तुम अकेली हो, आशुतोष (पति) तुमसे दूर जा चुका है। दुनिया जानती है कि वह दूसरी औरत के साथ रह रहा है। तुम्हारी उसे कोई परवाह नहीं है इस सच को स्वीकारती हो न! फिर क्यों नहीं अपने को स्वस्थ को और मज़बूत बनाती हो। लगता है इस एकाकीपन और हालात के लिए तुम ख़ुद ही ज़िम्मेदार हो। वह नहीं लौटेगा। अब तो अपने बारे में सोचो।"

"और तुम? तुम क्या कहोगे? कब से तुम्हारा प्रलाप सुन रही हूँ।"

"मुझे किसी को कोई जबाव देने की ज़रूरत नहीं है। बाहर गाड़ी खड़ी है। पहले हॉस्पिटल चलेंगे फिर मेरे घर।"

"सुशांत, सब कुछ ख़त्म हो जाएगा।"

सवाल जबाव। जवाब-सवाल। इतना लंबा सन्नाटे में डूबा इंतज़ार जैसे समुन्दर से आकाश के बीच कोई रेखा खिंच गई हो और उस रेखा को पार करना हो।

दरवाज़े के बाहर निकलो यामिनी। बाहर। बाहर की दुनिया, बाहर की हवा, बाहर की धूप, बाहर के लोग, पेड़-पौधे सब तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं। देखो बाहर का जगत् कितना ख़ूबसूरत है। ख़ुशबू से भरा। रंगों से आच्छादित। हरीतिमा की चादरें बिछी हैं। फूलों की डालियाँ सजी हैं। परिन्दे गा रहे हैं। हवाएँ सरसराते पत्तों की धुन सुना रही हैं। तुम्हें कविता की भाषा पसंद थी तो लौट आओ कविता की दुनिया में। सब अपनी जगह सुखी हैं, ख़ुश हैं तुम अपनी बीमारी के कारण उन सबको ख़ासकर अपनी बेटी को परेशान और चिंतित किए हुए हो। आओ यामिनी, दरवाज़े के बाहर आओ। प्लीज़ निकलो।"

यामिनी चुप है। यामिनी की चुप में पूरा घर डूबा है।

"मैं बाहर हूँ। दरवाज़े के बाहर तुम्हारा इंतज़ार कर रहा हूँ। नीना सब सँभाल लेगी। तुम्हें केवल अपने को सँभालना है। धीरे-धीरे आती मौत को तुम्हें पीछे धकेलना है। जो मृत्यु से जितना ज़्यादा डरता है, वह जीवन की उतनी ही क़द्र करता है।"

अब भी सब ओर ख़ामोशी है। तरल ख़ामोशी। सुशांत घड़ी देख रहा है। सेकेण्डस गिन रहा है। समय को बाँधने वाली सुइयों की गति को देख-सुन रहा है।

चुप... चुप... चुप...

फिर......।

हल्के से दरवाज़ा खुला।

यामिनी व्हीलचेयर पर है। साथ में छोटा सा बैग है। नीना ने एक अलग बैग में कपड़े, दवाएँ और ज़रूरी सामान रख दिये है।

"साहब, गाड़ी पोर्च में आ जाती तो।"

सुशांत गाड़ी पोर्च में लगा रहा है।

"यामिनी।"

"कुछ मत बोलो।" यामिनी के होंठ काँप रहे हैं।

"तुम अपनी ज़िंदगी के लिए जा रही हो।"

या ज़िंदगी के पास। यामिनी मन ही मन ख़ुद से पूछ रही है।

यामिनी ने गाड़ी में बैठते ही बेटी को मैसेज किया- "आराम से आना। चिंता मत करना। आज मन बार-बार कह रहा है कि, जीना है, आसमान में उड़ना है, तारों को गिनना है, हरी घास पर दौड़ना है। फूलों के बीच बैठकर चाय पीनी है, पेड़ों की छाँव में बैठकर कविताएँ पढ़नी हैं। तुम्हारी माँ को आज पहली बार, वर्षों बाद यह एहसास हुआ है कि उसका अपना भी जीवन हुआ करता था, उसका अपना भी अस्तित्व था, उसके भी अपने सपने थे, उसमें भी आकाश को छूने की क्षमता थी, वह भी आज किसी फील्ड में काम कर रही होती, लेकिन कभी अपने बारे में कोई निर्णय नहीं ले पाई थी। आज मेरा मन कह रहा है कि अब उसका भी अपना कोई निर्णय हो सकता है! इसी उम्मीद में जा रही हूँ। देह से जितनी बीमारियाँ चिपक गई हैं, उन सबको अलग करना है और मन, हृदय तथा आत्मा पर वर्षों से पड़ा जो बोझ है उसे उतार फेंकना है। उम्मीद है तुम मेरा साथ निभाओगी।

माँ...

000

एक धड़कन चूक गई

लक्ष्मी शर्मा

"चरखा चले घनन-घनन तार न टूटे, ओ राजा तार न टूटे राजा और रानी का प्यार न टूटे..." चौकीदार के बच्चों के युगल गान की आवाज़ सोसायटी के अहाते में दो तितलियों की जुगलबंदी सी उड़ रही है। सव्या का मन जुड़ा गया। इन जुड़वाँ भाई-बहनों के गाने की तितलियाँ अक्सर उसके होठों पर भी लिपट जाती हैं।

लिफ्ट से बाहर आकर घर का ताला खोलने तक वह गीत उसके होठों पर भी खेलता रहा। लेकिन दरवाज़ा खोलते ही उस के होठों पर मँडराते गीत की तितलियाँ अपनी मिठास का पराग लेकर उड़ गईं।

"तुम?" सव्या की आवाज़ की कड़वाहट से लिविंग रूम के सोफ़े पर बैठा भूरे-घुँघराले बालों वाला सिर भी चौंककर मोबाइल के भँवर से उभर आया।

"हाइ!"

"तुम घर में कैसे आए?" सव्या ने जवाब देने की जगह सवाल किया।

"ताला खोलकर।" सोफ़े पर मोबाइल फेंकते अंगद की स्किन फिट टीशर्ट से झलकती मछलियाँ एक बार मचल कर ठहर गईं। सव्या का मन भी साथ ही मचला और उसी तरह ठहर भी गया।

"और चाबी केयूर ने दी है जो ख़ुद भी पहुँचता ही होगा?" सव्या के चेहरे पर जाने क्या है।

"हाँ, लेकिन तुम आज घर जल्दी कैसे?" सव्या भी कॉलेज से जल्दी निकलते वक़्त कहाँ जानती थी कि घर आते ही पीरियड्स में दुखती कमर को आराम देने की जगह इस अतिथि को झेलना पड़ेगा, जो आए दिन का मेहमान है।

000

सब्यसाची सबनीस और केयूर मिस्त्री के ब्याह को अभी पूरा साल भी नहीं बीता है। वैसे केयूर सव्या की नहीं परिवार की पसंद था।

"मला लग्न करायचे नाही।" सव्या केयूर क्या किसी से भी शादी नहीं करना चाहती थी।

"समजून घ्या मुळगी! अच्छे घर का लड़का है, अपना बिज़नेस है तो तुझे नौकरी में ट्रांस्फ़र करवाने का झंझट भी नहीं होगा।"आई की बात में अनुभव तपा सच था।

"आज नहीं तो कल, इससे नहीं तो किसी और से, शादी तो करनी ही है तो यही सही।" ताप सव्या को भी छुआ और उसने बेमन से हाँ कह दी थी। केयूर अच्छे लड़के के साथ अच्छा पति

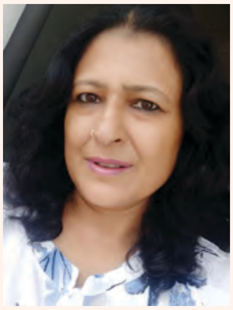

लक्ष्मी शर्मा
65, विश्वकर्मा नगर द्वितीय, महारानी फार्म, जयपुर -302018, राजस्थान
मोबाइल- 9414322200
ईमेल- drlakshmisharma25@gmail.com

भी निकला। वह अच्छे पति के सारे फ़र्ज़ पूरे करता है। हर तरह से सव्या का ध्यान रखता है, सव्या के पत्नी, इंसान और स्त्री-सुलभ सारे अधिकारों का सम्मान करता है। बदले में सब्यसाची भी अच्छी पत्नी बन के अपने घर-संसार में रम गई। छह दिन घर-बाहर के झंझटों में खपने के बाद सप्ताहांत पर आउटिंग या डिनर पर जाती, टीवी के सामने पसर कर थ्रिलर्स देखती और रात को वाइन के ख़ुमार में डूब कर प्रेम का आनन्द लेती ज़ाहिराना संतुष्ट है।

केयूर का कंप्यूटर ग्राफ़िक्स पर फ़ैशन डिज़ाइनिंग का काम अच्छा चल रहा है, जिसके चलते वह शाम को भी व्यस्त रहता है। पहले मीटिंग के चलते उसे हफ्ते में एकाध बार देर होती थी, जो अब दो-तीन बार होने लगी है।

"यार, तुम्हारे क्लाइंट्स को रात के वक़्त ही मिलना होता है, दिन में बीड पीकर सोते रहते हैं क्या?" सव्या को शाम का अकेलापन सदा से उदास करता है।

"यह नौकरी नहीं है जो सौदा पके या नहीं, छह बजे तनख़्वाह पक जाती है। अपने काम के लिए समय नहीं देखा जाता मेरी जान, और फिर यह शिट ट्रैफिक।" केयूर के जवाब हर बार सव्या को निरुत्तर कर देते हैं। कुल मिलाकर सव्या ख़ुश है। जो, जितना और जैसा वर्तमान मिला है उससे ज़्यादा की आकांक्षा उसे कभी थी भी नहीं।

000

अपने आज की छोटी से छोटी फाँक का रस छकती सव्या कब जानती थी कि गुज़रे कल के क़ब्रखाने में दफ़न पड़ी यादों में से एक याद जिन्न की तरह निकलकर उसके आज में आ खड़ी होगी। वह याद.. जिसके कम्बल में छुप कर वह उम्र की सारी सर्दियाँ गर्म कर लेना चाहती थी। वह याद... जिसके साथ उसने घर और घर में दो बच्चे बसाने का सपना देखा था। उसकी याद... जो एक दिन बिना कुछ बताए आँखों से निकल कर सव्या के सपनों में बस गया था।

वह याद... जो किसी रात सव्या के सपनों से निकल उसकी देह में समा जाती है, तो ख़ुद

के साथ देह को सुलाते हुए सुबह हो जाती है। वही याद एक शाम बिना बताए उसकी आँखों में उतर कर सामने आ... नहीं, केयूर ने ला खड़ी कर दी थी, अंगद के नाम से।

केयूर और सब्यसाची आज के खाँटी आधुनिक युवा हैं। महत्त्वाकांक्षी, लक्ष्योन्मुख और व्यवहारिक ग्लोबल यूथ के प्रतिनिधि, जिन के लिए शादी कॅरियर के बाद आती है। हाथ में लेपटॉप और जेब में कंडोम रख कर चलती यह पीढ़ी कॅरियर के लिए शादी टालती है, मन की इच्छाएँ और जिस्म की ज़रूरतें नहीं।

"चार लोग क्या कहेंगे।" के डर से बेबाक न्यू जेन, जो अपने पास्ट रिलेशन और एक्स पार्टनर की बात इतनी सहजता से साझा कर लेती है गोया डेंटिस्ट के पास जाने की बात थी। सव्या और केयूर भी कर चुके हैं, फिर भी जब पहली बार अंगद केयूर को घर लाया तो सव्या अकबका गई थी।

"देख सव्या, मैं किसे लाया हूँ। यही है न तेरा एक्स। लेकिन इस के चक्कर में मुझे वाय मत बना देना।" शायद अब केयूर कहेगा।

पर जब केयूर ने कहा-"सव्या, ये अंगद है। मेरा बिज़नेस पार्टनर और जिगरी यार डॉ. अंगद देशपाण्डे।"

"हाय" सव्या बज़ाहिर स्थिर थी। "और यह हैं हमारी बेगम सब्यसाची उर्फ सव्या।"

"हाय सव्या" बज़ाहिर अंगद भी सहज था।

000

"केयूर, हमने शादी के पहले ही वादा लिया-दिया था कि काम को घर नहीं लाएँगे।" अंगद का बार-बार घर आना सव्या को असहज ही नहीं करता, खटकता भी है।

"ऑफ़िस में क्लाइंट्स काम नहीं करने देते, अंगद के घर जाऊँ तो तुम देर से आने की शिकायत करती हो। आख़िर तुम चाहती क्या हो यार।" केयूर पहली बार रूखा बोला, और सव्या को पहली बार मालूम हुआ था कि केयूर अंगद के घर भी जाता है।

000

"अच्छी लग रही हो साची।"

"साची!" काफी बनाती सव्या चौंक कर नई यादों से बाहर आई, तो पुरानी याद ने हाथ पकड़ लिया। इस नाम से तो उसे सिर्फ एंडी बुलाता था।

"हे टिप्सी ऑर्किड, ये वाइन शेड अक्सर पहना करो, तुम पर ख़ूब खिलता है।"

"टिप्सी ऑर्किड!" ये एंडी ही है। उसे नित नए नाम देकर पैम्पर करने वाला पुराना एंडी, जो इन चार महीनों में पहली बार दिखा है।

"जाने दो अंगद, अब वह सब याद करके भी क्या फ़ायदा।" कॉफ़ी का प्याला पकड़ाती सव्या का सुर रूखा और चेहरा भावविहीन है, पर एंडी ने उसके निषेध कब माने थे जो आज मानता।

"ओएमजी! तुम अब भी वही प्लस माइनस कैलकुलेटर हो। और प्लीज़ ये सिक्सटीज़ की हिन्दी मूवी वाली सन्नारी बनना बन्द करो, जो शादी होते ही "पराई हूँ पराई मेरी आरज़ू न कर" गाने लगती है।"

'सन्नारी! माय फुट!" बेसाख़्ता हँस रही सव्या अंगद की इसी हाज़िरजवाब ख़ुशमिजाज़ी पर तो रीझी थी।

"याद है ग़ुस्सा या दुखी होने पर तुम मुझे इसी तरह हँसाया करते थे और मैं सब भूलकर हँस पड़ती थी।" अब सव्या भी रौ में आ गई।

"तो फिर ये स्वैग भी थूक दो माय चिल्ड कैंडी।" सुनते ही सव्या फिर हँस पड़ी। उसे ठंड ज़्यादा लगती है और अंगद "चिल्ड कैंडी" कह कर उसकी चुटकी लेता था।

"हाँ, और तुम मुझ पर अपना चुभता ऊनी

कम्बल ओढ़ा देते थे।" अंगद के सीने के घने बालों को यही तो कहा करती थी सव्या।

"चुभता! एट टू ब्रूटस।" अंगद की हँसी बरसात में भीगे उसके हाथ में पकड़े प्याले में तूफ़ान बन कर बरसी और बाँध तोड़ती कॉफ़ी उसकी छाती पर छलक गई।

"अरे-अरे! सँभल के, जला तो नहीं?"

"अरे न यार, इस अमेजन के जंगल में पहुँचना चाय बेचारी के बस की बात नहीं है।" कहते अंगद ने टीशर्ट उतार फेंकी। एंडी के सीने पर वही भूरा कम्बल फैला है, सव्या की एक धड़कन चूक गई।

"तुम बस एक भीगा हुआ नैपकिन दे दो और इस शर्ट को पानी में डाल दो, वरना दाग़ पड़ जाएगा।" केयूर का शर्ट पहनते एंडी के सीने पर फैले भूरे कम्बल के रोएँ हिल रहे हैं, सव्या फिर एक धड़कन चूक गई।

"तुम्हें याद है एंडी, जब हम गोआ गए थे और पता नहीं कैसे तुमसे अपना शर्ट भीग गया था।" ख़ुद को सँभाल कर ताज़ा कॉफ़ी में शक्कर घुलाती सव्या की आवाज़ यादों के मेले में घूम रही है और आँखों में ठहरे समंदरों के किनारे प्रकाश-स्तम्भ झिलमिलाते दीपों की चमक में शरारत कौंध रही है।

"ख़ूब याद है, एक दुष्ट लड़की ने टेप की जगह शॉवर का हैंडल घुमा दिया था। हमें एक घण्टे में निकलना था और हम तुम्हारे हेयर ड्रायर से शर्ट सुखाने की कोशिश में लगे थे।" यादों के मेले में सव्या का हाथ पकड़े घूमते अंगद की आवाज़ में झूठा ग़ुस्सा है।

"फिर वह शर्ट दो जलते जिस्मों की तपिश से ही सूखा था। जानते हो वह नमी आज तक मन भिगो देती है।" आगे की कहानी मन में पूरी करती सव्या पर इश्क ब्रांडी चढ़ चुकी है। "सुनो, तुम एक बार फिर से अपनी जिल्द भिगो लो न, मैंने देह की सिगड़ी का कोयला दहका लिया है।" साची एंडी की आँखों में आँखें डाल कर फुसफुसाना चाहती है, लेकिन यादों से बतियाता एंडी उसकी ओर देख ही नहीं रहा है।

"एंडी!" ख़ुमार में लड़खड़ाती इस आवाज़ की तासीर से एंडी के कान बख़ूबी परिचित हैं। उसने सव्या की बौराई आँखों में

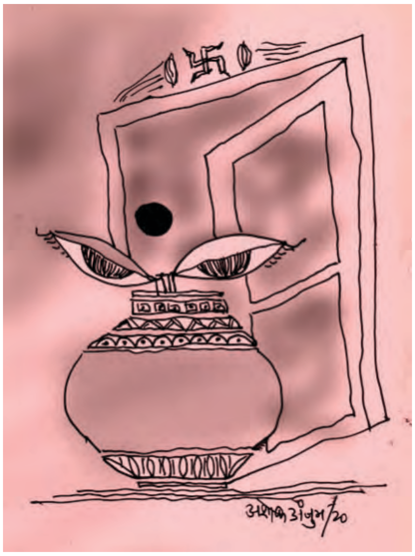

देखा, वहाँ बिखरे गुलाबी डोरे निमंत्रण के मांसल फूल काढ़ रहे हैं। और वह एक झटके में उस रेशमी गुच्छे से बाहर निकल कर अंगद बन गया। "अरे! यह केयूर अब तक क्यों नहीं आया। उसने तो कहा था दस मिनट में पहुँच रहा है।" अब वह फ़ोन पर कान टिकाए केयूर का ख़ास दोस्त है और सव्या दोस्त की बीवी। सव्या की आँखों के ठहरे समुंदरों में तूफ़ान उठा और दिपदिपाते लाइट हाउस झप्प से बुझ गए।

"क्यों किया तुमने मेरे साथ ऐसा, बोलो अंगद क्या हुआ था जो तुम अचानक मुझे छोड़ गए?" उपेक्षा की ठेस लगी तो आहत सव्या के मन मे धँसी फाँस चीस कर फूट पड़ी। अंगद के चेहरे पर एक के बाद दूसरा रंग उड़ रहा है लेकिन वह मुँह सिये बैठा रहा।

उसी समय घंटी बजी, केयूर आ गया था। सव्या की आँखों में सूखे सागर की रेत रड़क गई और वह उठकर अपने कमरे में चली गई। रहकर भी क्या करती, जानती है कि अब दोनों दूसरे बेडरूम में चले जाएँगे और एक-डेढ़ घण्टे बाद ही निकलेंगे।

"यहाँ डिस्टर्ब रहता है, काम पर कन्सन्ट्रेट नहीं हो पाता।" पहली बार कमरे में जाते केयूर का तर्क था। सव्या को चुप रहना पड़ा।

000

"केयू, ज़रा इलेक्ट्रिशियन का नंबर देना, हमारे रूम का एसी बन्द हो गया... और दरवाज़ा खटखटाते सव्या के हाथ और आगे के बोल जहाँ थे वहीं अटक गए थे, जब कंप्यूटर के सामने एक ही कुर्सी पर बैठे अंगद और केयूर के होंठ एक दूसरे पर झुके दिखे थे। उस दिन उसने ख़ुद को वहमी कह कर डाँट तो दिया था पर मन में बेचैन सवाल लगातार जवाब माँगते ही रहे। जब किचिन में अंगद के कूल्हों पर सरकते हाथ देखकर एक सवाल ने सिर उठाया तब भी उसने डपट दिया था, पर जब-तब चिपक कर बैठे गात और आपस में कसे हाथ देख कर सवालों की तंज़ कसती मुस्कियों को कितना चुपाती। बस सबको वहम के खाते में डाल कर ख़ुद ही चुप रह जाती।

000

अंगद की फर्म को बड़ा कॉन्ट्रैक्ट मिला है, घर तीनों की ख़ुशियों, वाइन की महक और शीशे की महक से भरा है।

"आय म डन..." एक ग्लास के बाद अंगद ने हाथ उठा दिए। सव्या जानती है अंगद ज़्यादा नहीं पीता।

"अभी तो पार्टी शुरू हुई है मेरी जान।" लेकिन खुशी में झूमते-झूमते केयूर ने अपना ग्लास अंगद के मुँह से लगाया और फिर उसके वाइन भीगे होंठ चूम लिए, लिप लॉक किस।

"बिहेव" सुन्न पड़ गई सव्या की पहली प्रतिक्रिया थी। सिटपिटाया अंगद केयूर की बाँहों से छिटक गया।

"नॉट मी बट यू हेव टू कीप ए चेक ऑन योर ब्लडी बिहेव, ऐसी बात सोच भी कैसे सकती हो तुम। क्या लगता है तुम्हें कि मैं गे हूँ? क्या तुम्हें बेड पर मुझमें कोई एब्नार्मेलिटी या कमी लगी? या मैं इमोशनली तुम्हारी सन्तुष्टि का ध्यान नहीं रखता?" पर ग़ुस्से में चिल्लाते केयूर का सुर उससे भी ऊँचा था।

"अरे, ख़ुशी के मौक़े पर जोश में कुछ हो भी गया तो कौन सा आसमान टूट गया। हमारी फ्रेटरनिटी में नॉर्मल है यह सब, पर तुम देसी-गँवार कहाँ समझोगी।" आधुनिक गुजराती परिवार में पले केयूर के आख़िरी शब्द सव्या के पारंपरिक महाराष्ट्रीयन परिवार पर सीधा आक्षेप थे।

000

"उसके साथ सोने के बाद मेरे साथ भी...!" दूसरे बेडरूम में अकेली जाग रही और सव्या को जितनी बार वह चुम्बन याद आता, उसके अंदर कुछ उमड़ने लगता।

"केयूर, तुम्हें आज मेरे सवालों का जवाब देना ही होगा। वरना मैं इसी समय यह घर छोड़ कर चली जाऊँगी।" सुबह सव्या की सख़्त आवाज़ में आर-पार की ज़िद थी, केयूर की हिम्मत नहीं हुई कि विरोध करे। पर काठ बने बैठे केयूर के जिस्म ही नहीं आँखों तक में कोई हलचल नहीं है।

"बोलो केयूर, मुझे जवाब चाहिए, नहीं तो मैं अभी तुम्हारे पापा को फ़ोन पर सब बता दूँगी।" सव्या के इस पत्ते की काट केयूर के पास नहीं थी।

"क्या बताओगी, कहोगी कि उनका बेटा गे है? उसके एक मर्द से संबंध हैं जिसके बिना वह जीने की सोच भी नहीं सकता। जो इतना कायर है कि शादी की बात पर अपने लोहे से पिता की धार और मोम सी नरम माँ के पिघलने से डर कर एक मासूम लड़की के साथ अन्याय कर बैठा?" केयूर की आवाज़ में छत पर घूमते पुराने पंखे की खरखराहट भर गई।

"हाँ, ख़ुद को सामान्य पुरुष बताने के लिए मैंने झूठ बोले, तुमसे कहा कि मेरा भी पास्ट है। पर वह पूरा झूठ नहीं, आधा सच भी था। मैं भी रिलेशन में रहा हूँ लेकिन लड़कों के साथ। लेकिन यह भी सच है कि मुझे तुम्हारे और अंगद के रिलेशन के बारे में मालूम नहीं था और न ही अंगद को हम दोनों के बारे में।" केयूर की आवाज़ में सच बोल रहा है।

"हम बिज़नेस के सिलसिले में पहली बार मिले थे और बहुत जल्द एक-दूसरे के प्रेम में पड़ गए। और आज का सच यह है हम एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते।" केयूर की आवाज़ में ठहराव है।

"तुम्हें अंगद ने बताया?" सव्या की आवाज़ फीकी पड़ गई।

"हाँ, कल रात ही। वैसे पहले भी मालूम होता तो क्या फ़र्क़ पड़ता, बिना प्रेम ईर्ष्या नहीं होती है।" केयूर बेधड़क बोलता जा रहा है।

"मैं मानता हूँ कि यह शादी मैंने मजबूरी में

की है। मैं शुरू से ही अपनी सेक्सुअलिटी को लेकर स्पष्ट था। लेकिन अंगद अपनी मूल पहचान को लेकर असमंजस में था इसीलिए तुमसे जुड़कर उसने सो कॉल्ड नॉर्मल स्ट्रेट सैक्स रिलेशन में जीने की कोशिश भी की थी पर नाकाम रहा। क्योंकि वह वो था ही नहीं जो बन रहा था।" सव्या प्यादे से पिट कर खेल से बाहर हो गई रानी की तरह बैठी सुन रही है।

"और यह भी सच है कि, वह और मैं, हम दोनों ही तुमसे बेहद प्यार करते हैं। लेकिन हमारी इच्छाएँ सिर्फ़ और सिर्फ़ एक-दूसरे के लिए जागती हैं।" सव्या की जुगुप्सा-भरी आँखों में बेख़ौफ़ आँखें डाले बोल रहे केयूर के चेहरे से शर्म का रंग लगभग ओझल ही है।

"अंगद तो हिम्मत करके जल्दी ही अनचाहे जिस्म के साथ देह साझा करने की क्रूर आत्म-प्रताड़ना से बाहर निकल गया। पर मैं कायर डर गया और अब दोहरी ज़िंदगी जी रहा हूँ। उसके साथ पत्नी बनकर सोना, प्यार करना मेरी ख़ुशी है और तुम्हारे साथ पति बनकर सोना मेरा फ़र्ज़। अब तुम ही बताओ मैं दो नावों में रखे पैर कैसे सँभालूँ?"

आख़िरी बात तक आते-आते केयूर की टूटती आवाज़ उसके बहते आँसुओं में डूब गई। बात वही थी जो सव्या भी जानती थी फिर भी केयूर की ज़ुबानी सुन कर उसके सीने में सीली चट्टान का बुरादा भर गया। उसकी साँस घुटने लगी और वह अस्थमा के भंवर में खो गई।

000

दवा के असर में डूबती-उतरती सव्या के मन पर जमा बैठा सेंटीपीड उसे सौ-सौ पंजों से खरोंच रहा है, जिनका ज़हर नसों में उतर कर उसकी आत्मा को नीला कर रहा है। पता नहीं कब कमरे में एक पीली तितली घुस आई थी, जो अब बाहर जाने का रास्ता खोजते हुए बार-बार खिड़की के बन्द शीशे से टकरा रही है।

"अंगद भी...? हर लड़की के सपनों में बसे साथी जैसा अंगद...? जिसकी देह से जाने कितनी बार भेंटी हूँ। पर उसके व्यवहार में कभी कोई असामान्य संकेत नहीं मिला जिससे...।" सव्या के मन में लगातार सवाल-जवाब चल रहे हैं।

"अब अंगद से बात कर के भी क्या फ़ायदा होगा। केयूर की तरह उसके मन-देह की भी मजबूरी है। यूँ ही तो कोई बेवफ़ा नहीं हो जाता। और जब उन दोनों में प्रेम है तो यह सवाल पूछना ही बेमानी है कि कब हुआ और कैसे हुआ। मैं इस चपेट में आ गई, इसमें भी इनका दोष कम और कहीं लोहे सी ज़मीं तो कहीं मोम सी पिघलती दुनिया का ज़्यादा है।" अब सव्या के मन पर खुभे सेंटीपीड के पंजे ढीले पड़ने लगे और नीला ज़हर भी आँखों के रास्ते रिस गया।

पीली तितली अब भी बाहर जाने का रास्ता ढूँढ़ते हुए, इधर-उधर पंख मार रही है। सव्या ने उठकर खिड़की के पल्ले खोल दिए, तितली उसकी बाँह से टकराती हुई बाहर निकल गई। उसके पंखों से झड़ा पीला रंग सव्या की कलाई पर चंदन के बुरादे की तरह चमक रहा है, जिसे सव्या ने सावधानी से उँगली के पोर पर सँभाला और टिकुली की तरह भाल पर धर लिया।

खिड़की के नीचे वही भाई-बहन गीत गाते हुए जा रहे हैं-

"चरखा चले घनन-घनन तार न टूटे, ओ बाबू तार न टूटे, राजा और रानी का प्यार न टूटे, ओ बेली प्यार न टूटे...।"

"राजा और राजा का हो तो भी न टूटे।" तर्जनी और मध्यमा से क्रॉस फिंगर बनाती सव्या बुदबुदाई।

000

किसी और मिट्टी की बनी

डॉ. रमाकांत शर्मा

डॉ. रमाकांत शर्मा
402-श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड, नं. 3, चेम्बूर, मुंबई 400089
मोबाइल- 9833443274
ईमेल- rks.mun@gmail.com

"उठ छोरा, कब तक सोता रहेगा। कॉलेज नहीं जाना है क्या?" मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा हूँ, शतप्रतिशत वही आवाज़ है, चाची की आवाज़। ऐसे ही तो उठाती थीं वे मुझे। मैं आँखें मलता हुआ पूरे कमरे में नज़र दौड़ाता हूँ। यह तो वह कमरा नहीं है, जहाँ मैं सोया करता था और चाची अपना काम करते-करते वहीं से आवाज़ देकर मुझे उठाती थीं। यह तो होटल का कमरा है, जहाँ मैं कल रात से रुका हूँ। ज़रूर मैंने कोई सपना देखा है या फिर मेरे कान बज रहे हैं। घड़ी देखता हूँ, सुबह के छह बजे हैं। ओह, यही तो वह समय होता था जब मैं उनकी आवाज़ सुनकर भी थोड़ी देर बिस्तर पर यूँ ही पड़ा रहता। वह फिर आवाज़ लगातीं, "सुना नहीं क्या? फिर मुझसे मत कहना, कॉलेज जाने को देर हो गई, उठाया क्यों नहीं"।

मैं अलसाया-सा उठता और फ्रेश होकर दाँतों में ब्रश चलाता बाहर निकल आता। चाची को मेरी यह आदत बिलकुल पसंद नहीं थी, "देख, सारे घर में झाड़ू लगा चुकी हूँ। तेरे मुँह से ज़रा भी गंदगी गिरी तो छोड़ूँगी नहीं तुझे।"

"ठीक है चाची", कहता हुआ मैं फिर बाथरूम में घुस जाता। मेरे बाहर आते ही वह गर्मा-गर्म चाय का प्याला मुझे थमातीं और पूछतीं, "क्या लेगा चाय के साथ?"

"कुछ भी दे दो चाची, सब चलेगा।" वे मुझे बिस्किट या फिर घर की बनी मठरी पकड़ा देतीं और काम में लग जातीं। एक युग गुज़र गया चाची की आवाज़ सुने। आज उनकी आवाज़ शायद इसलिए सुनाई दी है कि मैं उन्हीं के शहर में हूँ। मैं हिसाब लगाता हूँ पैंतीस साल से कुछ ऊपर का समय हो गया मुझे यह शहर छोड़े हुए। जिस वर्ष मैंने यह शहर छोड़ा उसी वर्ष हमने चाची की सत्तरवीं बर्थडे मनाई थी। उफ़्फ़ ! उसके बाद पैंतीस साल का लंबा समय निकल गया, मैं हैरत से भर गया हूँ। यही वह शहर है, जहाँ अपनी पढ़ाई के सिलसिले में मैंने चार साल का वक़्त गुज़ारा। हॉस्टल में रहने का ख़र्चा बर्दाश्त न कर पाने के कारण अपने-आप यह तय हो गया कि किराए पर कमरा लेकर रहा जाएगा। लेकिन, इसकी ज़रूरत नहीं पड़ी। बाबूजी के एक दोस्त के लड़के अभय ने कुछ समय पहले ही इस शहर में नौकरी ज्वाइन की थी। वह अविवाहित था और एक कमरा लेकर अकेला रह रहा था। उनके दोस्त ने कहा समर उसके साथ रह सकता है, इसके लिए उसे कोई किराया भी नहीं देना होगा। अभय जिस कमरे में रह रहा था, वह बहुत अच्छा और बड़ा था। दो मंज़िले मकान की तल मंज़िल में गली से प्रवेश करते ही दाहिनी ओर उसका कमरा था। कमरे के दो दरवाज़े थे। एक दरवाज़ा बाहर गली में खुलता और दूसरा घर के अंदर। कमरे में आने-जाने के लिए गली में खुलने वाले दरवाज़े का उपयोग होता और घर में खुलने वाला दरवाज़ा मकान-मालिक के उस चौक में खुलता जिसके एक कोने में उनका रसोईघर बना था।

अभय भैया से मिल कर मुझे बहुत अच्छा लगा। उम्र में वे मुझसे यही कोई चार-पाँच साल बड़े होंगे। ग्रेजुएशन करते ही उन्हें यह नौकरी मिल गई। उनके सहज व्यवहार ने मेरी झिझक मिटा दी और मैं दूसरे दिन से ही उनके पास शिफ़्ट हो गया। बाबूजी भी निश्चिंत होकर घर चले गए। अभय भैया और मेरी अच्छी पटने लगी। कुछ दिन साथ रहने के बाद उन्होंने कहा, "समर, तुम्हें अपने लिए कमरा ढूँढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं तो सारा दिन ऑफ़िस में रहता हूँ, तुम यहाँ आराम से रहो और अपनी पढ़ाई पर ध्यान लगाओ।"

"ठीक है, अभय भैया, लेकिन जब कभी आपको ज़रूरत हो, बता देना मैं अपने लिए कमरा ढूँढ़ लूँगा।"

"फिलहाल तो इसकी कोई ज़रूरत है नहीं, कभी होगी तो तुम्हें बता दूँगा।" कमरे से घर के अंदर खुलने वाला दरवाज़ा ज़्यादातर खुला ही रहता क्योंकि बाथरूम के लिए हमें चौक से होकर जाना पड़ता था। पहले दिन ही अभय भैया ने मुझे मकान मालकिन और उसके दोनों बेटों से मिलवा दिया। मकान मालिक का स्वर्गवास हुए एक दशक से ज़्यादा बीत चुका था। मकान मालकिन के दोनों बेटे उन्हें माँ की बजाय चाची पुकारते थे। उन्हीं की देखा-देखी अभय भैया और मैं भी उन्हें चाची पुकारने लगे। चाची के बड़े बेटे का नाम यूँ तो बाल किशन था, पर घर और बाहर वे सभी के लिए बालू भैया थे। उन्होंने शादी न करने की क़सम खाई हुई थी। पता लगा, वे जिससे शादी करना चाहते थे उसकी शादी कहीं और हो गई। बस तभी से वे बिना शादी किए रह रहे थे। छोटा बेटा मुरारी मुझसे दो साल बड़ा था और पॉलिटेक्निक कॉलेज में पढ़ रहा था। बालू भैया और मेरे बीच उम्र का बड़ा फ़ासला था। लेकिन, हमउम्र मुरारी और मेरे बीच दोस्ती का संबंध बनते देर नहीं लगी। उस उम्र में भी चाची की चुस्ती-फुर्ती देखते ही बनती। वे सुबह पाँच बजे उठ जातीं। पूरे घर में झाड़ू-बुहारी करतीं। नहा-धोकर अपने भगवान् की पूजा करतीं और फिर नाश्ता बनाने में जुट जातीं। दोनों बेटों के लिए टिफिन तैयार करतीं और फिर पूरे दिन किसी न किसी काम में ख़ुद को लगाए रखतीं। मैंने उन्हें आराम करते शायद ही कभी देखा हो।

मेरा कॉलेज सुबह सात बजे से शुरू हो जाता। जब तक मैं वापस लौटता अभय भैया ऑफ़िस जा चुके होते। मैं सुबह कॉलेज के कैंटीन में कुछ खा-पी लेता और लौटते समय उस ढाबे पर खाना खा लेता, जहाँ उस समय एक रुपये में चार रोटियों के साथ दाल और अचार फ़्री मिल जाते। अभय भैया को सुबह चाय-नाश्ते की आदत नहीं थी। उन्होंने अपने ऑफ़िस के पास के रेस्त्राँ में दोनों टाइम खाने का इंतज़ाम किया हुआ था। मैं ग्यारह बजे तक कॉलेज से लौट आता और फिर मेरे पास पहाड़-सा दिन काटने के लिए रह जाता। ऐसे समय घर की बहुत याद आती। मन करता उड़कर वहाँ पहुँच जाऊँ, पर ऐसा कहाँ मुमकिन था। ज़्यादातर मैं कमरा बंद किए पढ़ता रहता या फिर सो जाता। कभी-कभी सड़कों पर निरुद्देश्य भटकने निकल जाता। पर, यह अकेलापन काटने का कोई स्थायी विकल्प नहीं था।

उस दिन चाची ने मुझे आवाज़ लगाई, "छोरा, बंद कमरे में अकेले तेरा जी नहीं घुटता, कुछ देर यहाँ आकर बैठ जाया कर मेरे पास।"

"ऐसी कोई बात नहीं है चाची, पढ़ता रहता हूँ...।"

"पता है, बहुत पढ़ाकू है, पर दिमाग़ को भी थोड़ा आराम तो मिलना चाहिए।" चाची के पास जाकर बैठने का मेरा ज़रा भी मन नहीं था। उम्र का इतना बड़ा अंतर जो था हम दोनों के बीच। क्या बात करूँगा उनसे। पर, जब उन्होंने फिर आवाज़ लगाई तो मैं चौक में निकल आया। वे मूढ़े पर बैठी स्वेटर बुन रही थीं। मुझे देखते ही उन्होंने स्वेटर बुनना बंद कर दिया और आँखों से चश्मा उतारते हुए बोलीं, "आ बैठ, घर से दूर रहता है। घरवालों की याद नहीं आती?"

"आती है चाची, पर पढ़ाई भी तो ज़रूरी है...।"

"हाँ, सो तो है। मुझे लगा, अकेले पड़े-पड़े तेरा जी घबराता होगा, इसीलिए आवाज़ लगाई। तू कॉलेज से आता है तो मुरारी चला जाता है। अभय भी तो रात तक लौटकर आता है। सोचा, कुछ देर बातें करेंगे तो तेरा अकेलापन दूर होगा।"

"आपने इतना सोचा, अच्छा लग रहा है।"

"अब बता, कौन-कौन हैं घर में? क्या काम करते हैं तेरे बाबूजी?" वे ध्यान से सब सुनती रहीं। फिर, स्वेटर उठाकर बुनना शुरू करते हुए उन्होंने अपने बारे में बताना शुरू कर दिया। मैं जल्दी ही उनके साथ सहज हो गया। दोपहर के समय सब अपने-अपने काम पर चले गए होते। मैं एकाध घंटे के लिए चाची के पास जा बैठता। उनसे बातें करते-करते मैंने यह महसूस किया कि वे ख़ुद भीतर से बहुत अकेली हैं। शायद इसी वजह से उन्होंने मेरे अकेलेपन को महसूस कर लिया। अपने-आप को हमेशा काम में व्यस्त रखतीं, फिर भी अकेलापन उनसे चिपका रहता। कब से उनके भीतर इतना कुछ गड़ा हुआ था जो बाहर निकलने को उफनता रहता। जब वे बातें करने लगतीं तो बस बोलती चली जातीं। पता नहीं कहाँ-कहाँ की बातें करती रहतीं वे। कभी-कभी तो मुझे संदर्भ का भी पता नहीं होता लेकिन जब वे बोलतीं तो मैं उन्हें बोलने देता और उनकी बात समझने की कोशिश करता रहता। उनके पीहर में कोई नहीं था। वे माँ-बाप की अकेली संतान थीं और उनके जाने के बाद अकेली हो गई थीं। पति शहर के जाने-माने मंदिर में पुजारी का काम करते थे। सुबह से जाते तो भगवान् को शयन कराकर रात होने पर ही घर लौटते। चाची उनके इंतज़ार में पूरा दिन देहरी तकती रहतीं। दो बच्चे हो गए तो वे उनकी परवरिश में लग गईं। पर, पूरे दिन पति का साथ न मिलने के कारण वे बुझी-बुझी सी रहतीं। समय के साथ बच्चे बड़े होते गए तो उनका अकेलापन भी बड़ा होता गया। बालू भैया की शादी न करने की क़सम ने उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया। काश, उन्होंने शादी कर ली होती तो बहू घर में आ गई होती। बच्चे होते तो वे उनमें ख़ुद को खो देतीं। पर, शायद यह सुख उनके भाग्य में नहीं था।

चाची कम पढ़ी-लिखी थीं पर उनके बात करने का ढंग बहुत सलीक़ेदार था। जब वे बोलने लगतीं तो ऐसा लगता जैसे कहानी सुना रही हों। शुरू में तो मैं बस सुनने के लिए ही सुनता, पर बाद में उनकी बातों में रस आने लगा। उन्हें भी एक अच्छा श्रोता मिल गया, इसलिए वे न जाने कब से अपने भीतर दबी कही-अनकही बातों को शिद्दत से उड़ेलती रहतीं। मेरी वजह से उनका अकेलापन दूर हो रहा था, यह सोचकर मैं संतोष से भर उठता।

"छोरा, तूने सुबह दस बजे से खाना खाया है और उसके बाद कुछ नहीं। भूख नहीं लगती तुझे?" उस दिन उन्होंने अचानक पूछ लिया।

"शाम को जल्दी खाना खा आता हूँ।"

"सच बता, तुझे दोपहर में भूख नहीं

लगती?"

"ऐसी तो कोई बात नहीं है चाची। दोनों टाइम खाना मिल ही जाता है।"

"अच्छा रुक मैं अभी आई", कहकर वे रसोई घर में चली गईं। मैं कुछ समझ पाता उससे पहले ही वे एक प्लेट में मठरियाँ लिये आईं और बोलीं, "ले, खा ले।" मुझे संकोच में पड़ा देख उन्होंने प्लेट से एक मठरी उठाई और मेरे हाथ में पकड़ाते हुए कहा, "खाकर बता मैंने कैसी बनाई हैं"। मैंने मठरी का एक टुकड़ा मुँह में रखा तो ख़ुद-ब-ख़ुद मुँह से निकल पड़ा, "बहुत स्वादिष्ट बनी हैं चाची।" वे मुझे मनुहार करके खिलाती रहीं और मैं कुछ ही देर में पूरी प्लेट साफ़ कर गया। चाची के चेहरे पर आत्मिक संतोष नज़र आ रहा था। प्लेट मेरे हाथ से लेते हुए उन्होंने मेरे सिर पर अपना हाथ रखा तो उन हाथों की छुअन में भरा स्नेह महसूस करके मैं भावुक हो उठा। उस दिन के बाद से दोपहर में चाची मुझे कुछ न कुछ खाने को दे देतीं। उनके हाथ की बनी चीज़ों का स्वाद आज भी मुँह में पानी भर देता है। सच कहूँ, वयोवृद्ध चाची के स्नेह ने मुझे इतना अपना बना लिया कि मुझे पहले जैसी तीव्रता से घर की याद भी नहीं सताने लगी।

सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था कि उस दिन ऑफ़िस से लौटकर अभय भैया ने जो सूचना दी उसने मुझे असहज कर दिया। वे यहाँ आने के बाद से ही अपना ट्रांस्फ़र दिल्ली कराने की कोशिश में लगे थे। उनकी कोशिश कामयाब हो गई और उन्हें अगले हफ्ते ही रिलीव करने के ऑर्डर भी आ गए। वे बहुत ख़ुश थे क्योंकि वे दिल्ली यानी अपने घर जा रहे थे। मैं चाहकर भी उनकी ख़ुशी में ख़ुश नहीं हो पा रहा था क्योंकि वे यह कमरा भी ख़ाली कर जाएँगे। जितना किराया वे इस कमरे का देते थे, उतना देना तो मेरे लिए किसी भी सूरत में संभव न था। मुझे कम किराए वाला कोई छोटा सा कमरा ढूँढ़ना होगा। ऐसा नहीं था कि अभय भैया यह बात समझ नहीं रहे थे, पर वे भी क्या कर सकते थे। लिहाज़ा मैंने दूसरे दिन से ही अपने कॉलेज के दोस्तों की मदद से कोई सस्ता और अच्छा सा कमरा ढूँढ़ने की कोशिश शुरू कर दी।

अभय भैया ने अपना ट्रांस्फ़र होने और अगले हफ्ते कमरा ख़ाली करने की सूचना बालू भैया और चाची को दी तो उन्होंने कहा, "अभय तुम हमारे साथ किराएदार की तरह नहीं, घर के सदस्य की तरह रहे। तुम्हारा जाना अच्छा नहीं लग रहा है, पर तुम अपने घर जा रहे हो, यह हमारे लिए ख़ुशी की बात है। पता नहीं, इतना अच्छा किराएदार मिलेगा भी या नहीं।" बात सही थी अभय भैया जैसा शांत और अपने काम से काम रखने वाला किराएदार मिलना मुश्किल तो था। अभय भैया के कमरा ख़ाली करने से एक दिन पहले ही मुझे दो गली छोड़कर एक छोटा कमरा मिल गया। उसका किराया भी मेरे बजट के अंदर था। चाची को जब इस बात का पता चला तो वे तुरंत मेरे पास आईं और बोलीं, "यह तो मेरे ध्यान में ही नहीं आया कि तू अभय के साथ इस कमरे में रह रहा है। उसके जाने के बाद तुझे भी जाना होगा।"

"हाँ चाची, मैं इतना किराया नहीं दे सकता। दो गली छोड़कर ही तो रहूँगा मैं। यहाँ आता-जाता रहूँगा।"

"छोरा, मैं तुझे ऐसे कैसे जाने दूँगी? तू बस यहीं रह।"

"बात को समझो चाची। बालू भैया अकेले कमाने वाले हैं। घर के ख़र्चे हैं और फिर मुरारी की पढ़ाई भी। इसीलिए तो आपने यह कमरा किराये पर उठाया है। अगर मैं इस कमरे का किराया देने लायक होता तो...।" चाची कुछ देर खड़ी सोचती रहीं फिर बोलीं, "अच्छा उस कमरे का कितना किराया देगा तू?"

"समझो, इस कमरे का अभय भैया जितना किराया दे रहे थे, उसका आधा भी नहीं।" चाची का मुँह लटक गया और वे बिना कुछ बोले चली गईं। अभय भैया के जाने के बाद मैं भी अपना सामान समेटने में लग गया। मन सचमुच बहुत उदास था। ममतामयी चाची को छोड़कर जाने के ख़याल से मन बहुत भारी हो आया। अलग कमरा लेकर रहने के बाद उनसे रोज़ाना मिलने आना और उनके पास बैठकर उनकी बातें सुनना कितना और कैसे हो पाएगा। सब कुछ इतना आसान तो नहीं था। मैं अपनी सोच में उलझा था, मुझे पता ही नहीं चला कब चाची आकर मेरे पीछे खड़ी हो गईं। उनकी आवाज़ सुनकर मैं पलटा, "सुन छोरा, तुझे अपना सामान बाँधने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैंने बालू से बात कर ली है। जितना किराया तू उस कमरे का देगा, उतना यहाँ दे देना।"

"पर चाची....?"

"चाची कहता है न मुझे, तो बस कुछ बोलने की ज़रूरत नहीं है। सामान समेटना बंद कर। मैंने आज आलू और हरी मिर्च के पकौड़े बनाए हैं, जल्दी से आ जा।" मेरे मुँह के बोल कहीं खो गए। सामान वापस रखते समय मेरा गला रुँधा था। मैं यहीं रहूँगा, यह सोचकर बहुत अच्छा लग रहा था। चाची ने ममत्व और अपनेपन का जो अहसास कराया था उसकी बूँदें मन के कोमल हिस्से तक पहुँच गईं और मैं आँखों में ही नहीं, मन में भी नमी महसूस करने लगा। पता नहीं कब और कैसे मैं चाची के ममता भरे अनुशासन में बँधता चला गया। वे ही सुबह आवाज़ देकर मुझे उठातीं। अपने बच्चों से भी ज़्यादा मेरा ख़याल रखतीं। जब वे प्यार से मेरे सिर पर अपना हाथ फिरातीं तो मन करता उनके आँचल में अपना मुँह छुपा लूँ। एक अधिकार था जो मैंने उन्हें सौंप दिया था या फिर उन्होंने स्वत: ही वह हासिल कर लिया था। मेरी ग़लतियों पर वे डाँटतीं तो मुझे बुरा नहीं बल्कि अच्छा लगता। उनकी ममता की छाँव में दिन ही नहीं वर्ष कैसे निकलते गए, पता ही नहीं चला। गर्मियों की छुट्टियों में या फिर वैसे ही जब मैं घर चला जाता तो चाची को बहुत मिस करता। मेरे लौटने पर चाची भी ऐसे ख़ुश होतीं जैसे उनका खोया ख़ज़ाना मिल गया हो।

मुझे याद है, जब मैं कॉलेज की छात्र यूनियन का काम करने लगा और इस सिलसिले में मुझे घर आने में देर होने लगी तो चाची को अच्छा नहीं लगता था। यूनियन के काम को लेकर छात्र मेरे कमरे पर भी आने लगे और मेरा बहुत सा समय इसमें लगने लगा तो चाची ने एक दिन मुझसे कहा, "छोरा, ये सब करने के लिए तेरे माँ-बाप ने तुझे यहाँ नहीं भेजा है। पढ़ने में ध्यान लगा नहीं तो मुझसे

लिखवा ले पास नहीं होगा तू।" चाची की चिंता को मैंने समझा और फिर धीरे-धीरे यूनियन के काम से हाथ खींच लिया। पता नहीं, इस समय कितनी ही तो भूली-बिसरी बातें याद आ रही हैं। मेरे साथ पढ़ने वाली गीता एक बार मेरे कमरे पर आई और हम काफी देर तक बैठे बातें करते रहे। मुझे मालूम था, वह मुझे पसंद करती थी। मुझे भी वह अच्छी लगती थी। उसके जाने के बाद चाची ने पूछा, "कौन थी यह लड़की?"

"गीता, मेरे साथ पढ़ती है।"

"यहाँ क्यों आई थी?"

"वैसे ही चाची, मिलने बस...।"

"कॉलेज में नहीं मिलते तुम?"

"एक क्लास में पढ़ते हैं तो मिलना तो होता ही है।"

"वही तो, फिर इसका यहाँ आने का क्या मतलब?"

"चाची, हम दोनों दोस्त हैं, बस।"

"तो मैंने कब कहा दुश्मन हो। देख छोरा, जब लड़की यहाँ तक आने लगी है तो इसका मतलब मैं समझती हूँ। तुम एक-दूसरे को पसंद करते हो?"

"चाची हाँ, लेकिन इसका और कोई मतलब न निकालें।"

"शादी करेगा तू उससे?"

"मेरी पढ़ाई का आख़िरी साल है। पता नहीं फिर मैं कहाँ और वह कहाँ।"

"हूँ...इसीलिए कहती हूँ छोरियों की इज़्ज़त काँच जैसी होती है, ज़रा ठेस लगी टूटकर बिखर जाती है। अगर उससे शादी करने का इरादा नहीं है तो उससे दूरी बना कर रख, और इस घर में मैं उसे दुबारा नहीं देखूँ। समझ गया।" मैं चाची की सोच और उनकी हिदायत की अवहेलना नहीं कर पाया। कह तो वह सही ही रही थीं। अपने प्रति गीता की गहरी होती भावनाओं को मैं समझ रहा था और आज यह कहने में मुझे ज़रा भी हिचक नहीं है कि उसकी उन भावनाओं का फ़ायदा उठाने की बात कहीं न कहीं मन में दबी हुई थी। हाँ, संस्कार मुझे ऐसा करने से रोके हुए थे। फिर चाची ने तो तेज़ भागते घोड़े की लगाम ही खींच ली। उफ़्फ़, कितनी बातें याद करूँ। इन चार वर्षों में चाची के चेहरे की झुर्रियाँ और बढ़ गईं।

लेकिन, उनकी चुस्ती-फुर्ती में कोई फ़र्क़ नहीं आया। घर के सारे काम वे उसी तेज़ी से निपटाती रहतीं। उनके स्नेह की वर्षा में मैं वैसे ही भीगता रहता। जिस वर्ष मैं पढ़ाई पूरी करके हमेशा के लिए घर लौट रहा था, उसी वर्ष चाची ने सत्तर वर्ष पूरे किए। मेरी पहल पर बालू भाई साहब और मुरारी यानी हम सभी ने मिलकर घर में ही छोटा-सा समारोह कर डाला। चाची गदगद हो आईं। उनके लिए कभी भी किसी ने इस तरह सोचा ही कहाँ था! पढ़ाई पूरी करने के बाद मैं नौकरी के लिए अर्ज़ियाँ भेजने में लग गया। एक-दो इंटरव्यू भी दिए पर कहीं काम नहीं बना। इसी बीच, मेरी बड़ी बहन का फ़ोन आया, वह शादी के बाद अपने पति के साथ अमेरिका में रह रही थी। जीजा जी ने वहाँ अपने व्यवसाय की शुरुआत एक छोटे से भारतीय रेस्त्राँ से की थी। उनका काम ज़बरदस्त रूप से चल निकला। आसपास के कई शहरों में उनके रेस्त्राँ की ब्रांच खुल गईं। फैलते कारोबार को सँभालने के लिए उन्हें मेहनती, ईमानदार और विश्वस्त लोगों की ज़रूरत थी। वे चाहते थे कि मैं अमेरिका आ जाऊँ और उनके काम में हाथ बटाऊँ। वहाँ पैसे की कोई कमी न थी। यहाँ नौकरी का कोई जुगाड़ होते न देख और विदेश में काम करने और डॉलरों में कमाने की संभावना देखकर बाबूजी ने भी यही सलाह दी कि मुझे अमेरिका चले जाना चाहिए।

अमेरिका जाकर मैं इतना व्यस्त हो गया कि ख़ुद के लिए भी समय नहीं निकाल पाता। व्यवसाय बढ़ता जा रहा था और साथ में आमदनी भी। इतनी शानदार और सुविधावाली ज़िंदगी की तो हमने कल्पना भी नहीं की थी। मैंने बाबूजी और अम्मा को भी वहीं बुला लिया। हमेशा अभावों में जीते रहे बाबूजी और अम्मा भी वहाँ की कल्पनातीत ज़िंदगी में रमते चले गए। अमेरिका में रहने वाले भारतीय परिवारों से मेरे लिए रिश्ते आने लगे तो एक अच्छी सी लड़की देखकर मेरी शादी भी कर दी गई। परिवार बढ़ा तो व्यस्तता के साथ ज़िम्मेदारी भी बढ़ती गई और भारत आने की बात टलती रही। ऐसा नहीं है कि इस बीच मुझे चाची की याद न आई हो, पर न तो भारत आना हो पाया और न ही उनसे संपर्क का कोई जरिया बन पाया। धीरे-धीरे यादों के साथ-साथ चाची से मिलने की बेताबी भी कम होती गई।

समय का पहिया इतनी तेज़ी से घूम चुका है कि बाबूजी और अम्मा दोनों के नाम के साथ स्वर्गीय लग चुका है। मेरे ख़ुद के कारोबार को मेरे बच्चों ने सँभाल लिया है। हमारा ब्रांड आसपास के देशों तक जा पहुँचा है। पिछली बार एक भारतीय व्यापारी अमेरिका आया था, उसने हमारे ब्रांड को भारत में ले जाने की इच्छा जतायी थी। उसी के सिलसिले में मैं यहाँ आया हुआ हूँ। इस शहर से मैं इस कदर जुड़ा हूँ कि ख़ुद को उन पुरानी यादों में डूबने से रोक नहीं पा रहा। चाची का चेहरा और उनका बेपनाह प्यार कैसे भूल सकता हूँ मैं। पिछले पैंतीस वर्षों में भारत न आ पाने और उनसे न मिल पाने का अफसोस पूरी शिद्दत से मुझ पर हावी हो रहा है। मुझे पता है, इतने सारे वर्षों में सब कुछ बदल गया होगा। पर, अब मुझे सब्र नहीं हो रहा।

मैं फटाफट तैयार होकर उन जाने-पहचाने रास्तों से उस गली की तरफ चल पड़ा हूँ जहाँ मेरे वे बेशक़ीमती चार साल गुज़रे थे। जैसे-जैसे वह गली पास आ रही है, मेरी धड़कनें बढ़ती जा रही हैं। चाची का मकान दूर से दिखाई देने लगा है, पता नहीं पूरे शरीर में सिहरन सी क्यों होने लगी है। मकान के पास पहुँचकर देखा गेट पर बड़ा-सा ताला लगा है। मैं जानता था ऐसा ही कुछ होगा, पर ताला लगे होने की उम्मीद नहीं थी। मैं ठगा सा खड़ा हूँ। दोपहर का समय है। पूरी गली सुनसान पड़ी है। मैं जाने की सोच ही रहा हूँ कि एक वयोवृद्ध व्यक्ति मुझे घूरता मेरे पास चला आया है।

"किससे मिलना है साहब?" उसने पूछा है।

"यहाँ वह बालू भैया रहते थे न?" उसने मुझे ऊपर से नीचे तक देखा और बोला, "तुम नहीं जानते?"

"क्या?"

"बालू भैया तो कई साल पहले भगवान् के पास पहुँच गए।"

"ओह", मेरे मुँह से निकल पड़ा। बालू भैया काफी बड़े थे हमसे, पर इसकी तो मैंने सपने में भी उम्मीद नहीं की थी। चाची के बारे में तो फिर मेरी पूछने की हिम्मत ही नहीं हुई। मेरे मुँह से बड़ी मुश्किल से आवाज़ निकली, "उनका एक छोटा भाई भी था, मुरली?"

"हाँ वह इंजीनियर भैया। उन्हें कृष्णा कॉलोनी में सरकारी क्वार्टर मिल गया है, वे वर्षों पहले अपने परिवार के साथ वहाँ चले गए। कभी-कभी यहाँ आते हैं। मकान की साफ़-सफ़ाई कराकर चले जाते हैं, न तो इसे किराए पर उठाते हैं और न ही इसे बेचते हैं। पूछो तो कहते हैं, इसमें मेरी और मेरे घरवालों की यादें रहती हैं। रिटायरमेंट के बाद सोचेंगे, इसका क्या करना है।"

"आप मुझे मुरारी के घर का पता दे सकते हैं?"

"तुम हो कौन भैया? उनके रिश्तेदार?"

"बस यही समझ लो।"

"कृष्णा कॉलोनी में सेक्टर 6 में किसी से भी पूछ लेना, वह पहुँचा देगा उनके पास।"

"धन्यवाद, आप नहीं मिलते तो इतनी जानकारी भी नहीं मिलती।" मैंने सोचा, चलो मुरली से ही मिल लेते हैं। उसके साथ दोस्ती के वे दिन भी तो यादों में ताज़ा हैं। देखता हूँ मुझे पहचानता भी है या नहीं। उस पते पर पहुँच कर मैंने दरवाज़ा खटखटाया तो उसे खोलने वाले को पहचान नहीं पाया। ध्यान से देखा, अरे यह तो मुरली ही है। पैंतीस साल के लंबे अर्से ने उसके घने काले बालों को हल्का कर दिया था और उनमें चाँदी चमक रही थी। इतने लंबे समय ने मुझमें भी तो वैसे ही बदलाव ला दिए हैं। वह कुछ क्षण मुझे घूरता रहा और फिर हल्की सी पहचान उसके चेहरे पर उभर आई, "समर, तुम समर ही हो न?"

"हाँ भाई, समर ही हूँ। अंदर आने के लिए नहीं कहोगे?"

"आ जाओ यार, आज इतने लंबे अरसे बाद ...।"

"बताता हूँ भाई। इतने सालों से अमेरिका में था। पैंतीस साल बाद यहाँ आया हूँ। उस गली वाले मकान में गया था, वहीं से पता लगाकर यहाँ आया हूँ।"

"अच्छा, तभी मैं कहूँ कि यहाँ से जाने के बाद तुमने हमारी कोई सुध क्यों नहीं ली। चाची तो वर्षों तुम्हें याद करती रही। उसे उम्मीद थी कि तुम एक दिन उससे मिलने ज़रूर आओगे। तुम तो उसके लिए बेटों से भी बढ़कर रहे।" तभी एक महिला ट्रे में पानी का गिलास लेकर अंदर से निकल कर आई। मुरली ने उससे मेरा परिचय कराया, "यह मेरी पत्नी है रश्मि। बेटा अपनी नौकरी पर गया है। बेटी की शादी सात साल पहले हो चुकी है, वह अपने घर में है। मेरे रिटायरमेंट में भी अब बस डेढ़ साल बचा है। तुमने अपने बारे में कुछ नहीं बताया?"

"बताना क्या है, अमेरिका में कारोबार है। दोनों बच्चे सँभाल रहे हैं उसे। मैं सिर्फ़ कारोबार को बढ़ाने का काम देखता हूँ और इसी सिलसिले में यहाँ आया हुआ हूँ।"

"अच्छा लगा सुनकर। रश्मि तुम ज़रा चाय तो बना लाओ। " रश्मि अंदर चली गई तो मैंने कहा, "यार, बालू भैया के बारे में सुना तो विश्वास ही नहीं हुआ।"

"हाँ, समय से पहले चले गए वे। जब तक थे मुझे किसी बात की चिंता नहीं थी। उनका हाथ जो था मेरे सिर पर।"

"और चाची"? बड़ी मुश्किल से मेरे मुँह से निकला।

"कुछ सालों तक तुम्हें बहुत याद किया उन्होंने, शायद ही कोई ऐसा दिन गया हो जब उन्होंने तुम्हारे आने का इंतज़ार न किया हो। फिर कुछ सालों बाद वह सब कुछ भूलती चली गईं।"

"ओह, मैं ही ऐसा बदनसीब रहा जो सात समुद्र पार चला गया। मैं भी उन्हें याद करता रहा। उनसे जो स्नेह मुझे मिला, वह जीती ज़िंदगी में भुला नहीं पाऊँगा। काश, उनसे मिल लिया होता।"

"मिलना चाहोगे उनसे?"

"क्या मतलब? मेरे हाथ से चाय का कप गिरते-गिरते बचा।"

"चाची तो किसी और ही मिट्टी की बनी हैं, सेंचुरी मार चुकी हैं और अभी भी उनका सफ़र जारी है।"

मेरे हाथ ही नहीं पूरा शरीर काँप रहा है, "कहाँ हैं वे?"

"चाय ख़त्म कर लो पहले...।"

"नहीं मुरली, मुझे बताओ मैं उनसे कैसे और कहाँ मिल सकता हूँ ?"

"कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है। यहीं हैं वे, अंदर के कमरे में।"

"चलो, ले चलो मुझे उनके पास....।"

"दिन भर खाट पर पड़ी सोती रहती हैं। उम्र ने बहुत अशक्त बना दिया है उन्हें। लोगों को पहचानना भी कम हो गया है। तू तो बहुत बदल गया है, तुझे नहीं पहचान पाएँ तो दिल से मत लगाना।" मैं उसकी बात सुनकर भी नहीं सुन पा रहा हूँ। चाची अभी तक हैं और मैं उनसे अभी बस अभी मिल सकता हूँ, यह बात मुझे उत्तेजना से भरे दे रही है। कमरे का पर्दा हटाकर हम अंदर आ गए हैं। कोने में खाट बिछी है, उसी पर सोयी हैं चाची। मुरली ने उन्हें आवाज़ दी है, "चाची.....चाची, देखो कौन आया है!" उनकी ओढ़ी हुई चादर में कुछ हलचल हुई है। उन्होंने चेहरे से चादर हटाकर मुरली की तरफ देखा है। मेरी साँस रुकी हुई है। झुर्रियों के पीछे वही चेहरा है जो मेरी यादों में बसा है। मुझसे इंतज़ार नहीं हो रहा है। मैं ख़ुद को रोक नहीं पा रहा हूँ, "चाची, मैं हूँ समर", कहकर मैं उनके चेहरे पर झुक गया हूँ। वे उठने का प्रयास कर रही हैं। मैंने उनकी पीठ को सहारा देकर उन्हें तकिए के सहारे बैठा दिया है। मैं बार-बार दोहरा रहा हूँ, "चाची मैं हूँ तुम्हारा समर।"

"अरे छोरा तू", चाची ने फुसफुसाहट भरे स्वर में कहा है। पता नहीं उनमें कहाँ से शक्ति भर गई है। एक सौ पाँच साल की चाची ने मेरे चेहरे पर अपना हाथ फिराना शुरू कर दिया है। मुरली और मैं दोनों हैरान हैं। उन्होंने मुझे पहचान लिया है, वे कह रही हैं, "कहाँ चला गया था छोरा। कभी याद नहीं आई मेरी?"

"तुम्हें कभी भूला ही नहीं चाची", मैंने चाची को अपने अंक में भर लिया है। चाची ने भी अपने कमज़ोर हाथों से मुझे अपने में समेट लिया है। मेरा पूरा बदन थरथरा रहा है। आँखों से बहते पानी को रोकने का मैंने कोई प्रयास

नहीं किया है। मुझे पता है झुर्रियों के बीच दबी चाची की आँखों से भी स्नेह बह रहा है। बहुत देर तक वही स्थिति बनी रही। फिर चाची की बाँहें शिथिल होने लगीं। मुरली और मैंने उन्हें वापस लिटा दिया। चाची ने आँखें खोलकर मुझे देखा है और उनके चेहरे पर हल्की मुस्कान खेल गई है। उस व्यापारी से मिलने का समय हो चला है। न चाहते हुए भी मुझे जाना होगा। मैंने चाची के माथे पर अपने होंठ रख दिए हैं। उन्होंने अपना हाथ मेरे हाथ पर रख दिया है। मुरली ने बहुत कहा है कि मैं खाना खाकर जाऊँ। पर, मुझे ज़रा भी भूख नहीं है। ऐसा लगता है, मेरी वर्षों से भूखी आत्मा आज पूरी तरह तृप्त हो गई है। मीटिंग के बाद मैं फिर से चाची से मिलने के लिए जाना चाहता हूँ। पर, मेरी फ़्लाइट का समय हो गया है। फ़्लाइट में बैठा मैं सोच रहा हूँ कि अभी एक बहुत सुहावना सपना देखकर लौटा हूँ।

अप्रत्याशित रूप से चाची से मिलना किसी सपने के पूरा होने जैसा ही तो है। अमेरिका पहुँचकर भी मैं ख़ुद को किसी और ही संसार में अनुभव कर रहा हूँ। चाची से मिलना मेरे लिए किसी असंभव कार्य के संभव हो जाने जैसा ही तो था, कल्पनातीत, किसी जादू सा। मुरली का फ़ोन नंबर ले आया हूँ। हर हफ्ते चाची के समाचार उससे लेता रहता हूँ। कभी-कभी वह उनसे मेरी बात भी करा देता है। बात तो क्या, वे कुछ भी बोलती हैं। उनकी वे असंगत बातें भी जब कानों में पड़ती हैं तो मैं निहाल हो जाता हूँ। मैंने सोच लिया है कि जल्दी से जल्दी एक बार फिर जाऊँगा और किसी काम से नहीं, बस चाची के सिरहाने बैठने। पर, काम की व्यस्तता ने रोके रखा है।

चाची सात महीने और जीवित रहीं। एक सौ पाँच वर्ष से ऊपर की उम्र में उन्होंने इस दुनिया से विदा ली। मुरली ने जब मुझे उनके जाने की सूचना दी तो मैं भीतर तक हिल गया। वे अब सचमुच नहीं है, विश्वास नहीं कर पा रहा। मुझे लगता है, मैं फिर वहाँ जाऊँगा तो वे मुझे उसी खाट पर वैसे ही सोती हुई मिलेंगी।

000

लघुकथा

तुरपाई

रचना श्रीवास्तव

मैं जब भी इस सड़क से गुज़रता तो देखता एक बूढ़ी अम्मा सुई धागा लिए कुछ सिलती रहतीं। काम कुछ ऐसा बढ़ा कि मुझे अब लगभग रोज़ ही उस सड़क से आना-जाना पड़ता। अब मैं रोज़ ही उस अम्मा को सिलते हुए देखता। कभी वह सड़क के एक तरफ सिलाई कर रही होतीं, कभी दूसरी तरफ। मैंने वहाँ के लोगों से पूछा कि भाई ये अम्मा आख़िर क्या सिलती रहती हैं? लोगों ने कहा अरे भाई ! ये पागल हैं इनके बेटे बहू ने इनको घर से निकाल दिया है। अब यहीं पास के मंदिर में रहती हैं और रोज़ यहाँ आकर बस कुछ सिलती रहती हैं। इसको सभी दर्ज़ी अम्मा कहते हैं। एक दिन जब मैं वहाँ से गुज़र रहा था तो देखा कि अम्मा बैठी हुईं हैं और फिर थोड़ी देर में उठीं और सिलाई करना प्रारम्भ कर दिया। मैंने सोचा चलो आज अम्मा से पूछा जाए कि आख़िर वह क्या सिलती रहती हैं। मैं उनके पास गया और बोला "अम्मा पाय लागी।" अम्मा का सिलाई करता हाथ रुक गया, उन्होंने मुझे आश्चर्य से देखा और बोलीं "खुस रहो।" फिर मैंने पूछा "अम्मा आप क्या सिलती रहती हैं ?" अम्मा ने कहा बेटवा "देखो, यह रिश्ते की चादर है दिख रही है न।", मुझे कुछ दिख नहीं रहा था फिर भी हाँ में सर हिला दिया। "इसको अभी रफू किया था। तुमसे बात करने को ज़रा हाथ रोका तो देखो इस जगह से भी फट गई। मैं रफू करती रहती हूँ पर लोग फाड़ते रहते हैं। यह देखो, यह पर्यावरण का पर्दा है, इसमें देखो ये सारे जलने के निशान। इनको काटती हूँ फिर तुरपाई करती हूँ पर थोड़ी देर में किसी नई जगह पर जलने के निशान उभरने लगते हैं और यह देखो मानवता की चादर इसका तो सबसे बुरा हाल है, देखो देख रहे हो न। इसको तो सभी ने तार-तार कर दिया है फिर भी रफू करती रहती हूँ। दो घड़ी चैन से बैठ भी नहीं सकती जैसे ही बैठती हूँ कोई न कोई चादर फिर से फट जाती है।" अम्मा एक के बाद एक चादर के बारे में बोलती जा रहीं थीं। मुझे लगा अम्मा को सभी पागल कहते हैं पर अम्मा बात तो सही ही कह रही हैं। अम्मा की बातों को सोचता मैं काम पर चला गया। इसके बाद मेरा आना-जाना उस सड़क पर बना रहा और अम्मा का सिलना भी।

000

रचना श्रीवास्तव, 841 वेस्ट डुआर्टे रोड़ यूनिट 3,
आरकेडिया 91007, कैलिफ़ोर्निया
मोबाइल- 940-595-5927
ईमेल- rach_anvi@yahoo.com

कथा-कहानी

रेड सिग्नल

सुधा आदेश

हँसमुख एवं बिंदास स्वभाव वाली दिव्या का कॉलेज से लौटने पर मुरझाया चेहरा देखकर पूर्णिमा ने घबड़ाकर पूछा, "सब ठीक तो है न बेटा!"

"हाँ..." संक्षिप्त उत्तर देकर दिव्या अपने कमरे में चली गई। दिव्या का कॉलेज का प्रथम वर्ष है। किशोरावस्था में प्रवेश करती दिव्या उसकी पुत्री ही नहीं, मित्र भी बन गई है। कम बोलना तथा गंभीर से गंभीर समस्याओं को हँसी में उड़ा देना उसकी आदतों में शुमार है लेकिन उदास होना उसकी प्रवृति नहीं है। यह ज़िंदादिली उसे अपने पिता धीरज से विरासत में मिली है जिनका तकिया कलाम था...ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या ख़ाक जिया करते हैं। इसी दार्शनिकता के कारण जटिल से जटिल समस्याओं ने भी उसे कभी हताश या निराश नहीं किया। अपने पिता के समान ही उसका भी मानना है कि हताशा या निराशा व्यक्ति के सोचने समझने की क्षमता का ह्रास करती है, जिसके परिणामस्वरूप उसे वांछित परिणाम नहीं मिलता। पूर्णिमा भी इसी दर्शन के सहारे अपनी समस्याओं, दर्दे ग़मों को भूलकर जीवन नैया को पार लगाने की चेष्टा करती रही थी पर आज कॉलेज से लौटी हँसमुख, ख़ुशमिजाज़ दिव्या को उदास देखकर, वह बैचेन हो उठी। वह कॉफ़ी बनाकर दिव्या के कमरे में गई तो देखा कि वह पलंग पर लेटी अपलक छत की ओर निहारे जा रही है। वह अपने विचारों में इतनी तल्लीन थी कि उसे उसके आने का आभास ही नहीं हुआ। पास रखे स्टूल पर कॉफ़ी रखकर उसने उसके निकट बैठते हुए, हाथ से उसका माथा सहलाते हुए पुन: पूछा, "क्या बात है बेटी, क्या तबियत ठीक नहीं है या क्लास में किसी से झगड़ा हुआ है या किसी ने तुझसे कुछ कहा है?"

"कुछ नहीं मम्मा, आप व्यर्थ ही परेशान हो रही हो। अच्छा बताओ आपको आज बुखार तो नहीं आया। आपने समय से दवा ली। मैं भी कैसी लड़की हूँ, हफ्ते भर से बीमार माँ की सेवा करने के बजाय उसे परेशान कर रही हूँ।" दिव्या ने बात बदलते हुए चिंतित स्वर में कहा।

"बेटी, मैं ठीक हूँ। एक माँ अपने बच्चे का चेहरा देखकर समझ जाती है कि वह सुखी है या दुखी। तुम ज़रा सी बात पर परेशान होने वाली लड़की नहीं हो, यह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ। वैसे भी बेटा, हमारा एक दूसरे के अतिरिक्त है भी कौन? यदि हम एक दूसरे को अपनी समस्याएँ नहीं बताएँगे तो और किसे बताएँगे?"

"कुछ नहीं मम्मा, बस थोड़ा थक गई हूँ।" दिव्या ने बात टालते हुए कहा। पूर्णिमा जानती थी दिव्या की उदासी की वजह थकान नहीं कुछ और ही है। दिव्या का व्यवहार देखकर उसे ऐसा महसूस हुआ कि अब वह सचमुच बड़ी हो गई है। बच्चे जब तक छोटे रहते हैं तब तक अपनी हर छोटी-बड़ी समस्या को माता-पिता के सामने रखकर उसका समाधान प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं किंतु वही बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो अपनी समस्याओं का हल स्वयं ढूँढ़ना चाहते हैं। शायद बड़े होने का एहसास उन्हें माता-पिता को परेशान करने से रोकता है लेकिन यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि बच्चे चाहे कितने भी बड़े हो जाएँ, माता-पिता की नज़रों में बच्चे ही रहते हैं... यद्यपि उसे दुखी देखकर वह मन ही मन विचलित अवश्य हो गई थी पर उसने उसे ज़्यादा कुरेदना उचित नहीं समझा।

पूर्णिमा को पिछले पंद्रह दिनों से हाई फीवर चल रहा था। ब्लड टेस्ट करवाने पर टाइफाइड निकला था। दवाएँ चल रही थीं। पिछले दो दिनों से फीवर न आने के कारण आज वह स्वयं को प्रफुल्लित महसूस कर रही थी लेकिन दिव्या की अनकही परेशानी ने उसे चिंतित कर दिया। उसकी ज़िंदगी दुखों से परिपूर्ण रही है। अवसाद के क्षणों में आत्महत्या करने का विचार कई बार उसके मनमस्तिष्क में आया था किंतु मासूम दिव्या की भोली सूरत उसे सदा जीने के लिये प्रेरित करती रही थी। दिव्या जब छह महीने की थी तभी पूर्णिमा के पति धीरज का एक सड़क दुर्घटना में देहान्त हो गया था। जीवन में अँधेरा ही अँधेरा छा गया था। माता-पिता थे नहीं, भाई विशाल का दिल विशाल नहीं निकला... अभी उसके आँसू सूखने भी न पाए थे कि विशाल ने अपनी परेशानी का रोना रोते हुए उसका सहारा बनने से इंकार कर दिया। जीवन के उन कठिन क्षणों में भाई समान जेठ नीरज ने उसे सहारा दिया था। धीरज का सारा पैसा उन्होंने उसके नाम करवा

सुधा आदेश
306, वाइसराय स्प्लेंडर अपार्टमेंट, 1 st क्रॉस रोड, कासावानाहल्ली, बंगलुरु-560035 (कर्नाटक)
मोबाइल- 9415665941
ईमेल- sudhaadesh54@rediffmail.com

दिया था। एक-दो दिन, साल-दो साल की बात हो तो कोई सहन भी कर ले किन्तु 'हम दो हमारे दो' के युग में जहाँ लोगों को अपनी गृहस्थी में किसी अन्य का प्रवेश वर्जित प्रतीत होने लगा है वहाँ जिस व्यक्ति के कारण उसका इस परिवार से संबंध था उसके न रहने पर भी, उस संबंध से जुड़े सभी दायित्वों का निर्वाह करना, नीरज भैया और प्रेमा भाभी का बड़प्पन ही था। जीवन चल निकला था। धीरे-धीरे उसे लगने लगा कि भाभी के व्यवहार में परिवर्तन आने लगा है। वह बात-बात पर खीजने लगी हैं तथा उसके प्रत्येक काम में त्रुटि निकालकर, उसे बच्चों के सामने डाँटने में भी नहीं हिचकिचाती हैं। भैया जब कभी उसका पक्ष लेते तो वह उन्हें भी झिड़क दिया करतीं। भैया ने कभी दिव्या और अपने बच्चों रीना और रवि में भेद नहीं किया। वह अगर अपने बच्चों रीना और रवि के लिये कपड़े या खिलौने लाते तो दिव्या के लिये भी अवश्य लाया करते थे। यहाँ तक कि भाभी के लिए साड़ी लाते तो उसके लिए भी लाते। यही बात भाभी को सहन नहीं हो रही थी। पति की आमदनी में सदैव के लिए किसी का भागीदार बनना उनका स्त्री मन स्वीकार नहीं कर पा रहा था... शायद इसी कारण वह अकारण ही अपना क्रोध उस पर निकालने लगी थीं।

"प्रेमा, पूर्णिमा इधर आओ।" एक दिन ऑफ़िस से आते ही भैया ने उन्हें आवाज़ देकर बुलाया।

"प्रेमा, आज पूर्णिमा का जन्मदिन है। लो, तुम इसे उपहार दे दो।" उनके आते ही भैया ने भाभी को गिफ़्ट पैकेट पकड़ाते हुए कहा।

"इसमें क्या है?" अन्मयस्कता से भाभी ने पूछा था।

"साड़ी है।"

"यह हमारी ओर से तुम्हारे जन्मदिन पर छोटी सी भेंट है।" कहते हुए उन्होंने भाभी से उसे उपहार दिलवाया। वह उपहार पाकर सुखद आश्चर्य से भर उठी थी। उसे लगा अभी भी कोई है जिसे उसकी चिंता है। अपनी अनियंत्रित मानसिक दशा के कारण उसे याद ही नहीं रहा था कि आज उसका जन्मदिन है। जन्मदिन तथा विवाह की वर्षगाँठ ज़ोर-शोर से मनाने की प्रथा इस परिवार में पहले से चली आ रही थी। उसे आज भी याद है विवाह के कुछ दिनों पश्चात् ही पड़े उसके पहले जन्मदिन पर, धीरज ने सुबह उठते ही उसे जन्मदिन की शुभकामनाओं के साथ एक बहुत ही प्यारी साड़ी भेंट की थी। उस दिन छुट्टी लेकर धीरज ने पूरे दिन शहर के दर्शनीय स्थलों की सैर करवाने के साथ उसे मूवी भी दिखाई थी तथा रात्रि में भोजन करके ही वे घर लौटे थे। जीवन में पहली बार जन्मदिन मनाया जाना वह भी इस तरह, उसे अभिभूत कर गया था। धीरज जब तक जीवित रहे उन्होंने उसका जन्मदिन मनाने में कभी चूक नहीं की थी। एक बार उन्हें उसके जन्मदिन के अवसर पर टूर पर जाना पड़ गया था किंतु सुबह की पहली किरण के साथ ही उसका फ़ोन आ गया था...'हैप्पी बर्थ डे' का संदेश लेकर...वह कभी इस तरह के दिखावे और फ़िज़ूलख़र्ची करने के लिए मना करती तो वे कहते, "यही तो जीवन के छोटे-छोटे क्षण हैं पूर्णिमा, जो जीवन में प्रसन्नता का संचार करते हैं, यदि इन्हें ही भरपूर नहीं जिया गया तो जीवन नीरस होकर रह जाएगा...अरे यार, जीवन ज़िंदादिली का नाम है, मुर्दादिल क्या ख़ाक जिया करते हैं।"

भाई और भाभी से प्राप्त उपहार को पाने की प्रसन्नता को वह सहेज भी नहीं पाई थी कि बैडरूम से आती आवाज़ों ने उसका सुख-चैन छीन लिया...

"कहीं संवेदना जताते-जताते तुम्हारे मन में उसके लिये प्रेम तो नहीं पनपने लगा है। वह तुम्हारी नहीं, तुम्हारे भाई की पत्नी है। बात-बात पर उपहार देना, क्या तुम्हें शोभा देता है? ऐसा करके तुम क्या सिद्ध करना चाहते हो?"

"तुम क्या कह रही हो प्रेमा? पूर्णिमा मेरे दिवंगत भाई की पत्नी है। मेरा उसके प्रति कुछ दायित्व है।"

"जहाँ तक दायित्वों का प्रश्न है तो निभाओ न, पर जन्मदिन मनाना, बात-बात पर उपहार देना बंद करो...हमारे भी बच्चे हैं, उनके भी ख़र्चे हैं..." वितृष्णा से उन्होंने कहा।

"मैंने क्या कभी रीना, रवि और तुम्हारे प्रति अपना कोई दायित्व निभाने में कोताही की है? तुम यह क्यों भूल रही हो पूर्णिमा और दिव्या भी तो हमारे अपने ही हैं...वह मेरी बहन जैसी है।"

"बहन जैसे पवित्र रिश्ते का मखौल न उड़ाओ नीरज... मेरे लिये वह हमारे सुखों पर कुंडली मारे काली नागिन की तरह है। मुझे तो डर है कि वह कहीं मुझे ही डसकर मेरी जगह न आ बैठे?"

"प्रेमा..." अचानक नीरज भैया चिल्लाये थे। उसी के साथ जिठानी का रोने का स्वर उसे भयभीत कर गया था। भाभी ने भैया के कहने से उसे उपहार तो दे दिया था किन्तु ईर्ष्यावश वह इस बात को पचा नहीं पाई थीं, तभी एकांत पाते ही उनका क्रोध सारी सीमाएँ तोड़कर बह निकला था। उस दिन सबने खाया भी तो ऐसे जैसे वे सब पास रहकर भी दूर-दूर हैं और वह बेबस सी पूरी रात दो वर्षीय नन्हीं दिव्या को सीने से लगाये काफी देर तक रोती रही थी...। भाभी सच ही तो कह रही हैं वह तो काली नागिन है, जिसने उनका सुख चैन छीन लिया है। किन्तु क्या एक अकेली स्त्री किसी की बहन या बेटी समान नहीं हो सकती, सदा उसे ग़लत ढंग से ही क्यों देखा जाता है? विधवा का जीवन न केवल स्वयं के लिये वरन् समाज के लिये भी बोझ है। एक स्त्री की इच्छाएँ \, आकांक्षाएँ तो उसके पति की चिता के साथ ही भस्म हो जाती हैं पर मन और शरीर अत्याचार सहने के लिये रह जाता है। उसने उसी समय निर्णय कर लिया था कि रिश्तों के बंधन और कमज़ोर हों उससे पूर्व ही वह अपना अलग घर बसायेगी। उसका घर तो उजड़ ही गया है, अपनी निरंतर उपस्थिति से किसी के हरे-भरे संसार को क्यों उजाड़े? वह भी एक ऐसे व्यक्ति का घर जिसने उसे संकट के समय न केवल संबल दिया वरन् मान-सम्मान से जीने का अवसर भी दिया। अख़बार में विज्ञापन देखकर उसने नौकरी के लिये एप्लाई करना प्रारंभ कर दिया। विवाह के पूर्व वह ऑफ़िस में सेक्रेटरी रही थी, दो वर्ष का अनुभव था। उसे उम्मीद थी कि उसकी मेहनत अवश्य सफल होगी। घर में किसी को बताये बिना जॉब के लिये एप्लाई करना उसे अपराधबोध से ग्रसित कर रहा था... उसे लग रहा था कहीं

नीरज भैया उसके प्रयत्न को अपना अपमान न समझें किन्तु मन ने समझाया कि अगर आत्मसम्मान के साथ जीना है तो उसे प्रयत्न करना ही पड़ेगा! आख़िर कब तक वह दूसरों के सुखों पर ग्रहण बनकर, अविश्वास के वातावरण में जीती रहेगी?

एक दिन उसको बाहर जाता देखकर प्रेमा भाभी ने झल्लाकर उससे प्रश्न किया तब उसने नम्रता से कहा, "दीदी, दिव्या अब बड़ी हो गई है। कब तक यूँ ही ख़ाली बैठी रहूँगी, सोचकर एक दो जगह नौकरी के लिये एप्लाई किया है, आज एक जगह इंटरव्यू है...शायद सफलता मिल जाए।" प्रेमा भाभी तो कुछ नहीं बोली थीं पर नन्हीं दिव्या के कारण नीरज भैया अवश्य नाराज़ हुए थे पर उसकी बात सुनकर, उन्होंने भी मौन स्वीकृति दे दी थी। अंतत: उसे नौकरी मिल ही गई... वेतन ज़रूर कम था पर आत्मसम्मान से जीने की राह मिल गई थी।

नौकरी मिलने के महीने भर पश्चात् ही पूर्णिमा ने ऑफ़िस के समीप ही एक घर किराए पर ले लिया। उसके अलग रहने के निर्णय ने भैया को असहज किया था, किंतु घर में छाये तनाव के कारण उन्होंने उसे सहज स्वीकृति दे दी। भाभी के चेहरे पर उसने मुद्दतों के पश्चात् संतोष की छाया देखी थी। रीना और रवि भी उसके अलग रहने के निर्णय से दुखी हो उठे थे। दिव्या उनके लिये खिलौना थी स्कूल से आने के पश्चात् वे दोनों उसे पार्क लेकर जाते, उसके साथ खेलते, यहाँ तक कि उसे अपने साथ बिठाकर खाना भी खिलाते थे। वैसे भाभी से उसे कोई शिकायत नहीं थी। यह तो मानव स्वभाव है, वह भी विशेषकर स्त्री का जो अपने प्यार और अधिकार में किसी की भी दखलंदाज़ी सहन नहीं कर पाती है। यदि इस अतिक्रमण का अंदेशा उसे किसी स्त्री की तरफ से हो, वह औरत चाहे उसकी सगी बहन ही क्यों न हो, वह और भी आक्रामक हो जाती है। उसके घर से जाते समय प्रेमा भाभी ने रीना और रवि को सहज भाव से समझाते हुए कहा था, "चाची कहीं दूर थोड़े ही जा रही है जब तुम्हारा मन हो, जाकर मिल आना।"

प्रारंभ में दिव्या को क्रेच में छोड़कर जाना मन को परेशान कर जाता था लेकिन इसके अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई उपाय भी तो नहीं था। धीरे-धीरे दिव्या ने भी स्वयं को नए वातावरण में ढाल लिया था। दिव्या को नए हमउम्र दोस्तों के साथ ख़ुश देखकर उसके मन का बोझ हट गया था तथा उसका काम में मन लगने लगा था।

कुछ वर्षों पश्चात् प्रेमा भाभी को उसके प्रति अपने अनुचित व्यवहार का एहसास हुआ था, तब वह उससे क्षमा माँगने आईं, उसने उनके चरण छूते हुए इतना ही कहा था, "प्लीज़ भाभी, आप अपने मन में कोई अनुचित विचार न लाएँ। आप बड़ी हैं, मेरे लिए पूज्य हैं। मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं है कि आज मैं जो कुछ हूँ आपके ही कारण हूँ। आशा है मेरा यह कथन आप अन्यथा नहीं लेंगी। आपका आशीर्वाद, साथ तथा सहयोग सदा हमारे साथ रहे बस यही कामना है।"

जेठानी के परिवर्तित व्यवहार ने एक बार फिर सबको जोड़ दिया था। उसे जब भी कभी अकेलापन महसूस होता वह नि:संकोच चली जाती। छुट्टियों में दिव्या भी उनके पास रहना पसंद करती थी। मन में छाया मैल घुल जाने से संबधों में प्रगाढ़ता आ गई थी। भाई-भाभी भी अब उस पर दूसरा विवाह करने के लिए दबाव डालने लगे थे। वह चाहते थे कि उसकी ज़िंदगी में स्थायित्व आ जाए तथा नन्हीं दिव्या को पिता का प्यार मिल सके। दिव्या के भविष्य को ध्यान में रखकर उसने उसके पालन-पोषण में ही पूरा जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया था किन्तु आज दिव्या की चुप्पी ने उसे तोड़कर रख दिया था। पता नहीं यह किस तूफ़ान के आने के पहले की खामोशी है। इस समय मूकदर्शक बने रहने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई उपाय भी नहीं था।

आज के माता-पिता की यही तो दुखद स्थिति है कि जिस संतान के लिये वह अपने जीवन के अमूल्य वर्ष अर्पण कर देते हैं वही कभी-कभी उनके लिये अपरिचित हो उठती है। पूर्णिमा को भरोसा था तो केवल इस बात का कि दिव्या ने उसके जीवन में आए उतार-चढ़ाव को निकट से देखा और समझा है अत: वह कभी ग़लत क़दम नहीं उठायेगी। वह भी उसके एकांत में बाधक नहीं बनेगी...जब तक वह स्वयं नहीं बताएगी, वह भी उससे कुछ भी नहीं पूछेगी।

दूसरे दिन दिव्या को कॉलेज जाने के लिये तैयार न होते देखकर पूर्णिमा से रहा न गया तथा न चाहते हुए भी पूछ बैठी, "बेटा, आज कॉलेज नहीं जाना क्या?"

"मम्मा, कल एक लड़के ने मुझे ग़लत तरीके से छूने की कोशिश की थी। मैंने विरोध किया तो उसने मेरे बारे में उल्टी-सीधी बातें फैलाने की धमकी दी।" शर्म से सिर झुकाते हुए पनियाली आँखों के साथ उसने उत्तर दिया।

"लेकिन उसने ऐसा क्यों किया? कहीं कभी उसे तुम्हारी ओर से ग्रीन सिग्नल तो नहीं मिला।" भेदती नज़रों से दिव्या को देखते हुए पूर्णिमा ने पूछा।

"मम्मा, आप भी..." आश्चर्य से उसे देखते हुए उसने कहा।

"नहीं बेटा, मैं तुम पर शक नहीं कर रही हूँ। मैं सिर्फ सच्चाई जानना चाह रही हूँ। बिना आग के धुआँ नहीं निकलता...हो सकता है तुम्हारी किसी बात से उसे ऐसा लगा हो कि तुम उसे चाहने लगी हो?"

"मम्मा, सहपाठी होने के कारण हम अक्सर कॉलेज कैंन्टीन में साथ बैठकर लंच करते हैं तथा लाइब्रेरी में बैठकर पढ़ाई से संबंधित डिस्कशन भी करते हैं। कभी-कभी हँसी-मज़ाक भी हो जाता है।"

"यही बातें जो तुम्हारे लिये सामान्य थीं, उसके लिए ग्रीन सिग्नल बन गईं। बेटा, भले ही आज इंसान चाँद पर पहुँच गया हो, स्त्री स्वातंत्र्य की बड़ी-बड़ी बातें करने लगा हो लेकिन मूल रूप से आज भी उसकी सोच सदियों पुरानी है। नर-नारी का साथ आग और बारूद के साथ जैसा है। नर-नारी में मित्रता आज भी कुछ लोग सहज, स्वाभाविक रूप में नहीं ले पाते...तुच्छ मनोवृत्ति तथा कुंठाग्रस्त लोगों का यह ईर्ष्याजनित व्यवहार है। बेटा, विपरीत सेक्स के प्रति आकर्षण तुम्हारी उम्र का तकाज़ा। अगर तुम्हारा मन साफ़ है तो किसी की अवांछनीय हरकत के कारण तुम

क्यों मुँह छिपा रही हो? तुम दोनों एक ही कक्षा में हो, तुम्हें उसके साथ उठना-बैठना पड़ेगा ही, यदि आज तुम कॉलेज नहीं जाओगी तो उस कलुषित मानसिकता वाले युवक को बढ़ावा ही दोगी! वह और भी उद्दंड हो जाएगा। तुम यदि आज कॉलेज जाती हो तो तुम्हारे ऊपर उसकी बात का कोई असर न होते देखकर उसका मनोबल क्षीण होगा तथा वह आगे से ऐसी हरकत करने में हिचकिचाएगा। ज़िंदगी में आने वाली परेशानियों से भागा नहीं जाता, उनका बहादुरी से सामना किया जाता है। बेटा, तुम्हीं तो कहा करती हो ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है मुर्दा दिल क्या ख़ाक जिया करते हैं...अपने चेहरे पर छाई इस उदासी को उतार फेंको और ज़िंदादिली से जीवन में आए इस तूफ़ान का मुकाबला करो। अब उठो, जल्दी से तैयार हो जाओ, तब तक मैं टिफिन पैक करती हूँ। एक बात और कोई कुछ कहे या न कहे तुम्हें अपने और अपने सहपाठियों के मध्य सबंधों की एक सीमा रेखा...लक्ष्मण रेखा को बनाकर रखना होगा; क्योंकि नारी के भाल पर लगा एक छोटा-सा दाग़ उसकी ज़िंदगी दुश्कर बना देता है।"

घड़ी साढ़े आठ बजा रही थी आज उसे ऑफ़िस भी जाना है, अभी नाश्ता बनाना है तथा अपने और दिव्या के लिये टिफिन भी पैक करना है...हाथ मशीन की तरह काम करने लगे तथा मन तरह-तरह की आशंकाओं से घिर उठा था...उसके जीवन में भी एक ऐसा ही तूफ़ान आया था। बात तब की है जब उसने नई-नई नौकरी प्रारंभ की थी...पर्सनल सेक्रेटरी होने के कारण उसका बॉस के साथ पूरे दिन का उठना बैठना था पर संकुचित प्रवृत्ति के लोगों को बातें बनाने का अवसर मिल गया। उन्होंने उसके तथा बॉस के सबंध में तरह-तरह की बातें फैलानी प्रारंभ कर दी थी। ऑफ़िस में हर कोई उसकी मदद के लिये तैयार रहता। कभी बॉस के साथ उसका नाम जोड़कर उस पर आरोप लगाये जाते तो कभी उसके अकेले रहने पर चिंता जताई जाती। उस समय उसे ऐसा लगा था कि चाहे घर हो या ऑफ़िस, औरत कहीं भी सुरक्षित नहीं है। उसका विधवा, सुंदर, जवान और अकेले रहना ही उसका दुश्मन है। ऐसे लोगों का व्यवहार देखकर कभी-कभी उसे लगता कि दूसरे की ज़िंदगी में झाँकने की न जाने यह कैसी मानसिकता है...क्या वह एक अँधेरी गुफ़ा से निकलकर दूसरी अँधेरी गुफ़ा में तो नहीं आ गई है? क्या एक अकेली स्त्री का समाज में रहना इतना दुश्कर होता है? पहले भाभी और अब यहाँ...कभी-कभी उसे लगता था कि भैया-भाभी की बात मानकर वह दूसरा विवाह कर ले, कम से कम इन तथाकथित हितैषियों की लोलुप नज़रों से तो बच जाएगी पर तभी दिव्या का ध्यान आता...क्या दूसरा विवाह कर वह दिव्या के साथ न्याय कर पाएगी? उसके जीवन में आया दूसरा पुरुष हो सकता है उसे तो अपना ले पर अगर दिव्या को नहीं अपना पाया तो? क्या वह धीरज और अपने प्यार की निशानी को तिरस्कृत जीवन व्यतीत करते देख पाएगी...और तो और वह स्वयं भी धीरज की जगह किसी अन्य को दे पाएगी? वह स्वयं दुख और ताने सह लेगी पर न तो स्वयं को धोखा देगी और न ही अपनी बेटी के जीवन के साथ कोई समझौता करेगी?

कशमकश उसका पीछा ही नहीं छोड़ रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि ऐसे माहौल में वह स्वयं को कैसे समायोजित करे पर तभी ठंडी बयार के झौंके ने उसके तपते तन-मन को शीतलता पहुँचाई। अनर्गल आरोप जब उसके सुसंस्कृत और सहृदय बॉस के कानों में पहुँचे तो उन्होंने अपने आधीनस्थ कर्मचारियों को बुलाकर न सिर्फ डाँटा वरन् उसे परेशानी से बचाने के लिये, अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए, अपने कैबिन में लकड़ी के दरवाज़े की जगह शीशे का पारदर्शी दरवाज़ा लगवा दिया था। तब उसे लगा था कि आज भी इस धरती पर इंसान रहते हैं जो स्त्री को सिर्फ देह या हाड़-मांस का पुतला नहीं वरन् इंसान समझते हैं। उसकी इच्छाओं, भावनाओं की कद्र ही नहीं करते वरन् उसके आत्मसम्मान की रक्षा करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अंतत: लोगों के मुँह पर ताले लग ही गए थे।

जीवन चल निकला था पर आज एक बार फिर वही समस्या...डर तो उसे इस बात का था कि कहीं दिव्या इन अनर्गल आरोपों के कारण अवसादग्रस्त न हो जाए ! नहीं, वह दिव्या की ढाल बनेगी, उसे समझाने का हरसंभव प्रयास करेगी...वह जानती थी कि दिव्या की समस्या नई नहीं है। समय चाहे कितना भी क्यों न बदल जाए या हम कितना भी आधुनिक होने का दम क्यों न भर लें पर हर काल में लगभग हर स्त्री को जीवन में एक न एक बार इस तरह की समस्या का सामना करना ही पड़ता है। शायद सेक्स एजुकेशन के अभाव में किशोरावस्था में पदार्पण करते युवा अपने अज्ञान या विपरीत सेक्स के प्रति आकर्षण के कारण दिग्भ्रमित होकर गलतियाँ कर बैठते हैं। एक ही चश्मे से देखने के आदि व्यक्तियों के लिए नर-नारी का संबंध सिर्फ़ दैहिक ही होता है!

"मम्मा, मैं तैयार हूँ।"

"तुम्हारा टिफिन भी तैयार है।" उसके हाथ में टिफिन पकड़ाते हुए पूर्णिमा ने मुस्कराकर कहा।

दिव्या के स्वर के आत्मविश्वास को देखकर पूर्णिमा के मन की दुविधा समाप्त हो गई थी। उसे दिव्या पर पूर्ण विश्वास था। आख़िर दिव्या उसकी बेटी है जिसने मार्ग में आए हर काँटों को चुन-चुनकर अपने लिये निष्कंटक मार्ग बनाया है। अपनी लगन और परिश्रम के बल पर अपने लिये विशिष्ट जगह बनाई है। यदि वह ऐसे निरर्थक आरोपों से डरकर या घबराकर बैठ जाती तो क्या वह दिव्या को सुरक्षित भविष्य दे पाती?

सचमुच इस पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री का अकेले रहना सहज नहीं है पर आज की नारी सारे बंधनों को तोड़ती हुई आगे बढ़ रही है। आत्मविश्वास से भरपूर इक्कीसवीं सदी की नारी कामयाबी के ऐसे-ऐसे शिखरों को छू रही है जो एक समय उसके लिये वर्जित थे...उसने सिद्ध कर दिया है कि दृढ़ इच्छाशक्ति और आत्मबल से मरुस्थल में भी फूल खिलाये जा सकते हैं, उफनती, शोर मचाती नदी को बाँधा जा सकता है। अब वह ग्रीन सिग्नल नहीं, रेड सिग्नल बनेगी।

000

कथा-कहानी

मैं तुम्हें गाता रहूँगा

रंजना अनुराग

19 जून 2019 की तपती दोपहर थी, ग्रीष्म इस बार कुछ अधिक ही गर्म था। लगता था, कहीं आग सी लग गई है, लखनऊ मेडिकल कॉलेज के हृदय रोग विभाग 'लॉरी' में स्ट्रेचर पर एक निश्चेष्ट काया लावारिस सी अहाते में ही पड़ी थी। इतने सारे लोगों को हृदय घात से मरते हुए, तड़पते हुए देखते-देखते शायद यहाँ की दीवारें भी हृदय हीन हो चुकी हैं, ठोस, संवेदन शून्य, और अपारदर्शी ! थोड़ी देर में ही उस निश्चेष्ट काया की भौतिक पत्नी वसुधा अपनी युवा पुत्री के साथ बदहवास आती हुई दिखीं। मैं भी थोड़ी देर में अस्त-व्यस्त अपने पति के साथ पहुँची। मेरा छोटा बेटा भी साथ था। सभी घबराये थे, एक अनिष्ट और अनहोनी की आशंका का भय सभी के चेहरों पर आंदोलित हो रहा था, 'इन्हें कोई एडमिट क्यों नहीं कर रहा ?' मेरा छोटा बेटा आयुष हिम्मत करके आगे बढ़ा, 'ये बहुत सीरियस हैं, इन्हें तुरंत स्टंट लगना है, टी एम टी के दौरान बेहोश हो गए थे, उन्हीं लोगों ने यहाँ भेजा है इन्हें।'

सभी वार्डब्वाय और जूनियर डॉक्टर चुप, एक दूसरे का मुँह देखने लगे, तभी एक वार्डब्वाय हिम्मत करके आगे आया- 'इनकी तो चारों आर्टरी ब्लॉक थीं, इन्हें तो भगवान् भी नहीं बचा सकता था, अंदर तो केवल जीवित मरीज़ ही जाते हैं, इनकी तो मृत्यु कुछ घंटे पहले ही हो चुकी है, इनका टी एम टी भी कैसे हुआ ? जब इनकी इतनी गंभीर हालत थी ?' उसने तो हम लोगों को ही प्रश्नांकित कर दिया, हम लोग हतप्रभ और स्तब्ध !

अचानक शोकाकुल उनकी पत्नी और बेटी हृदय द्रावक चीत्कार के साथ फूट-फूट कर रोने लगीं। दिमाग़ पर छाये सन्नाटे को दर किनार करते हुए मैंने स्पष्ट बात करना ही अब उचित समझा, लेकिन तब तक वरिष्ठ डॉक्टर आ चुके थे, उनकी भी त्योरियाँ चढ़ी थीं, 'किस बेवक़ूफ़ डॉक्टर ने ऐसी हालत में इन्हें टी एम टी के लिए भेजा ?'

थोड़ी ही देर में सब कुछ समाप्त हो चुका था, हाहाकारी समय किसी का घर उजाड़ चुका था। मेरे सामने सबसे बड़ी समस्या अब यह थी, कि कैसे प्रशांत की पत्नी और पुत्री को सांत्वना दी जाए, वे मेरे घर आए थे, मेरे भरोसे आए थे, पर मैं करती भी तो क्या ? उनकी स्थिति बहुत गंभीर थी, लेकिन यह बात तो मुझे अब पता लगी, यहाँ आकर। उनका केस लॉरी का केस था, पर लॉरी में उन्हीं दो दिनों ने अचानक हड़ताल हो गई थी। मजबूरी में प्राइवेट डॉक्टर से अपाइंटमेंट लेना पड़ा, उस डॉक्टर ने बहुत गंभीरता से केस को नहीं लिया, वरना प्रशांत जी हमारे बीच आज होते। उन्हें सीधे स्टंट के लिए रेफ़र करना था, न कि ऐसे केस में टी एम टी के लिए रेफ़र करना चाहिए था, वही उनके लिए जानलेवा साबित हुआ, मैं इस अपराध बोध से स्वयं को मुक्त नहीं कर पा रही थी।

जब दृष्टि पड़ी, तो देखा प्रशांत की पत्नी दो बार बेहोश हो चुकी थीं, उनकी बेटी बार-बार उनके मुँह पर पानी का छींटा डाल कर होश में लाने का यत्न कर रही थी, मेरा बेटा भी उन्हीं के साथ लगा हुआ था। मदद भी कर रहा था, और अपनी क्षमता भर सांत्वना भी दे रहा था।

प्रशांत जी की देह वैसे ही अभी तक उस अहाते में पड़ी थी, लोग आ रहे थे, जा रहे थे, वह देह और उस देह की आँखों में दुनिया भर की शिकायतों का अंबार था, जैसे मेरे लिए ही, मुझे अपरोधबोध ने गहरे जकड़ लिया था, 'अरे कोई चादर तो इन्हें दे दो,' मैंने जाते हुए वार्डब्याय से कहा।

'अरे मैम हम यहाँ से कुछ नहीं देंगे..आपको जो भी चाहिए, अस्पताल के बग़ल में दुकानें हैं, वहीं से ले लीजिए।' अजीब संवेदनहीनता है, मन में मैंने कहा, तब तक एक चादर प्रशांत की मृत

रंजना अनुराग
सी/172 निराला नगर- लखनऊ
उप्र 226020
मोबाइल- 9936382664
ईमेल- ranjanaguptadr@gmail.com

देह के लिए बेटा लेकर लेकर आ चुका था। हम लोगों ने मिल कर उन्हें चादर उढ़ाई और उनकी खुली निरभ्र आँखों को आहिस्ते से सदा के लिए अपनी हथेलियों से बंद कर दिया। आज एक परिवार का मुखिया छिन गया था। पिता का साया दोनों बच्चों के सिर से उठ गया और पत्नी को जीवन भर का शोक मिल गया।

ओह, मुझसे कैसे इतनी बड़ी लापवाही हो गई! मुझे उस डॉक्टर के पास इनको नहीं भेजना चाहिए था। मन बार-बार मथने लगा। अब यह गहरा अपराध बोध मेरे मन को आजन्म मथता रहेगा। किस मुँह से मैं अब उन असहाय और दारुण दुख को झेलती माँ-बेटी को तसल्ली दूँ, कैसे ?

जो मेरे पास इतनी दूर बड़े भरोसे से इलाज के लिये आए थे। सब कुछ ख़त्म हो चुका था। विवश मन ने जैसे किसी गहरे कुएँ में जैसे छलाँग लगा दी।

लगभग तीस वर्ष पूर्व मैं और प्रशांत बहुत अच्छे मित्र थे। उन्हें जज बनना था मुझे प्रोफ़ेसर। अपनी अपनी पारी दोनों ही खेल रहे थे। उस छोटे से शहर में हमारा परिचय हमारी कॉमन दोस्त प्रियंका के घर पर हुआ था, जहाँ हर शाम को कुछ हम उम्र दोस्त बैठते थे और दुनिया जहान की बातें करते थे। सभी की कॉलेज, यूनिवर्सिटी की शिक्षा लगभग ख़त्म हो चुकी थी और सब आगे प्रतियोगिताओं के लिए ही तैयारी कर रहे थे। अपने कॅरियर को लेकर सभी गंभीर थे। बस कुछ अपने लक्ष्य के बहुत क़रीब थे, तो कुछ थोड़ा दूर। जब बातों का दौर चलता, तो कॅरियर, कविता और गीत सभी कुछ उस सम्मोहन भरी युवाओं की छोटी सी महफ़िल का हिस्सा बन जाते। प्रशांत एक बहुत गहरी मनश्चेतना से संपन्न गंभीर से युवक थे। उनकी नीली और पनीली आँखें बहुत पारदर्शी थीं। वह एक सुदर्शन व्यक्तित्व के स्वामी थे। वह दौर था, गीतकार किशन सरोज का, गोपाल दास नीरज का, और भारत भूषण अग्रवाल का। किशन सरोज प्रशांत के प्रिय गीतकार थे। वे अक्सर उन्ही की पंक्तियाँ गुनगुनाया करते थे-

'मावस बाँधे केश तुम्हारे मुख धोये शशि अभिमानी, छाँव लजाए देख तुम्हें बासन्ती धूप

भरे पानी।'

'मन की सीमा से पास-पास, तन की सीमा से दूर-दूर तुमने यूँ महकाईं मेरी सूनी गलियाँ, ज्यों रजनी गंधा खिले पराये आँगन में।'

इन्हें गाते हुए, गुनगुनाते हुए, प्रशांत कहीं खो जाते, और दृष्टि लौट-लौट कर मुझ पर आ टिकती, धीरे-धीरे उस ग्रुप में सभी को प्रेम के इस पनपते पौधे की भनक लगने लगी, पर मैं ही जैसे अनजान थी। लेकिन प्रेम तो एक दाहक ज्वाला की भाँति है, जिसकी तप्त अनुभूति से कोई बचना भी चाहे, तो बच नहीं सकता है, इसीलिए सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने प्रेम की बड़ी सधी हुई व्याख्या की है 'प्रेम न तो कोई रहस्यपूर्ण उपासना है, न पशुतुल्य उपभोग, यह उच्चतम भावों की परिणति स्वरूप एक मानव प्राणी का दूसरे के प्रति सहज आकर्षण है।'

प्रशांत स्वाभाविक रूप से बेहद शर्मीले थे। कुछ भी कहना गीतों में ही उनके लिए संभव था। फिर भी आग फैल रही थी और हम दोनों के घरों की दीवारों तक भी पहुँचने लगी। पर वह हो न सका, जो दोनों के मन ने एक साथ सोचा था।

प्रशांत एक संभ्रांत परिवार से थे और शायद वह समय अंतर्जातीय विवाह के लिए उतना सुविधा जनक भी नहीं था। पारिवारिक विरोध, विद्रोह में बदल नहीं पाया और नेह की गलियाँ सूनी ही रह गईं। उस समय प्रेमी विलग होकर भी किसी से कोई शिकायत नहीं करते थे। नियति और परिजनों को यथावत् स्वीकार कर जीवन भर की दाह हृदय में पाल लेते थे, पर उफ़ नहीं करते थे।

'अंतरदाहों के पास-पास, सुख की चाहों से दूर-दूर, तुमने यूँ विवश किया जीवन भर जीने को, ज्यों आग कहीं लग जाए, किसी गीले वन में।' प्रेम के पृष्ठ धीरे-धीरे काले पड़ने लगे। निराशा का तिमिर घना होते-होते अमावस की रात में बदल गया। शीघ्र ही मेरा विवाह परिजनों की सहमति से इस शहर में तय भी हो गया।

'भर छलाँगें आँख ओझल हिरणियों का दल हुआ, कौन पूछे तन हुआ घायल, कि घायल मन हुआ, बहुत घबराए अकेले प्राण नदिया के किनारे।' और एक दिन बहुत बड़ी पीड़ा भी बहुत छोटी हो कर रह गई। विछोह जन्म भर का था पर धीरज भी पर्वत सा अटल रहा। और दूर रह कर भी एक जीवन दूसरे के जीवन को सदा जीवन देता रहा।

'तुम धीर बँधाते रहे विलग रह कर के यूँ, ज्यों नदी पर दीवा जलता है निर्जन में।'

विवाह के दिन वर्षों में बदलते रहे, और वर्ष दशकों में...

'घूँघट की ओट किसे होगा संदेह कभी, रतनारे नयनों में एक सपन डूब गया।' पलक झपकते ही वह प्रेम देह की अमृत शिराओं में जीवन भर के लिए ज़हर-सा घोल कर चला गया और 'ले गया चुन कर कमल कोई हठी युवराज, जन्म जन्मों ताल सा हिलता रहा मन।'

अनंतत: अंतिम साँसों तक के लिए हम दोनों का एक उदास सफ़र शुरू हो गया था।

बहुत समय बीत गया, शायद कुछ भी लौटना संभव नहीं था, पर शायद नियति नटी को यह दण्ड अभी कम लग रहा था। मेरा बेटा संयोग वश उसी कॉलेज से बी टेक कर रहा था, जिस कॉलेज से प्रशांत का पुत्र। वे दोनों जाने-अनजाने आपस में अच्छे मित्र भी बन चुके थे। एक दिन जब प्रशांत का बेटा घर आया, मैंने उससे बातों-बातों में परिवार के विषय में बात की तो पता चला, वह प्रशांत का ही पुत्र है। बिलकुल पिता पर उसके नैन नक़्श गए थे। कुछ-कुछ अंदेशा था पर पहले से ही यह अन्दाज़ लगाना ठीक भी तो नहीं था।

प्रमाण चाहिए ही होता है, किसी भी रिश्ते को गहराई तक समझने के लिये। फिर क्या था, ख़ूब आना-जाना शुरू होने लगा। दोनों परिवार भी कुछ-कुछ आपस में घुलने मिलने लगे। मेरा प्रशांत से पूर्व परिचय जान कर तो मेरे पति बेहद उत्साहित हुए। प्रशांत के सादगी पूर्ण सहज, संतुलित, गंभीर व्यवहार के कारण घनिष्ठता भी दोनों परिवारों में बढ़ गई थी। इसी नाते वे बीमार होने पर इलाज के लिए मेरे ही घर आ गए थे। बड़े ही आस और विश्वास से; जिसका मैंने रत्ती भर भी मान नहीं रखा।

'पापा...एक तीव्र करुण चीख के साथ इस बार बेटी श्वेता अर्ध बेहोश हो गई थी उनकी। माँ-बेटी बिलकुल भी सहन नहीं कर पा रहीं थीं इस आकस्मिक हृदयद्रावक आघात को। प्रशांत की पत्नी को तो जैसे लकवा मार गया था। कुछ भी नहीं बोल रहीं थीं। बस एक टक आसमान की ओर निहारे जा रही थीं।

प्रशांत का पुत्र, मेरे बेटे का सहपाठी और दोस्त भी क्षितिज चल चुका था दिल्ली से। उसने बहुत धैर्य रखा। विचलित होते-होते भी बहुत सँभाला स्वयं को। बस अपनी माँ और बहन के लिए उसने कलेजे पर पत्थर रख लिया, मगर उसे आने में अभी समय था। तब तक मेरे बेटे ने ही प्रशांत की पत्नी और बेटी को सँभालने की ज़िम्मेदारी बड़ी अच्छी तरह से ले रखी थी।

'आंटी..आंटी होश में आइये, अंकल अब नहीं रहे। श्वेता को देखिए। उसके बारे में और क्षितिज के बारे में, अब आपको ही सोचना है। हिम्मत रखिए, हम लोग आपके साथ हैं।

दोनों माँ-बेटी का रोते-रोते बुरा हाल था। मैं स्तब्ध, जड़ हो चुकी थी। क्या कहूँ, कैसे कहूँ.. वे बेचारे एक मात्र मेरे ही भरोसे तो आए थे इस शहर में। कितना बड़ा दुख दिया मैंने उन्हें। इन बच्चों के सिर से पिता का साया छीन लिया और पत्नी से उसका जीवन साथी ! मैं ख़ुद को लगातार कोसे जा रही थी। मेरे पति भी ग्लानि से सिर नीचा किए चुपचाप खड़े थे। वह वैसे भी ऐसी स्थितियों का सामना नही कर पाते हैं। नियति क्या-क्या दिन दिखाती है, यद्यपि मैं क़ुसूरवार नहीं थी, मुख्य क़ुसूरवार

वह डॉक्टर था। यह सभी जानते थे, पर मेरा मन बहुत विचलित था। होनी को कौन रोक सकता है! कभी मैं कुछ सोचती, कभी कुछ और सोचती, पर प्रेम और विश्वास की अर्थी उठ गई थी, मैं शायद किसी की भी रक्षा नहीं कर पाई। परसों ही तो प्रशांत मेरे घर बेटी और पत्नी के साथ बड़ी उम्मीद से आए थे।

'सरिता, मुझे कहीं दिखवा दो। मेरे बाएँ हाथ में बहुत दर्द है। सीने में भारीपन है, एक कदम भी चला नहीं जाता। पाँवों में तो जैसे कोसों की थकान भर गई है। शुगर फ़ास्टिंग की दवा लेने के बाद भी दो सौ से नीचे नहीं जाती। मैं मन ही मन काँप गई। मुझे आभास हो गया कि बहुत सीवियर केस है इनका। इतनी देर में उनकी पत्नी भी बड़बड़ाते हुए आ गईं, 'अरे आपसे परहेज़ तो होता नहीं, इधर मंदिर में पूजा करके आती हूँ, उधर आप ठाकुर जी के भोग का लड्डू खा लेते है। कितना कहती हूँ कुछ चला कीजिए, टहलिए पर आपसे कुछ होता ही नहीं। पत्नी उनकी मध्यवर्ग से थीं और अधिक पढ़ी-लिखी भी नहीं थी। स्वास्थ्य को तो उन सबने मिल कर खिलवाड़ बना दिया था। वे अक्सर मुझसे फ़ोन पर बातें करते रहते थे। पत्नी से बहुत ख़ुश नहीं थे और बच्चों की ज़िद मनमानी से बहुत परेशान कहते थे मुझसे, 'ये लोग कोई मेरी बात नहीं मानते। सब कुछ ज़िद से पाना चाहते हैं। देखना एक दिन इन्हीं लोगों के कारण मेरे प्राण निकलेंगे। सच यदि समय रहते उनकी ठीक से देखभाल और डायग्नोसिस होती, तो ऐसी नौबत आती ही नहीं।' मैंने भी उन्हें थोड़ा डाँटा, 'यदि इतने बीमार थे तो पहले क्यों नहीं आए ? बहुत लापरवाह हैं आप... '

ख़ैर देर तो हो ही चुकी थी। वास्तव में मनुष्य दृष्टा और सृष्टा दोनों ही नहीं है। ईश्वर ने सब कुछ नहीं सौंप रखा है मनुष्य को, जो कुछ सौंप रखा है, वह तो उससे सँभाला ही नहीं जा रहा। धरती का विनाश करने पर अपनी बेवक़ूफ़ियों से तुल गया है आज मनुष्य, नियति अपने पासे फेंक रही है, और हम सब मूक बने तमाशा देखने को विवश हैं, क्या है हमारे हाथ में ? विडंबना, त्रासदियों के दौर से ज़िंदगी गुज़रती रहती है, और कभी हमारी कोशिशें भारी पड़ती है ज़िंदगी पर, कभी नियति की चाल बाज़ियाँ !

दो दिन पहले जब वे आए थे, तभी उनकी स्थिति देख कर मैंने लॉरी में फ़ोन लगाया था, पर फ़ोन बड़ी देर में उठा, और फ़ोन पर वह बोलने वाली लड़की मुझे ही डाँट रही थी, 'लॉरी में डॉक्टर्स की हड़ताल है, आपको नहीं पता।'

'पर हमारा पेशेंट बहुत सीरियस है प्लीज़, आप उसे एडमिट कर लें।' लेकिन कोई टस से मस न हुआ, जाने कितने मरीज़ जो बाहर से आए थे, वे किसी और जगह चले गए। हाँ कुछ मौतें भी हो गईं, जिन्हें मेडिकल से संबंधित आँकड़ों में छिपा दिया गया। पेट आदि की भी समस्या बता कर, आज के डॉक्टर्स कैसे हैं, जो मरीज़ों की जान से खेल कर भी अपनी माँगे मनवाते हैं। कैसे उन्हें डॉक्टर बनाया जाता है, क्रूर और हृदयहीन। कोई मानवता की शिक्षा ही जैसे इन्हें नहीं मिली। मजबूर होकर सारे मरीज़ों की भीड़ स्थानीय प्राइवेट हृदय रोग विशेषज्ञों के पास सिमटने लगी, तो उनके भी लंबे-लंबे अपाइंटमेंट होने लगे।

अचानक से बहुत ख़ुश थे, आज सुबह प्रशांत। एक दम फ्रेश और स्वस्थ लग रहे थे। नाश्ते के बाद जो बातों का दौर चला तो दो घंटे में पिछले तीस साल खँगाल लिए गए। पुरानी बातें भी याद आई, स्मृतियाँ वैसे भी कहाँ क्षीण होतीं है ? देह युवा, बाल, वृद्ध होती रहती है, पर प्रेम अखंड अविरल कहीं अंतर में बहता

रहता हैं, एक न समाप्त होने वाली कहानी-सा यह जीवन कभी रीतता कहाँ है ? आज एक बार फिर से किशन सरोज, भारत भूषण जी मेरे साथ थे, प्रेम की ताल, तलैया और नदिया सब एक बार फिर लबालब भर उतरा रही थी। कुछ दिन पहले मैंने उन्हें बताया था कि किशन सरोज जी के गीतों का समग्र आ गया है, 'मैं तुम्हें गाता रहूँगा' नाम से, जिसे डॉ. प्रदीप जैन ने संपादित, समीक्षित किया है। तब मुझसे बहुत अधिक ख़ुश होकर उन्होंने आग्रह किया था, मेरे लिए भी एक प्रति मँगवा लेना। मैंने दो प्रतियों का आर्डर दिया था। दोनों प्रतियाँ आज मेरे सामने रखीं थीं। उनकी प्रति उन्हें सौंप कर मैंने कहा कि किशन सरोज के गीतों की करुण कथा आज संपूर्ण हो गई। यह सुन कर उदास पर कुछ-कुछ संतुष्ट से प्रशांत किसी गहरी भाव निधि में थोड़ी देर को डूब से गए।

मुझे क्या पता था, कि आज के दिन महाविनाशक राहुकाल बैठा है कुंडली मार कर, दुर्निवार शनि की क्रूर दृष्टि हम सब पर है और है नियति की क्रूर टेढ़ी भ्रकुटि का तीव्र संचालन भी !

बहुत देर तक बैठे हम लोग, बातें करते रहे। प्रशांत अपने जीवन की सारी धूप-छाँव और मेरे जीवन के लंबे उतार-चढ़ाव को बहुत सहजता से बाँचते रहे। गुनते रहे। वे लम्हे जो हमने कभी भरपूर जिये थे, उन दो घंटों की बतकही में पूरा पिछला जीवन एक बार फिर से हमने जी लिया। दर्द के कगार बिछलने से लगे और कोने-कोने में डर कर छुपी हुई बरसों की भावुक घड़ियाँ फिर से जीवंत हो उठीं। आत्मसंयम के बाँध टूटने-टूटने को हो चले, आकाश सी निर्मल उन आँखों में उज्ज्वल नेह का उत्ताल आवेग ठाठे मारने लगा। अनुभूतियाँ, प्रतिक्षाएँ और बैचैनियाँ फिर से युवा होने को थी हीं कि उनकी बेटी श्वेता ने आकर बताया, 'हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. राकेश पालीवाल का समय दो घंटे बाद है, दोपहर का भोजन करके निकलते हैं..' बातों का क्रम भंग होते ही संवेदना की टूटी किरचें अंतर में चुभने लगी, पर समय की बीती हुई पारी यहीं छोड़ कर अब चलना ही होगा।

'कर दिये लो आज गंगा में प्रवाहित सब तुम्हारे पत्र सारे चित्र तुम निश्चिंत रहना।'

अंतिम विदा की मर्म बेधी दृष्टि हृदय में कहीं भीतर जाकर ख़ंजर-सी चुभने गई। इसी के साथ शायद अलविदा के पल भी धीरे-धीरे बहुत पास आते जा रहे थे और बीतते लम्हों के साथ ही खिंचती जा रही थी समय की एक काली रेखा मेरे अंतरतम के पटल पर लगातार!

डॉ. राकेश ने जिस टी एम टी टेस्ट के लिए टेस्ट सेण्टर पर प्रशांत को भेजा, वह टेस्ट सेंटर मेरे घर से बिलकुल पास था, वे अनमने और भारी मन से ट्रेड मिल पर चलने को विवश हो गए। धीमे धीमे 'मैं चल नहीं पा रहा, मैं चल नहीं सकता।' यही कहते हुए, वे बेहोश हो गए या सदा सर्वदा के लिए इस दुनिया से उसी समय चले गए, यह तो ईश्वर ही जानता है। पर मुझे लगता है कि काश मैं होती उस पल। उनकी दशा देख कर उन्हें ट्रेड मिल से खींच ज़रूर लाती। पर उनकी पत्नी थीं, बेटी थी, सबको जाने क्या हुआ था। कोई विरोध नहीं कर रहा था। वे मुश्किल से एक मिनट भी नहीं चल पाए और उनकी साँस उखड़ गई। टेस्ट सेण्टर वालों के तो जैसे अब हाथ पैर ही फूल गए। डॉक्टर को फ़ोन किया, सबकी आपसी कुमन्त्रणा से उन्हें मृत घोषित न करके एक मेडिकल भाषा में झूठ गढ़ कर, लॉरी अस्पताल अफ़रातफ़री में अपनी एंबुलेंस से यह कह कर भेज दिया कि इन्हें स्टंट लगना है तुरंत और अपने सिर से बवाल हटा दिया। जबकि उनकी उसी क्षण मृत्यु हो चुकी थी और यह बात उन सभी लोगों को पता भी थी, डॉक्टर सहित ! पर सब कुछ छुपा लिया गया। यह सच है कि मेडिकल संगठन आज का सबसे बड़ा और कुख्यात संगठन है। हृदय हीन और नृशंस !

प्रशासनिक हस्तक्षेप से लॉरी की हड़ताल दूसरे दिन ख़त्म भी हो चुकी थी, पर होनी को कोई रोक नहीं सकता था।

मन बहुत भारी था। उनका बेटा क्षितिज भी आ चुका था। दोनों बच्चों ने मिल कर ए सी शव वाहन की तुरंत व्यवस्था की। वहाँ अस्पताल के बग़ल में मृत्यु से संबंधित समस्त सुविधाओं का खुला व्यवसाय था ही। मरने के बाद किसी को भी असुविधा न हो इसलिए !

फिर आया वह अंतिम विदा का दृश्य, जब दोनों बच्चे मिल कर उनके देह को बॉक्स में रख रहे थे, तब तक अस्त व्यस्त बेचारी माँ बेटी दोनों पत्थर की मूर्तियों सी बेजान हो चुकी थीं। उनकी देह का सारा रक्त मानों आँखों से बह कर पानी हो चुका था। चुपचाप वे उस शव वाहन में बैठ गईं। बहुत मायूस होकर आज एक जीवन यात्रा इतिहास बनने को तत्पर थी ! हिचकियों के बीच बरसती आँखों से वह अलविदा, हृदय में सदा के लिए एक बोझ की तरह अंकित हो चुकी थी। हम सब उन्हें उदास आँखों से जाते हुए देखते रहे। बड़ी दूर तक ! एक मनहूस घड़ी मेरे दरवाज़े से आज सदा को जुड़ गई।

गहरी अंतर्वेदना और बदहवासी के कारण घर लौटते समय ड्राइव करते हुए मेरे पति से गाड़ी का कई बार एक्सीडेंट होते होते बचा; क्योंकि मेरा बेटा वहीं रुक गया था। मृत्यु से संबंधित कुछ आवश्यक पेपर्स लेने। पता नहीं वह कैसा लम्हा था, जो हम सबको इस मोड़ तक ले आया।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

दस्तूर

विवेक द्विवेदी

विवेक द्विवेदी
राजीव-मार्ग, निराला-नगर
रीवा (मप्र) 486002
मोबाइल-9424770266, 6267240017
ईमेल- vivekdwivedi2015@gmail.com

अनुज बहुत बेचैन था। जब वह अपने दूर के रिश्तेदार अधिवक्ता रवि के पास पहुँचा तो उसके चेहरे पर बहुत तनाव था। चेहरा पसीना-पसीना था। ऐसा लग रहा था कि अनुज रवि प्रकाश के ऊपर उबलने वाला है। अनुज का चेहरा देखकर रवि प्रकाश ने नेक टाई को ढीली किया फिर धीरे से पूछे।

"क्या हुआ? इतने तनाव में क्यों हो?"

रवि कुछ बोला नहीं। खड़ा होकर वहीं पर गोल-गोल घूमने लगा था। रवि ने समझ लिया था कि काम नहीं हुआ और अनुज अपने ग़ुस्से को शांत कर रहा है। दरअसल अनुज रवि प्रकाश के रिश्ते में दामाद लगता था। बहन का दामाद का मतलब अपना ही दामाद था। तभी रवि प्रकाश की भांजी दीपिका भी आ गई थी। दीपिका के साथ छह साल का बेटा गोलू भी था। दीपिका ग़ुस्से में आकर बोली।

"मामा, अच्छा हुआ कि हम लोग अमेरिका में जाकर बस गए। भारत में तो बिना रिश्वत के काम हो ही नहीं सकता। आपकी सिफ़ारिश भी कोई काम नहीं आई।"

रवि जानता था कि जिस आसानी से ये बच्चे काम करवाना चाहते हैं, वह काम इतना आसान नहीं हैं। भले अनुज कहता हो कि मामा अमेरिका में आपको कोई कंपनी खोलना हो तो आप घर बैठे कंप्यूटर में कंपनी बनाकर पंजीयन कर लीजिए। सरकार को आपका सोशल सिक्योरिटी नंबर, ड्राइवर लाइसेंस आईडी के लिए चाहिए होता जैसे भारत में पैन कार्ड, आधार कार्ड और बैंक अकाउंट। किसी ऑफ़िस में आपको चक्कर लगाने की ज़रूरत नहीं है। यहाँ तो जन्म प्रमाण पत्र और मैरिज सर्टीफिकेट बनवाने के लिए महीनों चक्कर लगाओ और बाबू की मुँह माँगी रकम दो तभी काम संभव है।

लेकिन रवि को ग़ुस्सा इस बात का आ रहा था कि दोनों आकर ग़ुस्सा तो दिखा रहे हैं, पर बात क्या हुई, बता नहीं रहे हैं। जबकि सारे काग़ज़ बनवा दिए थे। सिफ़ारिश भी लगा दी थी। वह ख़ुद नगर निगम का वरिष्ठ पैनल अधिवक्ता है। नगर निगम के हित में काम करता है। फिर बात क्या हुई? रवि भी थोड़ा तैश में आ गया।

"तुम लोग पहेली मत बुझाओ। बताओ बात क्या है?"

अनुज फिर बैठ गया था। रवि की तरफ झुक गया। दीपिका भी उसके बगल से बैठ गई। अनुज चेहरे का पसीना रूमाल से पोंछता हुआ बोला था।

"मामा जी, यह देश तरक़्क़ी कैसे करेगा! यहाँ तो दस्तूर बन गया है किसी काम के लिए जब तक आप रिश्वत नहीं देंगे तो जायज़ काम भी नहीं होगा। यह हालत तब है जब भारत का नाम दुनिया में बहुत सम्मान से लिया जाने लगा है।" रवि प्रकाश इस बार चिड़चिड़ा से गए।

"बेटा अनुज, बात तो बताओ कि हुआ क्या?"

"जिस बाबू को आपने फ़ोन किया था। आपने ही कहा था कि उसे कुछ दे देना। मैं उसे बेटे के जन्म प्रमाण पत्र के लिए पाँच सौ रुपये और दीपिका और मेरी शादी के प्रमाण पत्र के लिए अलग से पाँच सौ रुपये दिए हैं। अब कहता है कि दोनों के लिए दस हज़ार चाहिए।"

इतना सुनते ही रवि का ग़ुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया था। उसने उसी वक़्त बाबू को फ़ोन घुमाया।

"राजा राम, तुम्हें जेल जाना है या नौकरी करना है? मेरे बेटी दामाद और नाती का प्रमाण पत्र क्यों नहीं बना। जबकि तुम्हें पता है अगले सोमवार को दोनों की टिकट बुक है।" राजा राम बहुत घिसा पिटा बाबू था। कई बार सस्पेंड हुआ। फिर आकर उसी रजिस्ट्रेशन की सीट पर जम जाता है। जबकि दो बार तो वह सीट दिलाने में रवि प्रकाश की ही भूमिका थी। राजा राम पीक दान में पान की पीक थूकते हुए गर्राई आवाज़ में बोला-

"साहब जी, आप चाहो तो नौकरी लेकर जेल भेज दो। मैं क्या करूँ। कल्याण अधिकारी के पास फाइल दस दिन से पड़ी है। आगे बढ़ा ही नहीं रहे हैं।" रवि प्रकाश ने फ़ोन काट दिया। फिर सीधे आयुक्त महोदय को फ़ोन लगा दिया। अपना पूरा ग़ुस्सा आयुक्त महोदय के ऊपर उतारा तो आयुक्त महोदय ने कहा। मैं अभी देखता हूँ। शाम तक सब हो जाएगा। दामाद जी को भेज दीजिये। मुझसे आकर मिल लें।

अनुज और दीपिका दोनों ख़ुश हो गए। रवि ने कहा कि तुम दोनों लंच के बाद चले जाना। अभी हमारे देश में बाबू का राज्य कायम है। यही वजह से कि विदेशी लोग यहाँ कोई उद्योग लगाने से बचते हैं। अनुज को इसका भी अनुभव था। उसके एक परिचित जो एन.आर.आई हैं। भारत में अपना उद्योग लाना चाहते हैं। तीन साल से देश का चक्कर लगा रहे हैं। फाइल कभी इस मंत्रालय में अटकी पड़ी रही तो कभी उस मंत्रालय में। अमेरिका में उनके सात उद्योग हैं। कई भारतीयों को रोज़गार दे रहे हैं। शाम को अनुज की उनसे यानी रंजन टंडन से लगभग रोज़ ही लक्ष्मी नारायण मंदिर में मुलाक़ात हो ही जाती। अनुज को अपनी कंपनी में लाने की बात करते। बीच-बीच में भारत के प्रति प्रेम दिखाते हुए कहते।

"अनुज, मेरी कोशिश है कि भारत में दस हज़ार करोड़ का निवेश करूँ। पर करूँ क्या? प्रधान मंत्री जी से भी मिला, लेकिन कोई फाइल क्लीयर ही नहीं हो रही थी। हर मंत्रालय में मोटी रकम देने के बाद अंत में प्रधानमंत्री जी के यहाँ फाइल पहुँची है।"

"सर, भारत महान् है। लोग आज भी बहुत सीधे हैं। लेकिन ग़रीबी से जूझ रहे हैं। मैं अपनी आई.टी कंपनी जब भी खोलूँगा, उसका एक कार्यालय दिल्ली या मुंबई में ही रखूँगा।"

"अनुज, तुमने अभी भारत में बिज़नेस किया नहीं। जब करोगे तो तुम्हें पता चल जाएगा। संत्री से लेकर मंत्री तक भ्रष्ट हैं। यदि तुम उस प्रथा में शामिल नहीं हो तो समझ लो, तुम कुछ नहीं कर सकते। हमारा देश है। आज भी प्यार है। लेकिन भ्रष्टाचार उनके सिस्टम में शामिल है।"

"राजनीतिक चंदा तो यहाँ भी लगता है सर?"

"समस्या यह नहीं। वह पूरे विश्व में है। लेकिन वहाँ पर भ्रष्टाचार दूसरे तरह का है। किसी दफ़्तर में जाकर काम करा लेना फिर बताना। यही वजह है कि लोग भारत जाने से कतराते हैं। पूँजीपति पैसा ख़र्च करने में पीछे नहीं हटता। लेकिन बार-बार चक्कर लगाना उसके लिए संभव नहीं होता। यूरोप में यह सिस्टम है ही नहीं।"

पहली बार अनुज ने ऐसा महसूस किया, उसके बेटे का वॉशिंगटन में एडमिशन हो तो गया था लेकिन जन्म प्रमाण पत्र एक साल से नहीं मिल पाया था। जब से दीपिका अमेरिका आई थी और आई.टी कंपनी ज्वाइन की थी, तब से कंपनी ने मैरिज सर्टिफिकेट माँग रही थी। उसी के लिए दोनों भारत आए थे। जब तक दोनों प्रमाण पत्र नहीं मिलेंगे, न तो दीपिका को नागरिकता मिलेगी और न ही कंपनी में नौकरी कर पाएगी। छह महीने पहले ही ऑनलाइन अप्लाई कर दिया था। दस दिन से अनुज और दीपिका नगर निगम का चक्कर लगा रहे थे।

दोनों वॉशिंगटन डी.सी में एक मकान ख़रीद रहे थे। मैरिज सर्टिफिकेट की वजह से नहीं ख़रीद पा रहे थे। इसी काम से दोनों भारत आए थे। यह दूसरी बात थी कि आने के पहले ही उन्हें सूचना मिली थी कि उनके ससुर यानी दीपिका के प्रोफ़ेसर पिता की मृत्यु हो गई थी। दोनों काम एक साथ हो जाएँगे। इसलिए दोनों ने एक साथ आने की योजना बनाई थी। रवि प्रकाश का फ़ोन काम कर गया। बाबू ने तत्काल फ़ोन लगाकर रवि को सूचना दी थी कि जल्दी भेज दीजिए। आयुक्त और कल्याण अधिकारी के हस्ताक्षर हो गए हैं। अनुज हँसा था। फिर बोला था।

"मामा जी, यदि आप आयुक्त महोदय को न कहते तो शायद इतनी फुर्ती से काम न होता। दोनों ख़ुशी-ख़ुशी से गए थे। बाबू ने दोनों प्रमाण पत्र थमाते हुए कहा था।

"मैं क्या करता। जो साहब लोग काम कर देते हैं, वह मैं आगे बढ़ा देता हूँ।" अनुज ख़ुश हो गया था। लेकिन प्रमाण पत्र देखते ही अनुज का माथा ठनका था। उसने अपना सर पीट लिया था। फिर गुस्से से बिफर पड़ा था।

"बाबू जी, आपने मुझे आकाश से गिरा कर खजूर में लटका दिया। जबकि मैंने आपसे क्या कहा था। आप भूल गए?"

"अब क्या हुआ?" बाबू नरेन्द्र भी इस बार गुस्से में दिखाई दिया।

"मैंने आपसे कहा था कि मुझे अंग्रेज़ी में दोनों प्रमाण पत्र चाहिए। हिन्दी में वहाँ नहीं चलेगा।" नरेन्द्र इतना सुनते ही माथा पकड़ लिया था। फिर मन ही मन कहा था। स्साले और सिफ़ारिश करा ले। मेरी माँग पूरी कर देता तो इतने चक्कर ही क्यों लगाता। लेकिन सँभल कर बोलते हुए कहा।

"आपने ज़रूर कहा था। लेकिन अब अंग्रेज़ी वाला बाबू तो आज छुट्टी में है। कल शनिवार हो जाएगा। परसों रविवार है। अब तो सोमवार तक आपको रुकना होगा।" यह सुनते ही अनुज और दीपिका के हाथ से तोते

ही उड़ गए। सोमवार को सुबह ही उन्हें मुंबई का प्लेन पकड़ना है। अनुज ने सारी बात रवि प्रकाश को बताई तो रवि प्रकाश ने फिर नरेन्द्र बाबू से फ़ोन पर बात की। नरेन्द्र ने फिर गर्राई आवाज़ में कहा-

"वकील साहब, आप तो जानते हैं कि यहाँ सारा काम हिन्दी में होता है। अंग्रेज़ी वाला बाबू दो दिन से छुट्टी में है। अब तो सोमवार के पहले काम नही बनेगा।"

"नरेन्द्र भाई।" इस बार रवि प्रकाश के तेवर नरम थे। क्योंकि उन्हें मालूम था कि यदि बाबू साहब पर हम फिर नाराज़ हुए तो कहीं अगले सोमवार तक भी काम न हो। अगर सोमवार को उसने ख़ुद ही छुट्टी ले ली तो मामला गड़बड़ हो जाएगा। जबकि अधिकारियों को पता है कि ऐसे प्रमाण पत्र अंग्रेज़ी में ही दिये जाते हैं। इसलिए रवि ने मीठी आवाज़ में बात को आगे बढ़ाया।

"नरेन्द्र भाई, जो माँगोगे, तुम्हें मिल जाएगा। मैं दूँगा। तुम तो शाम तक काम करो।"

"साहब जी, आप तो जानते हैं कि ऊपरवाले सूँघ लेते हैं। नाम मेरा बदनाम होता है। यदि ऊपरवालों का हिस्सा नहीं पहुँचता तो ठीकरा हम पर फोड़ते हैं।"

"नरेन्द्र भाई, मैं जानता हूँ कि यह प्रथा बहुत पुरानी है। फ़ोन अनुज को दो। मैं उसे समझाता हूँ कि तुम इस प्रथा में शामिल हो जाओ।"

अनुज ने फ़ोन से सारी बात सुन ली थी। उसे लगा था कि यदि प्लेन की टिकट कैंसल हुई तो कई हज़ार का नुकसान होगा। यहाँ तो मामला दस हज़ार का है। बिना दस्तूर पूरा किये, किसी की सिफारिश काम नहीं आएगी। अनुज ने धीरे से कहा-

"बाबू जी, मैं सब समझ गया हूँ। आप तो अपना फ़ोन नंबर दो। उसी में मैं दस हज़ार डाल देता हूँ। काम आपको करना है। रोज़-रोज़ की खिचखिच अब बर्दाश्त नहीं होती।"

नरेन्द्र प्रसन्न हो गया था। उसे लगा कि ऊँट पहाड़ के नीचे आ गया है। अब बिल्ली का खिसियाना भी बंद हो गया है। सारा माहौल साफ सुथरा हो गया है। सिफ़ारिश लग गई है

तो ऊपर देने का सवाल ही नहीं है। लेकिन नरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा- "पैसा खाते में नहीं लूँगा। आप नगद ला दीजिए। मैं प्रयास करता हूँ। दो घंटे बाद प्रमाण पत्र बनकर वकील साहब की मेज़ पर पहुँच जाएगा।"

अनुज इस सच को जानता था। बाबू बिना रिश्वत लिये काम तो करेगा नहीं। डिजिटल पेमेन्ट लेकर अपने गले में फाँसी नहीं लगाएगा। बाबू बहुत शातिर है। फिर उसे टंडन साहब की बात याद आई। उन्होंने कहा था। अनुज, लोग बहुत चतुर भी हैं। कैश ही लेंगे। इतना ही नहीं। अब तो डिमांड काग़ज़ के एक टुकड़े पर लिखकर दे देते हैं। आप जाँच कराते रहो। मुँह से बोलना बंद कर देते हैं। आप की ग़रज़ है तो दीजिए। वरना सालों चक्कर लगाइये।

दीपिका ने अपना पर्स खोला तो मात्र एक हज़ार ही थे। आजकल कोई पैसा लेकर चलता ही नहीं। जहाँ भी जाते हैं तो डिजिटल पेमेंट कर देते हैं। दोनों बाहर निकले। फिर पापा के घर आकर सारी बातें का उल्लेख किया तो चाचा जी ने ग़ुस्से से कहा कि जाओ पुलिस को रिपोर्ट करो। मज़ाक बना कर रखा है। यह सुनकर अनुज ने कहा कि चाचा जी, पुलिस को शिकायत करते महीनों लग जाएँगे। आप मुझे कैश का प्रबंध करा दीजिये। यह काम इतना ज़रूरी है कि दस हज़ार की जगह हमें लाखों का नुकसान हो जाएगा। हम यह सिस्टम बंद नहीं करा सकते।

चाचा जी भी समझते थे। उन्होंने तत्काल कैश का प्रबंध किया। अनुज पैसे लेकर अकेले ही नरेन्द्र बाबू के पास आया। नरेन्द्र को लगा कि कहीं कुछ चक्कर तो चला कर नहीं आया। फिर भी अनुज ने नोट निकाल कर मेज़ पर रखा तो नरेन्द्र ग़ुस्सा हो गया।

"इसे जेब में रखिए। काम हो जाए तो ले लेते हैं। तब तक आप इंतज़ार कीजिए।" अनुज इत्मीनान से कुर्सी पर टिककर बैठ गया। नरेन्द्र कोई फाइल लेकर बाहर निकला। फिर चारों तरफ घूम-घूम कर देखता रहा। उसे कोई संदिग्ध आदमी नहीं दिखा। अंदर आकर देखा कि अनुज कुर्सी पर बैठा मोबाइल देख रहा है। उसे लगा कि मेरी शंका ग़लत है। उसने धीरे से अनुज को बुलाकर कहा-

"आइये, तब तक चाय पी लेते हैं। आपका काम हो रहा है।" अनुज उसके पीछे हो लिया था। लेकिन उसे लगा कि मुझे पहली बार भारत को समझने में भूल हुई। हमारा देश तो महान् है। कम से कम रिश्वत लेकर काम तो हो जाता है। निश्चित रूप से यहाँ कुछ हो सकता है। अनुज को हँसी भी आ रही थी। पैसे में बहुत ताक़त होती है। इसके माध्यम से कुछ भी हो सकता है। लोग तो देश भी बेच सकते हैं। कुछ बेचते भी होंगे। नरेन्द्र उसे पीछे से घुमाकर बाहर ले गया। पलटकर पीछे देखता रहा। कोई संदिग्ध आदमी नहीं दिखा। चाय के ठेले के पहले उसने धीरे से कहा-"लाइए।"

आख़िर अनुज है भारत का ही है। इसी शहर का है। वह दस हज़ार वाले लिफ़ाफे को बढ़ाते हुए बोला "गिन लीजिए।"

नरेन्द्र ने लिफ़ाफे को रूमाल से पकड़ते हुए कोट की जेब में रख लिया। धीरे से बोला- बड़ा आदमी हेर-फेर छोटी-मोटी रकम में नहीं करता। फिर दोनों चाय पीने के लिए चले गए। चाय का पैसा नरेन्द्र ने दिया। अनुज ने मना किया तो नरेन्द्र ने कहा- 'आप हमारे मेहमान हैं। फिर वकील साहब के दामाद हैं। हमारे भी दामाद हुए। अमेरिका जाकर इतना तो लोगों को बताएँगे ही कि भारत में काम करके चाय भी पिलाई जाती है।' अनुज इतना सुनकर हँस दिया था। दोनों लौटने लगे तो नरेन्द्र ने कहा कि आप जाकर मेरी कुर्सी पर टिक जाइए। मैं तो कहता हूँ कि आप जाकर वकील साहब के

पास बैठिए। मैं प्रमाण पत्र लेकर वहीं आता हूँ। बहुत दिनों से वकील साहब की चाय नहीं मिली है।

अनुज कोई रिस्क नहीं लेना चाहता था। इसलिए उसने कहा कि -"मामा जी, कोर्ट में व्यस्त होंगे। इसलिए यहीं पर इंतज़ार कर लेता हूँ।"

"कोई बात नहीं। आप जाकर गेस्ट रूम में बैठिए। आधा घंटा और लगेगा।" अनुज ने इस बार कुछ नहीं कहा। जाकर गेस्ट रूम में बैठ गया। नरेन्द्र ने स्कूटर उठाया और कहीं चला गया। अनुज बार-बार कुर्सी पर देखता। कुर्सी खाली थी। अगल-बगल वालों से पूछता तो यही जवाब मिलता।

"दोपहर का समय है। आज लंच पर नहीं गए हैं। हो सकता है कि घर खाना खाने गए होंगे। आपका काम क्या है?" अनुज चुप हो जाता। उसने घड़ी की ओर देखा। शाम के चार बज रहे थे। दोपहर को कुछ खाया नहीं था। दीपिका बार-बार फ़ोन लगा रही थी। अनुज बार-बार उसे कह रहा था। तुम परेशान मत हो। बाबू पैसा पा गया। शाम तक तो प्रमाण पत्र मिल ही जाएगा। अनुज भी बात करते-करते फिर उसी ठेले पर गया। गरम-गरम समोसे बन रहे थे। उसने दो समोसे का आर्डर दिया तो ठेले वाले ने कहा- "चटनी भी लेंगे। या फिर छोले के साथ बना दूँ।" अनुज कुछ कहता, अचानक उसने देखा कि नरेन्द्र बाबू पान की दुकान पर पान खा रहा है। समोसे खाकर जल्दी से आया तो नरेन्द्र बाबू पान की दुकान से अपनी सीट पर आ गया है। अनुज को देखते ही उसने दोनों प्रमाण पत्र अपनी अलमारी से निकालते हुए कहा- "अनुज जी, वकील साहब का काम था। इसलिए मैंने हर काम छोड़कर किया। वरना आपको अगले हफ्ते भी चक्कर लगाना पड़ता। लीजिये और चैक कर लीजिये। अब तो कहीं कोई ...।"

अनुज ने दोनों प्रमाण पत्र लिये। फिर अवलोकन किया। दोनों प्रमाण पत्र सही थे। दोनों प्रमाण पत्र बता रहे थे कि ये बने हुए थे। नरेन्द्र बाबू के आलमारी में रखे थे। काश! मैंने पहले ही पैसे दे दिये होते तो आज दस दिन से यहाँ चक्कर न लगाना पड़ता। अनुज ने नरेन्द्र

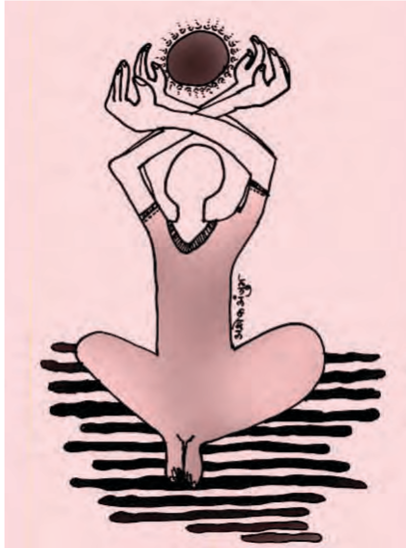

को पाँच सौ का एक नोट और देते हुए कहा-

"आप अपने बच्चों के लिए मिठाई लेते जाइए। आपका यह उपकार मैं कभी नहीं भूलूँगा।'

नरेन्द्र ने नोट थाम लिया था। फिर हँसते हुए कहा-"आप तो दामाद जी हैं। विदेशी मेहमान है। हम लोग तो रोज़ इस तरह का उपकार करते रहते हैं। सरकार ने हमें इसी के लिए ही तो नियुक्त किया है।"

अनुज के मुँह में ढेर सारा बलगम आ गया था। चाहता था कि पूरा बलगम नरेन्द्र के मुँह पर थूक दे। लेकिन ऐसा नहीं किया। बाहर आकर इधर-उधर देखे बिना मुख्य द्वार पर थूकते हुए अपने आप से बोला-" कल तक विदेशी लूटा करते थे और अब...।" अनुज इतना बोलकर रवि प्रकाश के आए फ़ोन को सुनने लगा था। अनुज के चेहरे का तनाव शायद और बढ़ गया था। अनुज मन ही मन सोचकर ख़ुश भी था कि चलो दस हज़ार ख़र्च करने के बाद काम तो हो गया। बाबू तो बीस हज़ार की माँग कर रहा था। दस में मान गया। अनुज ने अपनी पत्नी दीपिका को प्रमाण पत्र सौंपते हुए कहा था।

"दीपिका, हमारा देश आज भी महान् है। कल भी रहेगा। लेकिन ...।" अनुज बोलते-बोलते रुका था। दीपिका प्रमाण पत्र देखते हुए पूछ बैठी थी।

"लेकिन क्या?"

"जब हम जैसे लोग इतना चक्कर लगाते हैं तो उनका क्या होता होगा, जिनके पास जीने के लिए भी जुगाड़ से काम चलाना पड़ता है?"

दीपिका ने एक लंबी साँस ली थी। फिर प्रमाण पत्र अटैची में रखते हुए बोली थी।

"जहाँ खड़े होते हैं, उससे और पीछे चले जाते हैं। ग़रीबी रेखा इसीलिए आज भी खिंची हुई है। शायद वह अमिट हो गई है। पर छोड़ो। जिन्हें सोचना चाहिए, इस दस्तूर के जनक वे स्वंय हैं। फिर एक बाबू पर ग़ुस्सा निकालकर भी क्या होगा? इस बात का ज़िक्र हम बाहर कर भी नहीं सकते। क्योंकि नाक तो अपनी कटनी है। इसलिए ...।"

आँगन के बारन्डे पर टँगा तोते का पिंजड़ा अचानक हिलने लगा था। दीपिका ने देखा कि माँ तोते को हरी मिर्च दे रही है। तोता बोल रहा है। अम्मा दूध रोटी। बोलो सीताराम। दीदी...दीदी...। तोता नया था। इतना ही बोलना सीख पाया था। फिर भी वही बोल पाता जितना सिखाया जाता। तोता भी ज़्यादा सीखना नहीं चाहता। ऐसा लगा कि जैसे कहना चाह रहा हो। जनता भी रोटी साग के आगे कुछ बोलना नहीं चाहती। बोलना सीख भी जाए, तो सुनने वाला कौन है? तोता फिर रटने लगा था। अम्मा दूध रोटी। बोलो सीताराम। अनुज सुनकर हँसने लगा था। फिर दीपिका के कंधे पर हाथ धरते हुए बोला- "अम्मा उसे मिर्ची दे रही है। तुम जाकर दूध रोटी दे दो। भूखा होगा।"

"अरे नहीं यार। उसकी आदत है बोलने की। पहले वाला इससे ज़्यादा बोलता था। पिजड़े से एक दिन उड़ गया था। पता चला कि जैसे ही छत पर पहुँचा, बाज़ आया और उसे उठा ले गया। इसलिए अम्मा अब पिंजड़ा नहीं खोलती।"

शाम हो चुकी थी। दो दिन बाद निकलना था। इसलिए दीपिका को अपने दोस्तों से मिलने जाना था। वह रितिका के यहाँ जाने के लिए तैयार होने लगी थी। अनुज ग़मगीन हो गया था। उसकी आँखों के सामने बार-बार बाबू नरेन्द्र का चेहरा आता और चला जाता। अनुज गुमसुम उस चेहरे को देखता सोफ़े पर पसर गया था।

000

सूरज की तरह नहीं ढलते पिता...

विनीता राहुरीकर

विनीता राहुरीकर
श्री गोल्डन सिटी 28, फेस-2, होशंगाबाद रोड़, जाटखेड़ी, भोपाल, मध्यप्रदेश-462043
मोबाइल- 9826044741
ईमेल- vinitarahurikar@gmail.com

मैं पोते को गोद में लिए हुए गैलरी में खड़ा होकर चिड़िया दिखा कर बहला रहा था। हालाँकि आजकल आकाश में उड़ता हुआ हवाई जहाज़ भले दिख जाए लेकिन चिड़िया दिखाई देना दुर्लभ हो गया है। तब भी इस घर के पीछे पेड़ों का लंबा सा झुरमुट है जिनमें बहुत से पंछियों के घोंसले हैं और दिन भर में कई बार इक्का-दुक्का चिड़िया चहकती हुई पेड़ों की फुनगियों पर फुदकती दिखाई दे जाती है। मैं पेड़ों की फुनगियों पर दृष्टि गड़ाए देखता रहता, जैसे ही कोई पंछी उड़ता मैं तुरंत ईशान को दिखाता "वह देखो चिड़िया कैसे उड़ी।" और ईशान ताली बजाकर हँसता "फुर्र..."

मकान के पीछे विश्वविद्यालय की बड़ी सी ख़ाली ज़मीन थी जिसमें तरह-तरह के पेड़ लगे होने से सुबह शाम चिड़ियों का अच्छा-ख़ासा कलरव लगा रहता था। सुबह-शाम दो साल के अपने पोते ईशान को बहलाने के लिए मैं उसे लेकर गैलरी में खड़ा हो जाता और चिड़िया दिखाया करता, ठीक वैसे ही जैसे कभी मेरे पिताजी मेरे बेटे विशाल को बहलाया करते थे। अचानक ही जैसे मेरी आँखों के सामने तीस बरस का अंतराल सिमट गया और मुझे लगा मेरी जगह मेरे पिताजी खड़े हैं विशाल को गोद में लेकर चिड़िया दिखा कर बहलाते हुए। समय के पंख कितने विशाल होते हैं एक ही क्षण में जैसे तीस वर्षों को नाप लिया उसने।

"बाबा... बाबा" ईशान अचानक नीचे देखकर किलकारी मार हँसने लगा।

मैंने नीचे देखा, पीछे के आँगन में पिताजी तार पर अपने कपड़े फैलाने की चेष्टा कर रहे थे। तार ऊँचा था और उम्र के हिसाब से पिताजी की कमर अब झुकने लगी थी। वे तन कर खड़े होने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे लेकिन हो नहीं पा रहे थे। गर्दन भी झुकने लगी थी। कुर्ते का कोना पकड़ कर उन्होंने उसे तार पर उछाल दिया। कुर्ता तार पर टँग गया। वह अब उसके दोनों कोनों को पकड़कर उसे फैलाने का प्रयत्न करने लगे। मुझे निर्मला पर क्रोध आया क्यों नहीं उसने पिताजी के कपड़े लेकर तार पर फैला दिए।

पजामा फैलाने के बाद उन्होंने कंधे से गीली बनियान उठाई। मैं अब और नहीं खड़ा नहीं रह सका। ईशान को लेकर नीचे आया। निर्मला और बहू आन्या नाश्ते की तैयारी कर रही थी। मैंने ईशान को आन्या की गोद में दिया और निर्मला से कहा-

"पिताजी से कपड़े तार पर फैलाये नहीं जा रहे तुमने क्यों नहीं फैला दिए?"

"माँ ने तो बहुत कहा था पिताजी लेकिन दादाजी मानते ही नहीं। कपड़े भी ख़ुद ही धोते हैं।" उत्तर आन्या ने दिया।

मैं पीछे के आँगन में गया। पिताजी जैसे तैसे बनियान भी तार पर डाल चुके थे। मुँह पोंछने का नैपकिन उनसे सुखाया नहीं जा रहा था।

"लाइए मुझे दीजिए मैं सुखा देता हूँ।" मैंने हाथ आगे बढ़ाया।

"मैं डाल दूँगा रोज़ ही डालता हूँ, आज क्यों नहीं सुखा पाऊँगा?" उन्होंने नैपकिन को कसकर पकड़ लिया।

"अब आज मैं यहाँ हूँ तो डाल देता हूँ तार पर।" मैंने उन्हें इस तरह से कहा कि उनके अहम् को ठेस न लगे। उन्होंने भी मेरी ओर ऐसी दृष्टि से देखते हुए मुझे नैपकिन थमाया मानों मुझे जता देना चाहते हो कि मैं तो सुखा सकता हूँ लेकिन तुम ज़िद कर रहे हो इसलिए दे रहा हूँ वरना मुझे कोई दिक्कत नहीं है।

मैंने कुर्ते और पजामे की सलवटें हटाकर ठीक से फैला दिया।

"नैपकिन को ऐसे नहीं ठीक से फैलाओ ऐसे आड़ा करके।" उन्होंने हाथ से इशारा करते हुए बताया।

"दिनभर अच्छी धूप रहती है सूख जाएगा ऐसे भी। हवा भी चल रही है आज तो।" मैंने कहा।

"इसलिए मैं ख़ुद ही डाल रहा था तुम सुनते नहीं हो मेरी। मैं रोज़ आड़ा ही फैलाता हूँ।" वे ज़िद से बोले।

जाने क्यों मुझे अचानक ही ईशान की याद आ गई। मैंने नैपकिन को उनके कहे अनुसार फैला दिया। उनके चेहरे पर आश्वस्ति की और अपनी बात मानी जाने की एक संतुष्टि भरी मुस्कराहट आ गई।

"ऐसे ही मैं, ऐसे ही सुखाना चाहिए, ऐसे में सब तरफ से अच्छी धूप लग जाती है।" वे बोले।

"जी ठीक है अब से मैं भी ध्यान ररखूँगा।" मैंने कहा तो वह प्रसन्न हो गए।

"आइए।" मैंने उनका हाथ पकड़ने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया, उन्होंने क्षण भर मेरी तरफ देखा फिर दोनों हाथ पीछे कमर पर बाँधकर आगे बढ़ गए। आजकल चलते हुए उन्हें अपनी कमर को सहारा देने के लिए दोनों हाथ पीछे बाँधने पड़ते थे।

"कपड़े बाबू धो दिया करेगा आपके। आप क्यों धोते हैं? अब ठंडे पानी में इतनी देर हाथ मत रखा करिए।" मैंने उनके पीछे चलते हुए कहा।

"सारी ज़िंदगी मैंने अपने कपड़े ख़ुद ही धोए हैं।" वे बोले।

"तब की बात अलग थी।" मैंने कहा।

"क्यों अब क्या हो गया?" वे तुनक कर बोले।

मैं चुप रह गया। बढ़ती उम्र की बात कह कर मैं उनको बुढ़ापे का एहसास करा कर आहत नहीं करना चाहता था।

निर्मला ने टेबल पर नाश्ता लगा दिया था। आज आलू के पराँठे बने थे। पिताजी के लिए दलिया और बहुत कम घी में सिंका पराँठा अलग से था। उन्होंने दलिये की कटोरी को बड़ी खीज के साथ देखा। आन्या ईशान को भी दलिया और आलू पराँठा खिला रही थी मगर उसे बस मक्खन की डली ही चाहिए थी। आन्या ने उसे बहुत समझाया, बहलाने का प्रयत्न किया; लेकिन दो वर्षीय ईशान को मक्खन की डली ही चाहिए थी, वह भी अपने हाथ से ही खानी थी। आख़िर उसने प्लेट में हाथ मार कर मक्खन उठा लिया और किलकारी मारते हुए अपनी उँगलियाँ चाटने लगा। उसके मुँह पर मक्खन लिपट गया था। आन्या रूमाल से उसका मुँह साफ करने लगी, लेकिन ईशान अपनी करतूत पर ख़ूब खिलखिला रहा था। मैं और निर्मला अपने पोते को देख-देख कर निहाल हो रहे थे, वैसे ही जैसे पिताजी और माँ विशाल को देखकर होते थे। और मैं उन दोनों पर खीज जाता था कि आप विशाल को बिगाड़ देंगे वैसे ही जैसे विशाल हम पर नाराज़ हो जाता है ईशान की हर ज़िद मानने पर कि आप उसे बिगाड़ देंगे। मैं ठीक पिताजी के वाक्य दोहरा देता हूँ "तू बिगड़ा क्या, तो निश्चिंत रहो वह भी नहीं बिगड़ेगा।"

तभी पिताजी ने निर्मला से मक्खन माँगा।

"पिताजी आपका बीपी हाई रहता है, डॉक्टर ने घी मक्खन खाने को मना किया है।" निर्मला ने कहा।

"सूखा पराँठा नहीं खाया जाता मुझसे।" पिताजी बोले।

"आप दही ले लीजिए" निर्मला ने दही की कटोरी आगे बढ़ाई। उन्होंने गर्दन हिला कर मना कर दिया।

मैंने दलिये का डोंगा उठाया तो उन्होंने हाथ से उसे परे कर दिया "मक्खन दो" उन्होंने ज़िद की।

निर्मला ने मेरी तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा मैंने आँख के इशारे से उसे कहा कि थोड़ा-सा दे दो। उसने एक छोटा टुकड़ा मक्खन का उनकी प्लेट में रख दिया। वह परम संतुष्टि से पराँठा खाने लगे। बीच-बीच में वे रुमाल से अपना मुँह साफ करते जाते। जाने क्यों मैंने एक बार वात्सल्य से उन्हें देखा और एक बार ईशान को।

नाश्ता ख़त्म होने के बाद पिताजी अपने कमरे में चले गए। वह सुबह जल्दी उठते हैं तो नाश्ते के बाद ज़रा देर आराम करते हैं। मैं ईशान को टीवी पर कार्टून लगाकर ड्राइंग रूम में लेकर बैठ गया।

दूसरे दिन मैंने फिर देखा पिताजी तार पर कपड़े नहीं फैला पा रहे थे। मैंने नीचे जाकर कपड़े फैला दिए और बाबू से कह दिया की तार को छह इंच नीचे कर दे ताकि पिताजी को दिक्कत न हो और उनका आत्मविश्वास भी बना रहे कि वह अभी भी तार पर पहले की तरह कपड़े फैला सकते हैं।

शाम को मैं पिताजी और ईशान को लेकर बाहर टहलने निकला। निकलने के पहले मैंने पिताजी से कहा कि "छड़ी ले लीजिए चलने में सहारा रहेगा। आगे सड़क बड़ी उबड़-खाबड़ है।"

"तुम ले लो छड़ी अपने लिए मुझे सहारे की ज़रूरत नहीं है। अभी मैं चल सकता हूँ आराम से।" वे थोड़ा तुनक गए छड़ी की बात पर। आजकल वह हर बात पर तुनक जाते हैं चाहे मक्खन की बात हो, कपड़े सुखाने की हो या छड़ी की।

आगे सड़क पर गड्ढों को भरने का काम चल रहा था। थोड़ी सड़क दोबारा भी बन रही थी तो पत्थर गिट्टी बिखरी पड़ी रहती थी। कहीं पाँव के नीचे पत्थर आ जाने से अचानक संतुलन बिगड़ जाए और वह डगमगा न जाए इसलिए छड़ी लेने को कहा था ताकि वह ऐसी स्थिति में ख़ुद को सँभाल पाए। लेकिन उन्हें तो छड़ी चाहिए ही नहीं थी। मैंने धीरे से बाबू को इशारा कर दिया साथ चलने का। सड़क पर आते ही ईशान हाथ छुड़ाकर अलग चलने की ज़िद करने लगा। हाथ पकड़ लेने पर वह पैर पटक कर रोने लगता कि उसे छोड़ दूँ।

"दादू का हाथ पकड़ कर चलते हैं बेटा नहीं तो गिर जाओगे और बाऊ हो जाएगा (चोट लग जाएगी)" मैंने उसे समझाया।

"नई-नई..." उसने मेरे हाथ झटक दिए और प्रसन्नता से किलकारी मारते हुए सड़क पर चलने लग गया, दौड़ने लगा। मैं उसके आसपास चलने लगा कि यदि वह गिरने को हुआ तो उसे थाम सकूँ।

"विशाल भी ऐसे ही करता था मैं उसे पकड़ने जाता तो वह हाथ छुड़ाकर अकेले चलने की ज़िद करता जैसे बहुत बड़ा हो गया हो।" पिताजी ईशान की ज़िद देखकर मुस्कराते हुए बोले।

मेरा आधा ध्यान ईशान पर था और आधा पिताजी पर। दोनों ही अपनी ज़िद के चलते मुझे तनाव दे रहे थे। ईशान कभी दोनों हाथ फैला देता, कभी ताली बजाने लगता,

डगमगाते क़दमों को संतुलित करने के लिए उसके हाथों की भंगिमा भी लगातार बदल रही थी। पिताजी के हाथ लगातार पीठ पर ही बँधे हुए थे। कभी-कभी अपने होंठों पर आई नमी को वे रुमाल से पोंछते और दुबारा हाथ पीठ पर बाँध लेते। अचानक पैर के नीचे पत्थर आने के कारण वे डगमगाए। मैंने और बाबू ने उन्हें थाम लिया। क्षण भर स्थिर रहकर उन्होंने हम दोनों के हाथ हटाए और पीठ पर हाथ बाँधकर चलने लगे।

थोड़ी ही देर बाद सामने वाले पेड़ से एक चिड़िया उड़ी। ईशान ने उसे देखने के लिए मुँह ऊपर उठाया और गड्ढे में पैर पड़ जाने के कारण सिर के बल गिरने को हुआ। मैं पीछे ही था उसे थाम लिया।

"कहा था न दादू का हाथ पकड़ कर चलो नहीं तो गिर जाओगे।" मैंने उसका हाथ थाम लिया। इस बार वह चुपचाप मेरा हाथ पकड़ कर साथ चलने लगा। हम यूनिवर्सिटी कैंपस में बच्चों के लिए बने पार्क में पहुँचे। बाबू ईशान को पार्क में झूला झूलाने लगा और मैं पिताजी के पास एक बेंच पर बैठ गया। मैं इसी यूनिवर्सिटी में बॉटनी का प्रोफ़ेसर था और छह माह पहले ही रिटायर हुआ। विशाल फिज़िक्स का प्रोफ़ेसर है और एक कठिन टॉपिक पर पीएॅच.डी करने के कारण आजकल उसे समय कम ही मिल पाता है परिवार के लिए, लेकिन मैं पूरी निश्चिंतता से पिताजी की वृद्धावस्था की देखभाल और ईशान की बाल्यावस्था का आनंद लेता रहता हूँ इन दिनों।

पैदल चलकर आने के कारण पिताजी शायद थक गए थे। उनका मुँह हल्का-सा खुला हुआ था सम्भवत: वह मुँह से साँस ले रहे थे। होठों के किनारों पर हल्की सी लार बह आई थी, गाल लटक आए थे, गले पर और चेहरे पर ढेर सारी झुर्रियाँ थीं, आँखें धुँधली सी लग रही थीं, जाँघों पर रखी हथेलियाँ और उँगलियाँ गाँठदार हो गई थीं। कितने बूढ़े और अशक्त लग रहे थे पिताजी। मुझे याद आए वह पिता जो मुझे कंधे पर बिठाकर बस पकड़ने दौड़े जाते थे, जो बाज़ार से वापस आते हुए मुझे कंधे पर बिठाकर सामान से भरे थैले उठाकर आराम से सीढ़ियाँ चढ़ जाते थे। दादा बनने के बाद भी वह इतने तंदुरुस्त थे कि जिन्हें सब विशाल का ही पिता समझते थे। कब वे इतने बूढ़े और अशक्त हो गए। मेरे दिल में अजीब-सा कुछ ऐंठने लगा, गले में कुछ अटक गया। इतने बरस नौकरी की भाग-दौड़ में कभी मेरा ध्यान ही नहीं गया कि पिता की आयु कितनी बढ़ रही है। अचानक मेरा मन किया कि उनके कंधे पर सिर रख दूँ और वह मेरा सिर थपथपा दें; लेकिन मैं उस यूनिवर्सिटी के कैंपस में बैठा था जहाँ मैं प्रोफ़ेसर था। मैंने अपना ध्यान ईशान पर लगाने का प्रयत्न किया। आँखें तो उस पर टिक गई लेकिन मन पिताजी पर ही लगा रहा। जाने क्यों लग रहा था कि मैं फिर एक बार बच्चा बन जाऊँ और पिताजी मुझे कंधे पर बिठाकर बाज़ार से घर ले जाएँ, गोद में उठाकर मेरा बस्ता अपने कंधे पर टाँग कर स्कूल पहुँचाने जाएँ। जिस पिता ने मुझे उँगली थाम कर चलना सिखाया, उस पिता के कदमों को डगमगाते देखना मन को उदास कर देता है। जिस पिता ने ज़मीन पर सीधा खड़ा होना सिखाया, उस पिता की कमर को झुकते हुए देखना हताश कर देता है, जिन कंधों पर बैठकर मैंने दुनिया देखी उन्हीं कंधों को अशक्त होते हुए देखना दुखद है। समय क्यों पंख लगा कर उड़ जाता है। समय क्यों पिता को बूढ़ा और अशक्त कर देता है। पिता सदा मज़बूत, दृढ़ और स्वस्थ क्यों नहीं रहते। मेरी आँखें भीग गईं।

पिताजी रूमाल से होठों के किनारे पोंछ रहे थे, मैंने मुँह दूसरी ओर फेर कर शर्ट की बाँह से आँखें पोंछ लीं।

रात टीवी देखते हुए मैं सोफ़े पर पिताजी के पास ही बैठा। आजकल उनके आसपास रहना ही अच्छा लगता था मुझे। अपने बचपन और किशोरावस्था के वे दिन याद आ जाते जब पिताजी जवान और हट्टे-कट्टे थे। मैंने घड़ी देखने के बहाने एक बार पिताजी की ओर देखा वे पनीली, धुँधलाई आँखों से टीवी देख रहे थे। ईशान पास ही खेल रहा था। आन्या उसके और पिताजी के लिए दूध ले आई। पिताजी को दूध का गिलास थमा कर वह ईशान को बहला कर दूध पिलाने लगी। ईशान कभी हँसने लगता, कभी कुछ बोलने लगता और उसके होंठों के किनारों से दूध बाहर आ जाता। आन्या उसे कुछ भी खिलाते-पिलाते हुए सतत एक रूमाल हाथ में रखती और उसका मुँह पोंछती जाती।

पिताजी भी एक घूँट दूध पीते और मुँह रूमाल से साफ करते जाते। उनके जबड़े अब पहले जैसे मज़बूत नहीं रह गए थे। होंठ लटकने लगे थे। मैं ईशान के होठों से बहते दूध को देखकर एक वात्सल्य पूर्ण अनिर्वचनीय आनंद से भर जाता और उसी समय पिताजी की ठोड़ी पर बह आई दूध की बूँदें मेरे मन को अव्यक्त वेदना से, एक अनजान भय से भर देतीं। आजकल मैं आनंद और वेदना, भय की इन्हीं दो विपरीत मन:स्थितियों के बीच झूलता रहता था।

रात में निर्मला तो सो गई लेकिन मैं देर तक जागता रहा। जाने क्यों नींद नहीं आ रही थी। मैं पिताजी के बारे में ही सोच रहा था। जब तक पढ़ने में व्यस्त रहा तब तक कभी यह ध्यान ही नहीं गया कि पिताजी कितने बूढ़े हो गए हैं। मुझे तो पिता यह शब्द ही मज़बूती, ताक़त, दृढ़ता का पर्याय लगता। कभी सोचा ही नहीं की पिता भी बूढ़े और कमज़ोर हो सकते हैं। जैसे पिता को अपना रिटायर्ड बेटा भी बच्चा ही लगता है वैसे ही बेटा चाहे रिटायर भी हो जाए तब भी पिता उसे वही पिता लगते हैं जो उसे कंधे पर बिठाकर घर लौटते थे। अभी उसी दिन की तो बात है ईशान को लेकर मुझे डाँट रहे थे कि "तुम्हें बच्चों को ठीक से बहलाना भी नहीं आता। बच्चों को सँभालने के लिए उनके मनोविज्ञान को समझना पड़ता है। तुम तो कुछ समझते ही नहीं हो, लाओ उसे मुझे दो मैं बहलाता हूँ उसे।" और सच में ईशान उनकी गोद में जाते ही चुप हो गया था। बेटे से अधिक पोता प्यारा होता है और पोते से अधिक उसका बेटा।

मैं उठकर यूँ ही पिताजी के कमरे तक गया। जाने क्यों बस उन्हें देखने का मन हो आया। कमरे में मध्यम रोशनी थी। पिताजी सो रहे थे और विशाल उनके पैर दबा रहा था। चाहे कितना भी व्यस्त क्यों न हो, बहुत

बचपन से विशाल की आदत है सोने से पहले दस-पंद्रह मिनट अपने बाबा के पास बैठकर उनके पैर ज़रूर दबाता है। मैं मन में एक आनंद मिश्रित संतुष्ट अनुभूति लेकर अपने कमरे में वापस आ गया। अपने दिए संस्कार सार्थक लगे मुझे।

कुछ दिनों बाद एक दिन शाम को मैं ईशान को लेकर गैलरी में खड़ा था। शाम को सभी पँछी घर लौट आते हैं तो पेड़ों पर और आसमान में पंछियों की अच्छी चहल-पहल रहती है। ईशान पंछियों को देख-देख कर ख़ूब ख़ुश हो रहा था। अचानक मेरा ध्यान नीचे चला गया। पिछले आँगन में पिताजी तार पर से अपने सूखे कपड़े निकाल रहे थे। तार चार इंच और नीचे करवा दिया था मैंने; लेकिन अब वह भी पिताजी के लिए ऊँचा पड़ने लगा था।

मेरे सामने पश्चिम दिशा में आसमान में सूरज डूब रहा था। ढलते सूरज की ललछौहीं कालिमा में पिताजी भी ढलते से लग रहे थे। दिन के अवसान काल में सूरज ढलने लगता है और जीवन के अवसान काल में पिता ढल रहे थे। सूरज तो आज ढल कर कल पुन: उग आएगा, लेकिन पिता सूरज की तरह नहीं ढलते। वे तो एक दिन ढल ही जाते हैं। मैं देख रहा था असहाय-सा अपने पिता को ढलते हुए और कुछ नहीं कर पा रहा था। मैंने ईशान को कसकर छाती से लगा लिया। मेरी आँखें भर आईं और आँसुओं की नमी के बीच से ढलते पिता की मूरत और धुँधली हो आई।

क्यों ढल जाते हैं पिता, हमेशा क्यों नहीं रहते। किंतु यही प्रकृति का नियम है नए के स्वागत के लिए पुराने को ढल जाना होता है। किसी दिन पिताजी ने अपने पिता को ढलते देखा होगा, एक दिन विशाल अपने पोते को गोद में लेकर मुझे ढलते हुए देखेगा। मैं सीढ़ियाँ उतर कर नीचे चला आया। तार से पिताजी के कपड़े निकाल दिए और फिर ईशान को गोद में लेकर उनके पास बैठ गया। अपना सिर मैंने बहुत धीरे से उनके कँधों पर रख दिया। वे मुस्कराते हुए काँपते हाथों से मेरा सिर थपथपाने लगे।

000

लघुकथा

साहस

वीरेंद्र बहादुर सिंह

दिल्ली में नौकरी के दौरान बस से ही आना-जाना होता था। उस दिन शाम को आफ़िस से निकल कर जब मैं स्टैंड पर पहुँचा तो काफी देर तक कोई बस नहीं आई। जब बस आई तो उसमें काफी भीड़ थी। महानगरों में बस या मेट्रो से यात्रा करने वालों के लिए बस या मेट्रो में भीड़ होना आम बात है। मैं भी उस भीड़ में घुस गया।

संयोग से दो स्टॉप में बस ख़ाली हो गई, क्योंकि उसमें ज़्यादातर स्कूली बच्चे थे। बस ख़ाली हुई तो मैंने देखा एक 22-24 साल का किन्नर बस में पीछे की ओर से ताली बजाते हुए यात्रियों के सामने हाथ फैला कर पैसे माँगते हुए आगे की ओर बढ़ रहा था। जो उसे दस का नोट पकड़ा देता, उसे तो ख़ूब प्यार से दुआएँ देता और जो मना कर देता, उसे इस तरह ज़लील करता कि उसका सिर शर्म से झुक जाता।

मैं बस में आगे बैठा था। थोड़ी देर बाद मेरे पास आ कर उसने मेरे सामने भी हाथ फैला दिया। संयोग से उस दिन मेरी जेब में एक भी पैसा नहीं था। क्योंकि उस दिन मैं पर्स ले जाना भूल गया था। टिकट की चिंता नहीं थी। मैं ने तीन महीने का पास बनवा लिया था। जब उसने मेरे सामने हाथ फैलाया तो मैंने किन्नर की ओर देखा। मेरे मुँह से एकदम से निकल गया, "बेटी, आज मैं पर्स लाना भूल गया।" यह सुन कर पता नहीं कब से रुका उसके आँसुओं का ग़ुबार फट पड़ा। उसने रोते हुए कहा, "आपकी तरह मेरे बाप ने भी मुझे 'बेटी' कहने का साहस किया होता तो आज मुझे यह दिन न देखना पड़ता।"

000

वीरेंद्र बहादुर सिंह, जेड-436ए, सेक्टर -12, नोएडा-201301 (उ.प्र.)
मोबाइल- 8368681336
ईमेल- virendra4mk@gmail.com

यूँ ही चलते चलते

छाया श्रीवास्तव

फ़ोन की घंटी सुनते ही अम्मा दौड़ कर आईं और रिसीवर उठा लिया।

'अम्मा, जुड़वाँ बेटियाँ हुई हैं।' उधर से उनके बेटे अविनाश की मरियल सी आवाज़ आई। अम्मा को तो मानों साँप सूँघ गया।

'हाय राम' फ़ोन का रिसीवर हाथ से गिर गया।

'हैलो-हैलो...क्या हुआ अम्मा ?' अविनाश पहले से ही डरा हुआ था। कुछ पल होश में आने पर उन्होंने जवाब दिया।

'ठीक है, ठीक है, ईश्वर की जैसी इच्छा।' फिर लंबी साँस लेते हुए-

'मैं भी आ जाती, पर अकेली हूँ, कैसे आऊँ!'

'नहीं नहीं तुम घर पर ही रहो, हम जल्दी ही डिस्चार्ज लेकर आ जाएँगे।' अविनाश को कुछ राहत हुई कि अम्मा ने कोई बड़ा हंगामा नहीं किया। पर घर पर तो घोर मातम छा गया। माथा पकड़ धप्प से फैल गईं।

'एक तो पहले ही एक भवानी थी, ऊपर से दो लौंडियाँ और।' सारा ग़ुस्सा छोटी सी मीना पर ही जैसे उतार रही हों। वह कोने में धीमे-धीमे सिसकी लिए जा रही थी। छोटी सी उम्र में शायद उसे यह अहसास हो गया था कि लड़कियाँ होना बुरा होता है।

'मैं तो पहले ही जानती थी कि विमला बेटा न पैदा कर पाएगी।' उनका विलाप जारी था।

'अब सँभालो तीन-तीन लड़कियों को।' कोई उन्हें समझाता कि लड़का होना औरत के हाथ में नहीं होता, यह तो आदमी के जीन्स के कारण ही हो सकता है। अम्मा साइंस तो क्या ही जानतीं, वह तो निहायत निरक्षर थीं। बड़ी हिम्मत जुटा पाँच साल की मीना ने पूछ ही लिया, 'क्या हुआ दादी?' दादी और भड़क गईं, ' क्या हुआ ? तुम्हारी मम्मी दो और लौंडियों को अस्पताल से ले कर आ रही हैं।'

'हाय राम' मीना के मुँह से भी यही शब्द निकले। उसे धकेलती दादी बड़बड़ाती चौके में घुस गईं। पहले यही चलन था कि आसानी से जो नाम लिया जा सके वे ही बच्चों के रख दिए जाते थे – पप्पू, गुड्डी आदि आदि। आजकल के जैसे नहीं कि नाम पुकारने में होंठ, ज़ुबान लड़खड़ा जाए। तब नामों का क्या अर्थ होता था, इससे कोई मतलब नहीं होता था। तो नई बच्चियों का नाम भी मीना से राइम करते नीना और रीमा हो गया। मीना, नीना और मैं रीना ख़रामा-ख़रामा अपने-अपने भाग्य लिए बड़ी होने लगीं। घर में तो दादी को फ़ॉलो करते हम बड़ी, मँझली और छोटी हो गए।

हम सब दिल्ली के पटेल नगर में किराए के मकान में रहते थे, वैसे भी हम हमेशा किराए के घर में ही रहते रहे। पापा ने अल्पताओं के बीच भी हम लोगों की पढ़ाई पर कोई कसर नहीं छोड़ी। बस बड़ी मीना पर ही सारे प्रतिबंध थे, यहाँ तक की एक बार दसवीं में बेचारी रह क्या गई, पापा ने उसे प्राइवेट पढ़ने पर मजबूर कर दिया। फिर भी वह बिना कॉलेज गए ही एम ए तक पढ़ ली। माँ की तो हम तीनों उनकी अपनी जाई थीं, सब पर बराबर का प्यार लुटातीं। पर हाँ, दादी हम तीनों से कुढ़ी ही रहतीं। मुझे तो पापा हमेशा चिढ़ाते–तू तो 'हाय राम' वाली है। एक दिन दादी बिना किसी तकलीफ़ के चल बसीं। गुज़र जाने के बाद हम लोगों को उनके जाने का दुख तो क्या, राहत ही महसूस हुई। हमें तो छोड़िए, माँ को इतना टॉर्चर करती थीं। जैसे बड़े से पहाड़ के नीचे दबे आख़िरी साँस लेते किसी ने बोझ को हटा दिया हो। उन्हें वैसे ही हम तीनों किसी पाप का फल लगते थे, उसमें मैं सबसे गई बीती–'हाय राम वाली'।

हम दोनों, मैं और नीना कहने को जुड़वाँ बहनें थीं, पर पता नहीं क्यों नीना मेरे मुकाबले अधिक सुगठित, आकर्षक व चपल थी और मैं बेहद साधारण, मर्घिल्ली सी। नीना मुझसे ज़्यादा

छाया श्रीवास्तव
1022, हान्ना टॉवर, गौड़ सुंदरम, टेक ज़ोन- IV, गौतम बुद्ध नगर
201306, यूपी
मोबाइल- 9313787497
ईमेल- srivast.chhaya@gmail.com

टैलेंटेड भी थी, चाहे पेंटिंग हो, सिलाई कढ़ाई हो या नृत्यकला। मैं अपनी पढ़ाई में लगी रहती। मुझे वैसे भी कृत्रिम दिखावा, मेकअप वगैरह में कोई रुचि न थी। बस दो लंबी चोटी लटकाए चल देती थी कहीं भी।

हम लोग साउथ पटेल नगर में थे, पर ईस्ट पटेल नगर का मार्केट बड़ा 'हैप्प' माना जाता था। वहाँ एक बड़ी सी नामी चाट की दुकान थी। बड़ी बहन मीना तो एकदम अंतर्मुखी हो चली थी, कहीं आती-जाती नहीं थी। हम दोनों छोटी बहनें पापा से चवन्नी-अठन्नी ऐंठ कर ईस्ट पटेल नगर मार्केट में गोलगप्पे खाने भाग लेते थे। वहीं हमारा फ्रेंड्स सर्कल भी बन गया। उनमें एक मानवी हमारी ख़ास दोस्त हो गई थी। उसका घर वहीं चाट की दुकान के आगे मोड़ पर था। हम लोग वहाँ भी अड्डा जमा लिया करते। उस मुहल्ले में कई लड़कों का नीना पर क्रश रहता। फब्ती भी कसते, मुझे बहुत बुरा लगता, पर नीना को शायद इस तवज्जो से ज़रा फ़र्क़ नहीं पड़ता। मैं इस बात से बहुत रुष्ट रहती, शायद कुछ जैलस भी।

हमारे घर का माहौल इतना उदासीन-सा रहता, पापा अख़बार पढ़ते रहते, माँ घर के काम काज में हरदम व्यस्त, वे लोग शायद ही कभी संग बैठ बातें करते। बड़ी बहन मीना सारे दिन किताब कॉपी लिए आगे पीछे हिल-हिल रट्टा लगाती रहती। शाम होते ही हम दोनों चाट की दुकान पर रेगुलर गैटटुगैदर में शामिल हो जाते। मैं तो नीना की पिछलग्गू बनी संग-संग रहती। मानवी के पापा नहीं थे। मानवी की एक बड़ी दीदी थीं, शादी नहीं हुई थी। हम उनका बेसब्री से इंतज़ार करते। ऑफ़िस से आ थकी-माँदी होने के बावजूद, ख़ूब जोक्स सुनातीं। उनकी मम्मी भी कम न थीं, ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से हँसती थीं और हम सबको टाइम-बेटाइम पंजाबी मोटे-मोटे भरे पराँठे, सफ़ेद मक्खन के साथ...आहा, सोच कर आज भी याद करके मुँह में पानी भर आए। हाँ, एक भैया भी थे, मनी। वह भी मस्ती में शामिल होते। कभी ताश खेलते, कभी गेट पर बाय कहते कितना समय बीत जाता, पता ही न चलता। वह हमारी किशोरावस्था के सबसे हसीन दिन थे।

नीना के तो ढेरों आशिक़ थे– वह थी ही इतनी आकर्षक। मनी भी उसके सम्मोहन से अछूते नहीं थे। फ्लर्ट करने में नीना किसी से पीछे नहीं रहती। वैसे मुझे भी मनी बहुत अच्छे लगते थे। शशि दीदी और आंटी भी मुझसे स्नेह रखतीं। और मनी, दूर अकेला-सा पा मुझे घसीट कर सब में शामिल कर लेते। कभी-कभी देर तक अनजाने में मेरे कंधे पर हाथ रखे रह जाते–मुझे अजीब-सा संकोच होता। किसी पुरुष के स्पर्श का अनुभव तो था नहीं।

'अरे मनी उसे छोड़ दो, देखो कैसे शर्म से आधी हुई जा रही है।' और हा हा करके हँसने लगतीं।

'ओह क्यों रीना ' मनी मेरे क़रीब आकर आँखों में झाँक मुस्कराते मुझे छोड़ देते। बात आई-गई हो जाती। मनी और नीना तो कपल जैसे ही हो गए थे, एक प्लेट में खाना, झूठा भी खाना, सट सट बैठकर समय बिताना- क्यों कर मुझे झकझोरने लगा था। मैं अपने रख रखाव पर भी थोड़ा ध्यान देने लगी थी। कसी-कसी चोटी की जगह ढीली सी छोटी करना शुरू कर दिया जिसे मनी कई बार खींच चुके थे। अपने सूखे-सूखे हाथ, होठों पर छुपकर नीना का मॉइश्चराइज़र लगा लेती। मेरे हाथ सुंदर हैं, मैंने अब जाना।

दिवाली आई, अपने घर पूजा, दिया-बत्ती जला हम दोनों भागीं मानवी के घर। वहाँ भी सभी दिये-मोमबत्ती जला रहे थे। नीना ने तो अपने लहँगे दुपट्टे में इतराते अपना चैटरबॉक्स शुरू कर दिया। मैने भी एक मोमबत्ती ले ली, जलाते-जलाते गर्म मोम मेरी उँगली पर टपक गई- मेरे मुँह से हल्की सी आह निकल गई। मनी दौड़ते आए और मेरी उँगली को अपने होठों के बीच दबा राहत देने की कोशिश करने लगे।

'मैं ठीक हूँ...' कह मैंने अपना हाथ खींच लिया। मैं वहाँ से हटने को हुई तो मनी ने मेरी बाँह पकड़ रोक लिया।

'बहुत सुंदर लग रही हो रीना, ऐसे ही रहा करो।'

मैं और सुंदर ' मैंने परिहास्पपूर्ण हो पूछा, 'मुझे तो आज तक किसी ने नहीं कहा।'

'मैं कह रहा हूँ, तुम बहुत अच्छी हो, सुंदर हो, अंदर से भी-बाहर से भी।' मैं क्या कहती, नर्वसनेस के मारे ठंडी पड़ी जा रही थी। मनी के डायलॉग अभी ख़त्म नहीं हुई थे।

'क्यों इतने कॉम्प्लेक्स में रहती हो।' मनी लगातार मुझे बहुत स्नेह से निहारे जा रहे थे, 'इतनी समझदार हो, ब्रिलियंट हो और...' सब लोगों ने खिलखिलाते हमारे पास आकर मुझे बचा लिया। मैंने झट से अपनी बाँह खींच ली। यह बात जगज़ाहिर थी कि नीना और मनी एक दूसरे के लिए ही बने थे। शायद आजकल में शादी भी कर लें। हमारा शाम होते ही चाट खाने दौड़ना, पापा से चवन्नी रुपया मारना रोज़ का शगल हो चला था। माँ-पापा कुछ कहते भी न थे। हम लोग ठीक टाइम से पढ़ लिख जो लिया करते थे। माँ का हाथ भी बँटा देते थे। पर चवन्नी रुपया तो पापा को ही देना होता था, वे भी टोका-टोकी नहीं करते थे। उनका सारा शासन बेचारी बड़ी बहन मीना पर ही चलता। वह भी तो कहीं आना-जाना नहीं चाहती थी। पापा ने उसे रैगुलर कॉलेज भी जाने नहीं दिया। प्राइवेट ही एम.ए कर रही थी। मैं नीना के जैसी निरंकुश तो नहीं थी पर मीना जैसी कड़ाई चलती तो मैं घर से भाग लेती। यूँ ही मन में ख़याल आते–घर से भागना कोई आसान बात थोड़े ही है, और कोई होना भी तो चाहिए साथ भागने के लिए। मन ही मन अपने शेख़चिल्ली की बातों पर मैं मुस्करा देती। पर मुझे मीना पर बहुत तरस आता था।

एक दिन पता चला कि मनी ने यू एस जाने का प्रोग्राम बना लिया है। मेरा दिल तो धक्क से हो गया। नीना का तो क्या ही हाल होगा, मनी को किसी मल्टीनेशनल कंपनी में नौकरी मिल गई थी। हर कोई आगे बढ़ना चाहता है। जाने से पहले बस एक बार मिली, पूछा भी-'इन सब को छोड़ कर विदेश जाना...?' और कुछ तो कह नहीं पाई ... इतना हक़ शायद मुझे नहीं था। फिर कुछ गिल्ट में जैसे जस्टिफाई करते बोले- 'क्या करूँ रीना, घर सँभालने ही और कमाने जा रहा हूँ, फिर तुम लोग तो हो, एक अच्छी जॉब ऑफर आया, मैं इंकार नहीं कर पाया, जल्दी आ जाऊँगा।'

'कौन आता है जल्दी,' मेरे मुँह से निकल गया।

'क्यों तुम मिस करोगी मुझे,' मेरी भर आई आँखें वह देख न लें, मैंने मुँह फेर लिया। उस रात मनी को तीन बजे निकलना था। नीना तो वहीं रुक गई उन्हें सी ऑफ़ करने, मुझसे कहा, क्या करोगी इतनी रात। मैंने धीरे से अपनी ऑटोग्राफ़ बुक नीना को पकड़ा दी कि मनी कुछ मैसेज लिख दें। तब यही सब चलता था।

'यह क्या बचकानी हरकत है रीना,' झुँझलाते हुए ले ली, 'चलो दे दूँगी।' बचकानी हरकत थी ज़रूर... पता नहीं क्यों दे दी, बाद में पछतावा हुआ। फ़्लाइट के समय आधी रात, छत पर जा प्लेन आते-जाते देखती रही पता नहीं मनी किसमें होंगे। गुड बाय मनी .. बहुत मिस करूँगी तुम्हें, बहुत...

अगले दिन नीना ऑटोग्राफ़ मुझे पकड़ा कॉलेज के लिए निकल गई। काँपते हाथों से मैं पन्ने पलटती गई। शायद मनी ने कुछ न लिखा हो, हो सकता है नीना देना भूल गई हो। फिर भी... 'टु माई स्वीट वन–लव मनी' एक ख़ाली पन्ने पर अंकित था। बार-बार मनी का लिखा सीने से लगाए रोती रही। मेरा कहा सही निकला। एक साल, दो साल, तीन साल बीत गए... मनी नहीं आए। आंटी, मानवी, शशि दी एकदम अकेली हो गईं। न अब चाट खाई जाती, न ही ठहाके लगते। कुछ दिन बाद हम दूर अपने फ़्लैट में शिफ्ट हो गए। जीवन यूँ ही चलता रहा। मेरी पढ़ाई भी ख़त्म सी हो गई, यानी पोस्ट ग्रेजुएशन के बाद, एम. फ़िल करते ही दिल्ली यूनिवर्सिटी के डिग्री कॉलेज में नौकरी लग गई।

सबकी ज़िंदगी अपने-अपने ढर्रे से गुज़र रही थी। मीना की शादी हो गई। हैरानी की बात तो यह थी नीना भी शादी के लिए राज़ी हो गई और कर भी ली। मैं तो सोचती थी वह मनी की प्रतीक्षा करेगी। वह दोनों तो एक दूसरे के लिए ही बने थे। दूर रहने के कारण अब मानवी के यहाँ जाना कुछ कम हो गया था, या कहिए बंद ही हो गया था। मोबाइल, कंप्यूटर तो था नहीं उस ज़माने में, बस एक दिन यूँ ही मन हुआ जाऊँ उन लोगों के यहाँ, मन में अपराध बोध-सा हो रहा था। मुझे उनका हाल चाल लेते रहना चाहिए था। आख़िर दिल्ली में ही तो थे। मुद्दत हो गई थी उन सब से मिले।

आंटी बहुत कमज़ोर हो गए थीं। नीना और शशि दी अपनी जॉब्स में व्यस्त, मेरी तरह। इतने दिनों बाद मिले थे फिर भी ऐसा नहीं लगा कि बरसों बाद मिले हैं हम सब इतने ख़ुश थे। शशि दी ने बताया कि मनी दो दिन बाद आ रहा है, अबकी हमेशा के लिए। पहले भी आया था, पर एक दो दिन के लिए तो मुझे ख़बर नहीं कर पाए।

'तुम भी चलना एयरपोर्ट...' शशि दी ने आग्रह किया, 'उसे अच्छा लगेगा। पूछ रहा था तुम्हारे बारे में।' अच्छा याद है उन्हें मेरी, इस ख़याल से पुरानी यादें ताज़ा हो गईं। कुछ ख़ास तो था नहीं था याद करने को...बस ऑटोग्राफ़ बुक के वे पाँच शब्द-'टु माई स्वीट वन–लव' जो मेरे दिल के किसी कोने में अंकित हो चुके थे। कभी-कभी सोचती स्टूपिड टीनएजर्स वाली भावुकता है, अब मैं चौबीस-पच्चीस साल की लेक्चरर थी, पर फिर भी अपनी छात्राओं में अपनी छवि ज़रूर ढूँढ़ती थी। मैं एयरपोर्ट तो नहीं गई।

'मनी...रीना... ' शशि दी ने मेरे गेट के अंदर आते ही इशारा किया। कितने अर्से बाद हम दोनों आमने-सामने थे।

'अरे रीना, तुम कितनी बदल गई हो' थोड़ा पीछे हो मुझे ऊपर से नीचे तक देखते हुए एकदम स्तब्ध हो 'बड़ी भी तो हो गई हो।' मैं कुछ सकुचा गई।

'वाह साड़ी-वाड़ी...' मुस्कराते मनी ने अपना हाथ मिलाने को बढ़ाया–'हलो' मैंने भी अपनी हथेली उनकी ओर बढ़ाते हुए हलो किया। विदेश में रह कर इसी अभिवादन की आदत हो गई होगी। मनी में कुछ ज़्यादा बदलाव नहीं आया था। हाँ चेहरे पर मूँछें और घनी हो गईं थीं।

'माई गॉड, आप कितने हैंडसम हो गए हैं।' मुँह में आते-आते रुका। देखने में तो पहले भी अच्छे लगते थे, मैच्योरिटी ने और ही निखार ला दिया था।

एक बार फिर मुलाक़ातों का सिलसिला चलने लगा। अबकी नीना नहीं थी, बस यही फ़र्क़ था। मनी ने आते ही पहला काम यह किया कि छोटी बहन मानवी की शादी तय करवा दी। शादी धूम-धाम से हुई। मैंने भी पहली बार लहँगा बनवाया। शर्म तो बहुत आ रही थी, फिर भी मानवी के साथ पार्लर जा कर तैयार हुई। घर पर ही आयोजन था, तब बैंक्वेट हॉल वगैरह का रिवाज़ नहीं था, मिडिल क्लास लोगों में। किसी ने कोई छोटा घड़ा माँगा पीछे के आँगन से। लेकर पलटी ही थी कि अचानक मनी की बाँह ने खींच लिया मुझे अपने समीप। घड़ा भी गिर गया, मनी के आलिंगन में मैं उनके होठों की गर्मी सारे बदन में महसूस कर रही थी। मनी पागलों के जैसे मुझे प्यार किए जा रहे थे। सब कुछ इतना अचानक हुआ कि मनी से अलग होते ही मुझे रोना आने लगा। वहीं दीवार से सट कर दोनों हथेलियों से मुँह छिपाए हिचकी ले ले रोने लगी। मनी तो एकदम घबरा गए। मेरी हथेलियों को हटा, मेरे चेहरे को अपनी हथेलियों में लिए धीरे से फुसफुसाते बोले-

'क्या हुआ रीना... आई एम सॉरी... शायद तुम तैयार नहीं थीं ऐसी सिचुएशन के लिए।' बेहद ग्लानि से भरे बोले। मनी को बुरा लगा रीना को आहत कर के।

'मैं क्या करूँ, तुम आज इतनी प्यारी लग रहीं थी, मैं बहाना ही ढूँढ़ रहा था... अपने को रोक नहीं पाया।

'मुझे माफ़ कर दो रीना ...' कुछ नॉर्मल होते हुए, 'अब चलो दूसरा घड़ा उठा लो और अपना मेकअप ठीक कर लो...' ढेर सारे प्यार से भरे मुझे हँसाने की कोशिश में शब्द ढूँढ़ते बोले- 'तुम बिना मेकअप के सारी महिलाओं को मात दे सकती हो...चलो।'

सब शादी वादी बीत गई, शांति ख़ुशहाली से। शशि दी ने तो ठान लिया था कि वह कभी शादी नहीं करेंगी। अब वहाँ मनी, शशि दी और आंटी ही रह गए थे। शादी के बाद मेरी हिम्मत ही नहीं हो रही थी वहाँ जाने की। न चाहते हुए भी मनी का आलिंगन, चुम्बनों की बौछार जैसे मेरे रोम-रोम में समा गई थी। रह-रह कर कभी रोने लगती, कभी मुस्कराती और कभी शर्माती। एक दिन अचानक मनी मेरे ठिकाने पहुँच गए। उन्हें अनायास देख मैं घबरा गई।

'क्या हुआ ?' एक अजीब से डर ने

आशंकित कर दिया। मेरा हाथ पकड़ बाहर ले जाने को हुए।

'अरे दरवाज़ा तो बंद कर लूँ।' कार में हम दोनों चुप बैठे थे, पर अंदर कितना बवंडर मचा हुआ था। लग रहा था वह मुझसे नाराज़ हैं। ठीक भी तो है, ऐसा क्या गुनाह किया था उन्होंने, मुझे एहसास था, बहुत चाहने लगे हैं मुझे। और मैं, मैं तो उन्हें छोटी थी तब से प्यार करती थी... आज भी ... फिर ? पता नहीं कहाँ कहाँ घुमा फिरा एक सुनसान सी जगह किनारे कार रोक दी। शायद कोई रेलवे क्रॉसिंग थी, एक टूटा सा बेंच भी था। बड़ी हो आई घास में पैर रख मुझे हाथ पकड़ अपने पास बिठा लिया।

'ये कहाँ ले आए मनी...' मैंने कुछ असमंजस में पूछा।

'क्यों डर लग रहा है ? इस जगह से या मुझसे... ?'

'आपसे ? आपसे क्यों..' मैंने पलकें नीची कर लीं, उनकी नज़रों का सामना नहीं कर पा रही थी। झींगुर की आवाज़, रात का सन्नाटा, किसी ट्रेन के आने की आवाज़–ट्रेन आकर तेज़ी से निकल गई। काफ़ी देर असहनीय चुप्पी के बाद... 'तो अब बताओ, प्रॉब्लम क्या है...' मेरे उत्तर की प्रतीक्षा में मेरी आँखों में झाँकते हुए मुझे और भी असहज कर दिया।

'प्रॉब्लम...नहीं कुछ तो नहीं - बस।'

'हाँ बस क्या ...' मनी छोड़ने वाले तो थे नहीं।

'असल में जब मैं सोलह-सत्रह साल की हुई, पब्लिक प्लेसेज़, बसों में जिस तरह गंदा व्यवहार करते थे, मुझे घिन आती थी अपनी लाचारी पर। अपने लड़की होने पर।' मनी मेरी आँखों में नफ़रत साफ़ देख पा रहे थे।

'और ....'

'मुझे सारे मर्द क्रूर और अत्याचारी लगने लगे, मैं अपने को इतना लाचार महसूस करती थी।' मुझे लगा मैं इस मनी नाम के मर्द के सामने मन की सारी गाँठें खोल के रख दूँ।

'और...'

'और-और मैं बहुत छोटी थी, कुल तेरह चौदह साल की रही होऊँगी।' मेरी आँखें फिर भर आईं।

'तुम सहज नहीं हो तो रहने दो।' मनी मेरे कंधे को बाँह से घेरने को हुए, फिर फ़ौरन हाथ वापस ले लिया।

'नहीं आज मुझे सब कह लेने दीजिए, मैंने इतने साल किसी से कुछ नहीं कहा...हिम्मत ही नहीं हुई।' फिर कुछ रुक कर, 'मम्मी के एक कज़न थे, मेरे मामा, उन्होंने मुझे अकेला पाकर मेरा फ़ायदा उठाने की कोशिश की, वह तो भगवान् ने बचा लिया। तब से मैं मर्द के स्पर्श से घबरा जाती हूँ, विवाह या कुछ तो दूर की बात है। मैं चुप हो गई और धीरे से मनी के कंधे पर अपना सिर टिका दिया। मनी मेरे पास खिसक आए और अपनी बाँह मेरे कंधे को घेरते धीरे से मेरे कान में बोले- 'मे आई...?' मैं रोते रोते मुस्कराने लगी।

'क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते दोस्त की तरह ... ?' मैंने डरते-डरते पूछा।

'क्यों नहीं, सारी ज़िंदगी।' मेरे चेहरे पर हवा के झोंके से आए बालों को धीरे से हटाते मनी ने कहा।

'नहीं, आप शादी कर लें, ममी के कितने अरमान होंगे।'

'और मेरे अरमान, वे तो तुम्हारे साथ जुड़े हैं। विवाह ही सब कुछ नहीं होता।'

'चलिए, बहुत देर ही गई है।' मुझे बाँह से घेरे कार की तरफ़ बढ़ चले। स्टीयरिंग हाथ से थामे उन्होंने अपना फ़रमान-सा जारी कर दिया... 'देख रही हो यह रेल की पटरियाँ हमेशा साथ-साथ चलतीं हैं, कभी मिलती नहीं।'

'तो ... '

'हम भी हमेशा ऐसे ही यूँ ही चलते चलते–इन पटरियों की तरह चलते जाएँगे... कभी भी बिना मिले जहाँ भी मंज़िल ले जाए।'

'कहीं ऐसा भी होता है...आपको दुख है ?' मैंने आशंकित सी हो पूछा। मैं उनके चेहरे को पढ़ना चाह रही थी, कार की जलती रोशनी में।

'नहीं, बिल्कुल नहीं, इतने प्यार के साथ मैं यह इंतज़ार करना भी भूल जाऊँगा कि शायद तुम अपना रास्ता छोड़ कभी मुझसे मिल पाओ।' और मनी ने कार स्टार्ट कर दी...

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 11 मार्च 2024

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

कथा-कहानी

प्रायश्चित

राजा सिंह

राजा सिंह
एम-1285, सेक्टर-आई, एल.डी.ए. कालोनी, कानपुर रोड, लखनऊ-226012
मोबाइल- 9415200724
ईमेल- raja.singh1312@gmail.com

वह जा रही थी, मिसेज़ चावला। उन्हें वह देख रहा था। फिर उन्होंने सिर मोड़कर उसे देखा और मुस्कराने लगी।...एक अजीब आश्वासन भरी मुसकराहट जिसे देखकर वह भयभीत-सा हो गया। जैसे कोई लुटकर फिर लुटने की आशंका से पीड़ित हो। उसके भीतर कोई चीज़ भरभरा कर गिर गई थी। हर आदमी ऐश करना चाहता है, किन्तु आदर्शवाद से पीड़ित या छवि से ग्रसित व्यक्ति ? उसके दोनों क़िले ढह गए थे। वह एक ऐसी राहत थी जो पीड़ा देती थीं।

एक दिन उसने पत्नी से कहा था, 'मिसेज़ चावला अच्छी महिला हैं!'

तनुजा हँसने लगी, "सच?" उसे लगा कि उसका चेहरा उसके सामने अनावृत न होना प्रारंभ हो जाए !

बहुत दिनों से वह अकेला नहीं रहा था। अकेले दिनों की एक अजीब-सी महक होती है। उसने विवाह से पहले वह सुख भोगा था। बंधन रहित जीवन। इधर क़रीब दो साल से अकेले रात नहीं गुज़री है। उसका एक अजीब तड़प-नशा और चाहत होती है। वह फिर से कुछ दिन पत्नी और बेटे की अनुपस्थिति के जीवन जीना चाहता था। देखे कैसा होता है ?

"तनु ! तुम बहुत दिनों से मायके नहीं गई हो?"

"तो ?" उसने पूछा।

"मिल आओ जाकर।"

"क्या जाना ? तुम्हारी सपेक्षा से ही फुरसत नहीं है, और फिर किट्टु की देखभाल, फुरसत कहाँ है ?" उसने आश्वस्त किया अब की बार, वह उसे और बच्चे को कुछ दिनों के लिए छोड़कर वापस आ जाएगा।

"रह लोगे अकेले? मेरे बगैर तकलीफ़ तो नहीं होगी?" इत्यादि सैकड़ों प्रश्न ! सेक्स के अतिरिक्त भी स्त्री के सामने कई चुनौतियाँ रहती है। उसमें वह भागीदारी चाहती है।

पर वहाँ ससुराल जाकर, वह अड़ गया। सिद्धांत की बात पत्नी से नहीं करनी चाहिए। सैद्धांतिक चर्चा में प्रेम कम हो जाता है। पत्नी से संबंध सैद्धांतिक नहीं होने चाहिए। प्रेम में सिद्धांत नहीं होते। उसकी पत्नी ने माना था और कहा था कि तुम अकेले नहीं रह सकते। इसलिए जब भी वह मायके जाती थी उसके साथ ही जाती थी और दो-चार दिन साथ रुक कर लौट आती थी। उसकी पत्नी तनुजा एक सीधी-साधी, साफ-सुथरी, तीखे नाक-नक्श की गेहुवें रंग की इकहरे बदन की लड़की थी, जो बच्चे के जन्म के बाद स्त्री बन गई थी। परंतु बच्चे से अलग वह एक सुंदर कमनीय लड़की ही थी।

"अरे! मिस्टर जब छोड़ने ही आए हो तो छोड़ जाइए और नहीं तो एक-दो दिन बाद साथ ही लौट चलूँगी।" किन्तु वह और रुकने का बहाना तलाश कर रहा था। किन्तु स्पष्ट कहने से परहेज़ कर रहा था। ख़ैर बेमन से वह लौट आया था। उसने ख़ुद को विश्वास दिलाया कि अब सब कुछ नया-नया होगा।... न पत्नी, न बच्चा, न उनकी चिंता का बोझ।

कितना हल्का है वह ! अकेला तो वैसे ही घूमता है। पर वह बात और होती है? एक अंकुश पत्नी और बच्चे का दिल-दिमाग़ में छाया रहता है। यह बात सदैव रहती थी कि वे दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, देर-सबेर उसे उनके पास पहुँचना है! पर आज वैसा कुछ नहीं है, आज वह मनचाहे घर जा सकता है। शाम ढलने को आ रही है वह बेफ़िक्र होना चाहता है, घर जाने को लेकर किन्तु घर का भूत सवार हो रहा है।

आज अकेले 9 से 12 वाला पिक्चर शो देखना है। मगर अभी सिर्फ 7 बजे है। वह माल में घुस जाता है टाइम पास हेतु। सोचा कुछ पसंद आ गया तो बिना टोका-टोकी के ख़रीद सकेगा...लेकिन वह ऐसा कुछ भी नहीं ख़रीद पाया जो पत्नी की अनुपस्थिति में ख़रीदना चाहता था। काश ! कोई संगी साथी होता ? किन्तु उसके साथ के सभी शादी-शुदा हैं और सभी अपने घर में होंगे ! ज़्यादा से ज़्यादा उनके घर में चाय, नाश्ता करके वापस आना होगा और यह

कैफ़ियत भी देने होगी की भाभी जी को लेते आना चाहिए था। अकेले रहने की क्यों फितरत पैदा हुई, आदि आदि। उसे लगा कि पत्नी की अनुपस्थिति में वह उसके और समीप तर होता जा रहा है। क्यों ? फिर रहे हम रात गए, वापस घर चलते है। क्या ही बढ़िया माहौल होगा कुछ रचने का ?एक बैठक में ही सारी रचना पूर्ण होगी। हाँ, यह ठीक रहेगा। किन्तु रचना हेतु यह उलझन भरा माहौल ठीक करने के लिए, एक-दो पैग की दरकार होगी। रेस्टोरेंट में वह नमकीन और ऑमलेट के साथ तीन-चार पैग चढ़ा गया।

वह घर तो जा रहा है, किन्तु घर जाकर क्या वह भूखा सोएगा? वह कुछ भी बनाना नहीं जानता था। यदि हिम्मत की भी, तो कर नहीं पाएगा.. ! फिर वह खाने की छुट्टी कर सकता है, यह अकेलेपन की मौज नहीं होगी? वैव माल के कैफ़ेटेरिया में उसने अगड़म-बगड़म भकोसा, जो उसे कभी भी घर में मुहैया नहीं होते... उसे फिर घर की याद आई। अभी भी रात के 9 मुश्किल से हुए थे। उसने लेखन की चाह से विद्रोह किया और मल्टीप्लक्स में पिक्चर देखने चला गया। पिक्चर देखते हुए उसे अफ़सोस हुआ कि इतनी रोमांटिक पिक्चर- उसे तनुजा के साथ देखनी चाहिए थी। उसे लगा पत्नी बगैर अकेले कुछ दिनों फ्री गुज़ारने का ख़याल बकवास में तब्दील होता जा रहा है। उसे संकोच ने घेर लिया कि ऐसे एकाकी ख़ुशनुमा माहौल में पत्नी भी होती तो....?

उसने मन मस्तिष्क से घर को बाहर करने की हेतु सिर को झटका। उसे अकेलेपन का सुख भोगना है।

तभी तो अभी से क्या क्या करना है घर जाकर? हजरतगंज की चमकती-दमकती दुकानों में स्याही पुती थी। इन बंद दुकानों, बरामदों में अकेले घूमने की क्या तुक है? कोई कहानी का प्लॉट मिल सकता है या प्लॉट की नायिका..., हेल्प....हेल्प का शोर मचाती। अचानक एक डर उसके भीतर घुस आया, कोई अराजक तत्व उसकी धनराशि को लूट न ले...!... लूट तो तब भी ठीक है, कहीं उसकी हत्या ना हो जाए? वह बहुत सत्ता विरोधी रचनाएँ लिखा करता है...सत्ता का दलाल उसे जहन्नुम पहुँचा सकता है।

वह सहमकर पुलिस जिप्सी के पास चला आया। इन्स्पेक्टर ने धमकाया, 'कहाँ रात में टहलकदमी कर रहे हो, पत्रकार महोदय ?' डर कर उसे पसीना आ गया। मिमियाता हुआ बोला, "पत्रकार नहीं लेखक हूँ, कहानी की तलाश में भटक रहा हूँ।"

"कहानी क्या मिलेगी कहीं ख़ुद न कहानी बन जाना?" फिर वे हो.. हो.. कर हँसने लगे। उसने चेहरे पर छलक आए पसीने को पोंछा और वापस घर लौट चला।

कैब से उतर कर वह अपने 505 नंबर फ़्लैट में दाखिल हुआ तो उसका सिर भन्नाया हुआ था। नशा गहरा गया था और उतारने वाला कोई नहीं था। आज वह अकेला था चार कमरों वाले फ़्लैट में, जो चाहे करे। कोई शर्म, लिहाज़, इज़्ज़त, मान मर्यादा की वकालत नहीं? उसने खिड़कियों के मोटे परदे ठीक से बंद किये और सारी लाइट्स जला दीं। अब उसने आदम क़द शीशे के सामने सारे कपड़े उतार दिए। वह एक दम आदमजात नंगा था। वह अपने अंग-प्रत्यंग निहारने लगा। उसे लगा अब भी उसका शरीर सौष्ठव मार्के का है। लेकिन कपड़े उतारते ही उसे ठंड लगने लगी। कुछ तो न्यूनतम कपड़े पहनने ही पड़ेंगे, वरना बीमार पड़ जाएगा, और पत्नी को आरोप रोपित करने को मिल जाएगा कि, अकेले वह अपना ध्यान नहीं रख सकता। इसीलिए वह मायके नहीं जाती उसके बग़ैर।...'मैं जानती हूँ तुम अकेले अपने को ठीक से रख नहीं पाओगे। न खाना न पीना, न पहनना किसी का शऊर नहीं है। इसलिए साथ जाती हूँ और साथ ही लौट आती हूँ।"

अचानक डोर बेल घरघरा उठी। वह चिहुँक उठा। इस समय कौन? शायद सत्ताधारी दल का कोई गुर्गा पीछा करता आ गया होगा? अब क्या होगा उसका क़त्ल होगा? वह उससे कहेगा कि वह राजनीतिक विरोधी नहीं है सिर्फ लेखक है। उसने घर की सारी बत्तियाँ बुझा दी और ऊनी गाउन पहन कर थर-थर काँप रहा था। उसके चेहरे पर पसीने की झलक थी। उसने पसीने को पोंछना चाहा किंतु असफल रहा क्योंकि सर्दी का पसीना भीतर के डर के कारण था।

एक बार फिर घंटी बजी। इस बार देर तक बजती रही जैसे किसी ने उँगली रख कर हटाई नहीं थी। उसने सारे घर की सारी बत्तियाँ जला दीं। यह घोषणा थी कि अगर उस पर हमला हुआ तो सबकी जानकारी में आएगा। वह अकेला था और सोने की तैयारी कर रहा था किन्तु इस रहस्यमयी घंटी के बजते वह कुछ भी नहीं कर पाएगा। नींद में आना तो बहुत बड़ी बात है। वह अस्तव्यस्त हो उठा।

उसने दरवाज़ा खोल दिया। उसकी पड़ोसिन 504 नंबर वाली मिसेज़ चावला थीं। गोरी-गोरी बच्चों से मुखवालीं भरे बदन की मालकिन दो बच्चों की माँ होने के बावजूद आकर्षक एवं ख़ूबसूरत। वह उत्सुकता से उसे देख रही थीं। वह एक क्षण उन्हें देखता रहा.... उसके सारे बदन में झुरझुरी फैल गई। सुंदरता इस समय? वह सुन्न सन्नाटे के बीच खड़ी थीं और उसे आमंत्रित कर रही थीं। वह अजीब नज़रों से निहार रही थीं, जैसे कुछ पूछ रही हो? शुचिता और अस्मिता की बात करने वाला वह दिग्भ्रमित था।

वह भीतर आ गई थीं। तनुजा आ गई होगी, कहाँ है? उसने बाहर का दरवाज़ा बंद किया और उनके पीछे-पीछे चला आया। वह बेडरूम में दाखिल हुई और डबल बेड पर बेतरतीब बैठ गई दिखीं। फिर वही रट... 'तनुजा कहाँ है ?'

उसने बताया "वह अभी नहीं आई है, मायके में है, एक हफ्ते बाद आएगी।" हालाँकि वह जानता था कि उसकी पत्नी अवश्य उसे बता के ही गई होगी !

"तो आप अकेले हैं ?" उन्होंने उसे कामुक नज़रों से निहारा। उसका शरीर गरम हो रहा था।

"मेरे पतिदेव भी नहीं हैं। चेन्नई टूर पर गए हैं। बच्चे सो गए हैं। मैंने सोचा....!" फिर कुछ रुक कर बोली, "नशे में आप बहुत प्यारे और मादक लगते हो !" वह उसके बेड पर निश्चिंत होकर बैठी थीं जैसे कि उन्हीं का हो? वह उसकी पहल का इंतज़ार कर रही थीं। वह चाहती थीं कि वह उसे नोच-खाए भुक्कड़ की

तरह। उनकी साड़ी उठ गई थी। ऊपरी चीज़ें और नीचे के हिस्से अनावृत हो रहे थे। मिसेज़ चावला हँसी, "मैं अच्छी नहीं लगती ?" उन्होंने बड़ी कामुकता से ऊपर-नीचे के हिस्से हिलाए। वह लाल सुर्ख़ हो रहा था। उसका शरीर अकड़ गया। रक्त सहसा तेज़ी से गरम होकर दौड़ने लगा। उसकी नसें चटकने लगी। मिसेज़ चावला ने उसे अपनी ओर खींच लिया। वह भरभरा कर उन्हीं पर गिर गया। फिर वह उनसे मिल गया। उसने उनका ग़ुरूर शांत कर दिया। वह चंद दिनों की आज़ादी की चाहत में दूसरों की ग़ुलामी के भँवर में फँस गया था। उसने कहीं सुना या पढ़ा था-आरंभ में जब हृदय स्वार्थ-भावना से संकीर्ण रहता तो मनुष्य केवल अपनी पत्नी, बच्चों कुछ मित्रों एवं संबंधियों से ही प्रेम करता है। अंतत: सभी को प्रेम करना लक्ष्य होना चाहिए।.....किन्तु यह प्रेम नहीं वासना थी।

आमने-सामने के फ़्लैट होने के कारण और मिसेज़ चावला के अंतरंग व्यवहार के कारण दोनों परिवारों में निकटता थी। कभी-कभी वह ऐसी बातें उससे कर जाती थी कि पत्नी तनिक हैरान होकर ताकती रह जाती थी। उनका कहना था कि आदर्शवादी निहायत मूर्ख होता है। जब उन्होंने कहा था, 'मैं अकेली होती हूँ। मेरे पति देव ज़्यादातर बिज़नेस टूर में होते हैं। आते रहिएगा। संदेह था कि यह बात उन्होंने किसके लिए कही थी। पत्नी को उनकी बात असंगत लगी किन्तु फिर उसे याद आया कि जो चीज़ें हमें अच्छी नहीं लगती उनसे कतरा कर निकल जाना चाहिए।

उसकी पत्नी शीघ्र ही लौट आई जैसे कि वह उसका भेद जानती हो ? वह उसकी आँखों में सीधा देखती है। वह उसे देख रही है या तौल रही है। वह तनता गया। वह उसकी सीधी आँखों से देख सके उसका सही सही सामना कर सके, यह सोचकर उसने दुबारा पुराने शब्दों को दोहरना चाहा किन्तु.... वह कह सकने की हिम्मत न जुटा सका। किन्तु उस दिन का क्षणिक शारीरिक सुख उसे लगातार मानसिक प्रताड़ना देता रहता। पत्नी को वह बेहद चाहता था। वह चाहता था कि वह सब कह दे जो उसके मन मस्तिष्क को मथे जा रही थी-एक भूल। वह हताशा के परे चला गया था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि एक-आध दिन पहले घटित रहस्य को कैसे कहा जाए?

"तुम ऊब तो नहीं रही?" उसने अपनी पीड़ा के आलोक में उसे देखा।

''जब हम न होगें आशियाने में हमारी याद आएगी तनहाई में...'' उसे लगा उसने यह कहा। उसे लगा कि उसका चेहरा अनावर्ती हो चुका है। ''आप बहुत अच्छी हैं।'' उसने उदासीन भाव से कहा।

''आप बहुत अच्छा बोलते हैं।'' लेकिन वह हँस नहीं रही थी।

वह कुछ देर तक उसे उलट-पुलट कर देखती रही। वह उसे देखना चाहती थी कि उस पर क्या प्रतिक्रिया होती है। वह उसे देख रही थी जैसे कुछ फैसला ले रही हो और समझ न पा रही हो, यह सब क्या है? वह चुप बैठा रहा। उसके क़िले में प्रवेश करने का आसान सा कोई रास्ता नहीं था। तनु ने सिर उठाकर उसे देखा। आस-पास सन्नाटा था। वह उसे बेहद चाहती थी। कुछ कहना चाहती थी...करना चाहती थी, ... किन्तु-परंतु लेकिन में सब कुछ उलझ कर रह गया। वह अब सरकते हुए बिल्कुल पास आ गई इतने पास कि उसकी साँसे उसकी साँसों से टकराने लगी। अचानक उसके सिर को अपने सीने से लगा लिया। किसी नरम आँच में सुलगता हुआ उसका बदन तप्त होने लगा। उसकी शैली का मुक़ाबला सहज रूप से सामान्य आदमी नहीं कर सकते उसने सोचा। वह कुछ हिचक रहा था, परंतु राज़ी था। वह बेहद उदासीन ग़म में था। बिना आँसू के पश्चाताप में डूब रहा था। उस क्षण भूख और निराशा के बावजूद मन में खीज या कटुता नहीं थी।

"सुनो।" उसने बहुत धीमे से कहा, "मैंने पीठ पीछे बहुत ग़लत किया है।"

"क्या?" तनुजा ने सिर निकाला और उसकी ओर देखा। वह उसे बिल्कुल नहीं समझ पाती है।

"तुमने कुछ कहा?" उसने अबूझ आँखों से उसे देखा। किन्तु प्रारंभ करने से पूर्व ही वह रुक गया। एक ऐसा अवास्तविक तथ्य जिसे उसने शेयर करने से मना कर दिया था। एक विपत्ति के आने से पहले ही वह बच गया। उसने धीरे से उसके सिर को अपने में झुका लिया और सहलाने लगी। तनु ने उसके ओठों पर अपना मुँह रख दिया और पागलों की तरह चूमने लगी। वह सिहरने लगा। एक गरम आहट उसके ख़ून में बहने लगी। नहीं.. नहीं...नहीं... उसके भीतर से आवाज़ आई। उसने सच बोलने से तौबा कर ली।

दरवाज़े पर घंटी घनघनाई और वह दोनों चौंक गए। पत्नी तनिक हैरान होकर हवा में ताकती रही। एक दूसरे से अलग हो गए। वह भागती हुई दरवाज़े के पास आई देखा।

"ओह, मिसेज़ चावला ! हम आपके बारे में ही बात कर रहे थे।" उन्होंने क्षण भर उसे भरपूर नयनों से निहारा और बातों में मशगूल हो गईं। जब वह उसकी तरफ मुड़ी तो मुस्करा रही थी। एक बवंडर-सा उसके भीतर उठा - जैसे वह- एक प्राइवेट किस की बीमारी है, जिससे उसे दूर रहना है। यानी कि स्त्री मात्र देह और दर्शनीय वस्तु नहीं है। पुरुष स्त्री को देखकर सभी सीमाएँ लाँघने को उद्धत हो उठता है। वह वापस लौटी तो उसे एक प्रवचन याद आया- "मनुष्य को चाहिए कि, अपने मन की सहायता से अपना उद्धार करे और स्वयं को नीचे न गिरने दे। यह मन जीव का मित्र भी है और शत्रु भी है।" कुछ महीने ऐसे ही बीत गए। जाड़ों की शुरुआत में एक बार पत्नी को अपनी वजह से घर जाना पड़ा। उसकी भाभी बीमार थी। देखभाल हेतु उसका भाई आया और लिवाकर ले गया। यह अजीब विडंबना थी। पत्नी जब भी मायके जाती थी मिसेज़ चावला को पहले से ही सूचित कर देती थी, "संकोची हैं, खाने-पीने का ध्यान रखिएगा।" किन्तु उसके भीतर वह मर गई थीं। उसे उसका यह अनुरोध अनुचित लगा।

अब वह बहुत रात गए इंतज़ार करती रही। पिछली रात वह पत्नी के साथ था। फिर कहानी काले जंगल में अटकी थी, ध्यान भटक गया। तब उसे अजीब लगा कि ख़ालीपन का मतलब क्या है ? उसे तनुजा से ईर्ष्या थी उसे लेकर। फिर भी वह हिचकिचा रही थी। प्रेम-अस्तित्व की इस लड़ाई में

पारिवारिक कलह के समक्ष अडिग अपने स्वत्व की खोज महत्त्वपूर्ण है। उसके चेहरे पर चिपका हुआ नपुंसक आक्रोश हास्यास्पद रूप से मुखरित हो उठा। एक अजीब-सा गुस्सा, उसे असुरक्षित छोड़ जाने की वजह भीतर उमड़ने लगा। वह जानता था मिस्टर चावला आज भी घर पर नहीं हैं।

सहसा उसे लगा कि उसका रक्त ठंडा पड़ता जा रहा है। वह काफी डर गया था। उसने पीनी शुरू कर दी। एक आम आदमी हमेशा मौक़े की तलाश में रहता है, क्योंकि उसे जीत की आस हमेशा रहती है, किन्तु वह जानता है कि उससे हार जाएगा! उसे लगा कि वह शीघ्र ही यौन शोषण का शिकार हो जाएगा? तभी सचमुच की आहट सुनाई दी। खटक से दरवाज़ा खुला और वह दिखाई दीं। वह कॉल बेल का ही इंतज़ार करता रहा। शायद उसकी पत्नी ने देखभाल के लिए फ्लैट की दूसरी चाबी उन्हें दी होगी! उनके दिखते ही उसके भीतर जो धुकधुकी शुरू हुई, वह थमने का नाम नहीं ले रही थी। जैसे दिल के भीतर दूसरा दिल धड़क रहा हो जिस पर उसका कोई बस न हो!

"सच कहती हूँ आप नशे में बेहद प्यारे लगते हैं। मेरे ख़याल से जो सचमुच अच्छा आदमी होता है, वह नशे में और अच्छा हो जाता है।" उसके पास आते उन्होंने बड़े मोहक अंदाज़ में कहा। वह यौन शोषण का शिकार होने ही वाला था। वह पूरे कमरे में चल रही थीं। हँसी अब भी उनके अधरों में विराजमान थी। जिसका शोर रातों में उस तक आते-आते ग़मगीन और गहरा होकर छाने लगा था। वह आतंकित आँखों से उसे देखता रहा, न सिर हिलाया न आँखें मुँदी। नैतिकता एवं मर्यादा को दरकिनार करते हुए पहल की ओर उत्सुक थीं। वह अब निश्चित सी दिखती थी, हालाँकि चेहरे पर अधीरता थी। वह उसका हाथ पकड़कर खींचना चाहती थीं, किन्तु पहल की आंतरिक हिचक अब भी विद्यमान थी। किन्तु उसकी तरफ से कोई प्रयास न होते देख ख़ुद आलिंगन और चिपकनी बैठ गईं। धीरे से फुसफुसाई, "हम आपको अच्छे नहीं लगते?" फिर वह उससे लिपट गईं। मिसेज़ चावला जैसी केवल अपने विचार से अनुप्राणित लोगों को लगातार प्रसाद वितरित करना, अपना लक्ष्य समझती हैं। उसने एक लंबी साँस ली और तakिया खिसकाकर उसके पास लेट गईं।

उसने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ़ उसे एकटक ताकता रहा। यह ग़लत है, एकदम ग़लत। पुरस्कार की प्राप्ति का लालच अब नहीं होता, किन्तु अब इस वासना की निर्लिप्तता से बाहर आने की आवश्यकता है। उसने सोचा यह बेहद ग़लत है... आकर्षण और विकर्षण के बीच जंग जारी थी। उसे यौन शोषण से मुक्ति पानी है। वह कुछ बेचैन सा दिख रहा था। एक अजीब-सा ग़ुस्सा उसके भीतर उमड़ने लगा। उसने सेक्स वर्चस्व से अपने आप को मुक्त करने को सोची। फिर शीघ्र ही अपने भीतर वह समाप्त होता दिखने लगा था। उसने मिसेज़ चावला को देखा, मासूम बच्चों वाला वही चेहरा उसकी तरफ कुछ झुका हुआ। उसकी चाहत की अग्नि-उत्सुक, चिंताग्रस्त, एकाग्र। फिर उसे चालाक सेक्स बिल्ली में तब्दील होता दिखा। उसे अपने भीतर कुछ भी हिलता नहीं मालूम पड़ा। सहसा उसकी ओर उमड़ा प्यार तिरोहित हो उठा और उसके साथ वासना भी। किन्तु उसे इस वासना के डकैत का सामना करने के लिए स्वयं को सन्नद्ध करना है। उसके पास सिर्फ़ एक मौक़ा है जीतने का नहीं तो लगातार हार झेलनी पड़ेगी।

वह उठ खड़ा हुआ। उसने मुठ्ठियाँ भींची। जबड़े अकड़ आए। स्वयं को संयत किया और बोला, "माफ़ कीजिएगा, आप तब आया करें, जब तनुजा हो।"

मिसेज़ चावला ने बुरा-सा मुँह बनाया जैसे कुनैन की गोली निगल ली हो। वह झटके से उठ खड़ी हुई जैसे अपमानित हुई हो बोली, "आपको नींद आ रही है शायद?" और पैर पटकते हुए अपने फ्लैट में समा गईं। पर उनके द्वारा दी गई यंत्रणा, संत्रास एवं दबाव को झेलने की क्षमता दिखाना, आदि कई स्वरूप उभरकर सामने आ गए थे। वह मानसिक त्रासदी से मुक्त होने लगा था।

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

जयप्रकाश श्रीवास्तव

धूप चुराने आया है
मेरा अपना साया है
उम्र हो रही ख़र्च सभी
पर जीवन ललचाया है
रोटी का लालच मत दे
भूख मेरी सरमाया है
ऋतुओं की मनमानी से
फिर मौसम गरमाया है
जीवन की इस गुत्थी को
कब किसने सुलझाया है
जाने किसकी नज़र लगी
हर गुलशन मुरझाया है
चलो यहाँ से दूर चलें
लगता शहर पराया है

000

हम तुम मिलकर तन्हाई की बात करें
अपनी-अपनी परछाँई की बात करें
पाँव नदी के तट पर डालें पानी में
आज चलो कुछ गहराई की बात करें
पतझड़ की निष्ठुरता से नाता तोड़ें
अब सावन में अमराई की बात करें
दुख के आँगन में ख़ुशियों के गीत रचें
दर्दों के घर शहनाई की बात करें
फैल रहीं हैं जड़ें बुराई की हर पल
आओ हम मिल अच्छाई की बात करें
चाक गिरेबाँ करके जो चुप बैठा है
फिर क्यों हम उस हरजाई की बात करें

000

जयप्रकाश श्रीवास्तव
आई.सी.5 सैनिक सोसायटी शक्तिनगर
जबलपुर 482001
मोबाइल- 7869193927
ईमेल- jaiprakash09.shrivastava@gmail.com

ललित निबंध

अप्प दीपो भव

डॉ. वंदना मुकेश

मैं हर सप्ताह सोमवार को दौड़ने का प्रशिक्षण लेने जाती हूँ। सोलह-सत्रह वर्षीय किशोर-किशोरियों से लेकर पिचहत्तर-अस्सी वर्ष की आयु तक के क़रीब अठारह स्त्री-पुरुष हमारे दल में सम्मिलित हैं। यह प्रशिक्षण प्रत्येक सोमवार की शाम को छह से सात बजे तक होता है। लेकिन छह बजे काफी अँधेरा होता है। हमारे पार्क में काफी बत्तियाँ जली होती हैं किंतु फिर भी कहीं-कहीं बत्तियाँ न होने के कारण कुछ हिस्सों में घोर अँधेरा होता है।

आज हमारी प्रशिक्षक 'मैरी' अचानक बोली कि, let's walk back to the light'। हमें एक बहुत सारी बत्तियों वाले हिस्से से दौड़ आरंभ करके वापस वहीं लौटकर आना था। सबको साथ में रहना है, एक-दूसरे का ख़याल रखना है, किसी को पीछे अकेला नहीं छोड़ना है, अन्य निर्देश थे। अंधकार में ऐसा संभव है कि एक-दूसरे से बिछड़ जाएँ किंतु एक-दूसरे का ख़याल रखने की भावना निरंतर पीछे मुड़ कर देखने को बाध्य करती है। कुछ तेज़ दौड़ाक बार-बार पीछे लौटकर गिनती करते चलते हैं। हमारे दो प्रशिक्षक होते हैं एक दल के आगे और एक सबसे पीछे। मैरी का वाक्य let's walk back to the light' लेकर मेरा मन न जाने किस दुनिया में उड़ चला। शायद अंधकार से प्रकाश की खोज में। हम सभी तो प्रकाश की खोज में जाना चाहते हैं। लेकिन क्या यह इतना सरल है? भगवान् बुद्ध की एक कथा किसी संदर्भ में सुनी थी, आइए आपको भी सुना देती हूँ, कथा कुछ इस प्रकार है-

महात्मा बुद्ध एक गाँव में कई दिनों तक रहे। वहाँ रोज़ शाम को वे सदाचार का उपदेश देते थे और बहुत से लोग नियमित उनके उपदेश सुनने आते थे। एक दिन एक दुर्जन व्यक्ति ने उन्हें परेशान करने की दृष्टि से पूछा कि, "आप लोगों को रोज़ उपदेश देते हैं, एक ही प्रकार की बातें करते हैं, क्या लोग आपकी बात मानकर आपके मार्ग पर चलने लगते हैं? "

महात्मा बुद्ध मुस्कराए, फिर बोले कि, "आप इस गाँव के नहीं लगते, कहाँ से आए हैं?" व्यक्ति ने गर्व से बताया कि वह वैशाली नगर का रहनेवाला है लेकिन वह कुछ वर्षों से उसी गाँव में रहकर व्यापार कर रहा है।

तब बुद्ध ने फिर पूछा, "तो वैशाली का रास्ता तो आपको पता ही होगा।?"

वह व्यक्ति उत्साह से बोला, "हाँ, हाँ! आँख बंद कर के भी बता सकता हूँ।"

महात्मा बुद्ध ने उससे पूछा कि, "क्या आप लोगों को वैशाली जाने का मार्ग बताते है?"

उस व्यक्ति ने फिर गरदन हिलाई, "जी हाँ बहुत लोगों को बताता हूँ।"

बुद्ध ने मुस्कराते हुए पूछा, "फिर तो सभी लोग आपके बताए मार्ग से वैशाली पहुँच जाते होंगे?" अब उस व्यक्ति के चेहरे पर क्रोध छा गया और वह खीजते हुए बोला, "अरे कहाँ, निपट मूढ़ हैं सब के सब! कितनी बार बताने पर भी इक्का-दुक्का लोग ही पहुँचते हैं।"

भगवान् बुद्ध ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं भी यही तो करता हूँ। राह बताता हूँ, बार-बार बताता हूँ, अब कौन मानता है, कितना सुनता है, इस पर मेरा नियंत्रण नहीं है।" वह व्यक्ति पानी-पानी होकर भगवान् बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा।

कितने सुंदर संदेश वाली कथा है। मैं सोचती हूँ कि कितना गहरा सत्य और जीवन का दर्शन छुपा है भगवान् बुद्ध की इस छोटी सी कथा में। हमें माता-पिता, गुरुओं द्वारा बार-बार कोई नीतिपरक बात या साधारण जीवन सूत्र बताया-समझाया जाता है, किंतु कितनी बातों पर हम अमल नहीं करते, कभी अहंकार और उद्दंडता, तो कभी अज्ञानता आड़े आ जाती है। बस इसलिए भगवान् बुद्ध ने कहा, 'अप्प दीपो भव'। अपना दीप स्वयं बनो, स्वयं अपना मार्ग चुनने के योग्य बनो। कोई आपका मार्गदर्शन तो कर सकता है किंतु हमेशा आपके साथ नहीं रह सकता। अंततः हमें स्वयं अपनी बुद्धि-विवेक के आधार पर अपना मार्ग चुनना होता है।

अच्छा आप ईमानदारी से बताइए कि, अपना हित-अहित समझते हुए भी आपने अपनी ज़िद में अपना अहित किया है न? अक्सर ही ऐसा हो जाता है। हम अपने दैनिक जीवन से जुड़े कितने किस्से रोज़ सुनते-अनुभवते हैं। जैसे, कार की पिछली सीट पर भी सीट बेल्ट लगाना आवश्यक है। लेकिन कुछ तो ऐसे होते ही हैं, जो बेल्ट लगाते ही नहीं, या अटका लेते हैं। कितने ही लोग

डॉ. वंदना मुकेश
35 ब्रुकहाउस, वॉलसॉल
WS5 3AE यू के
ईमेल- vandanamsharma@hotmail.co.uk

कभी वोट देने भी नहीं जाते लेकिन सरकार ख़राब है, यह बोलने से बाज नहीं आते। बांग्ला में 'कष्टो बिना कृष्णो नाहीं' मराठी में 'केल्या शिवाय होत नाहीं', अथवा हिन्दी में 'ख़ुद के मरने पर ही स्वर्ग नज़र आता है' जैसी कहावतों का एक ही संदेश है कि कष्ट किए बिना कोई व्यक्ति अपनी इच्छित वस्तु या व्यक्ति के निकट नहीं पहुँच सकता। वह जब तक स्वयं अपना कार्य नहीं करेगा तो कोई दूसरा आकर वह कार्य नहीं करेगा। उसके लिए कर्म उसे ही करना ही होगा। भगवत गीता में स्पष्ट लिखा है – कर्मण्ये वाधिकारस्ते माँ फलेषु कदाचन। हमारे अधिकार में कर्म करना है। इसे समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गीता के अध्याय 2 के ही 50वें श्लोक में श्री कृष्ण कहते हैं 'योग: कर्मसु कौशलम' अर्थात्, कर्म में कुशलता अथवा गुणवत्ता ही योग है। यह कुशलता अथवा गुणवत्ता एकाग्रता से ही आती है। जब व्यक्ति मन और बुद्धि को एक विषय पर केन्द्रित कर देता है। तभी वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। हम सांसारिक प्राणी है तो माया-मोह में लिप्त होना तो स्वाभाविक है लेकिन अपने लिए सीमा हमें स्वयं तय करनी है। विकास और पतन के मध्य की विभाजक रेखा हमें स्वयं खींचनी होगी। वरना एक ग़लत कदम हमें गर्त में ढकेल सकता है।

नया वर्ष आरंभ हो गया है, लगातार नववर्ष के संदेश आ-जा रहे हैं। एक-दूसरे के लिए उत्तम स्वास्थ्य, प्रसन्नता, सुख-शांति की कामना की जा रही है, करना भी चाहिए। लेकिन उस सब के लिए प्रयास तो हमें स्वयं ही करना होगा न। हवाई जहाज़ में परिचारिका आपातकालीन स्थिति में पहले स्वयं को ऑक्सीज़न मास्क लगाने का निर्देश देती है। उसके बाद ही दूसरों की मदद करने का निर्देश देती हैं। सच है, जब हम स्वस्थ और सक्षम होंगे तभी तो अपने आसपास वालों का ख़याल रख सकते हैं। युवावस्था में जब कभी यह सुनती कि 'पहला सुख निरोगी काया, दूजी घर में माया' तो यह समझ नहीं आता था कि नीरोगी काया पहला सुख कैसे हो सकती है, पहला सुख तो पैसा होना चाहिए। यह बहुत बाद में समझ आया कि स्वस्थ रहने के अपने शरीर को पोसना पड़ता है, स्नेह करना पड़ता है। अपरिपक्व उम्र में यह न सोच सकी कि बीमारी किसी को, कभी भी आ सकती है और पैसा न होने पर अस्वस्थ व्यक्ति को किन मानसिक-शारीरिक पीड़ाओं का सामना करना पड़ सकता है। हमारी इच्छाएँ अपार हैं किंतु शेख़चिल्ली की तरह ख़याली पुलाव पकाने से न हमें उत्तम स्वास्थ्य की प्रप्ति होगी, न प्रसन्नता और सुख-शांति ही प्राप्त होगी। इनकी प्राप्ति हमारे कर्मों और कर्मठता से ही हो सकती है। नए साल के संकल्पों और शुभकामनाओं को मोबाइल के सिम की तरह एक बार एक्टिवेट कर के काम नहीं चलेगा, इन्हें फ़ोन की चार्जिंग की तरह रोज़-रोज़ स्वयं को याद दिलाना होगा।

हमारे और प्रकाश के बीच फ़ासला नहीं है। जब हम लाइट जलाते हैं तो वहाँ बिजली पहले से ही विद्यमान होती है, स्विच दबाया कि कमरा प्रकाशित हो जाता है, उसी प्रकार हमारे भीतर भी ऊर्जा सुप्त रूप में अवस्थित है बस उसे जाग्रत करना है। हमारे आसपास का वातावरण नकारात्मकता से भरा है। हम ईर्ष्या, लोभ, मोह, काम, क्रोध के अधीन हैं। सब कुछ है, फिर भी संतोष नहीं है। हमारी भूख कम होने के बजाय बढ़ती ही जाती है। यमन, यूक्रेन, रूस, गाज़ा, इज़राइल, सीरिया में अराजकता अंत होती ही नहीं नज़र आती। समस्याएँ ख़त्म ही नहीं होतीं। रोज़ एक नए देश की चर्चा और उसकी नई-नई समस्याओं की चर्चा! यह 'और चाहिए' की हवस कम ही नहीं होती!

'रक्तबीज की भाँति / समाज में धृतराष्ट्रों की भरमार है / 'और चाहिए.. और चहिये' / की आग में जलते हुए / दुर्योधनों की बाढ़ है।'

अंतत: सब यहीं रह जाता है तो यह आतंक और अतिक्रमण किसलिए? राजे-महाराजे, अमीर-ग़रीब, महायात्रा पर सब खाली हाथ ही जाते हैं। सिर्फ दो गज़ ज़मीन पर, इसी मिट्टी में मिल जाते हैं। क्या आपको नहीं लगता कि अपनी ऊर्जा को सकारात्मक कार्यों में लगाएँ? कुछ नेकी का कार्य करें? किसी को प्रेरणा दें, किसी का पथ आलोकित करें? लेकिन उसके लिए स्वयं अपने पथ को प्रकाशित करना बहुत आवश्यक है। मार्ग पर चलते हुए अनेक उलझनों का सामना करना पड़ सकता है। लेकिन हिम्मत न हारते हुए राह की मुश्किलों का समाधान करते हुए निरंतर आगे बढ़ते जाना है। हमारे वैदिक साहित्य में निरंतर चलते रहने 'चरैवेति-चरैवेति' का संदेश दिया गया है। सच बताइए कि क्या आपने कभी कल्पना की है कि सूर्य ने उगने से मना कर दिया और सुबह नहीं हुई? एक मोबाइल फ़ोन की बैटरी चले जाने से बिन जल की मछली की तरह तड़पने लगते हैं, यदि उजाला न हो तो क्या गत होगी हमारी? प्रकृति में कुछ भी स्थिर नहीं है, सब कुछ निरंतर परिवर्तनशील है तो हम कैसे बैठे रह सकते हैं? जो व्यक्ति कर्महीन होकर व्यर्थ बैठा रहता है, उसका सौभाग्य भी बैठा रहता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए उठकर चल पड़ता है, उसका सौभाग्य भी फिर चल पड़ता है। इसीलिए आप स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं। उठिए और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चल पड़िए। जैसे सूर्य प्रतिदिन प्रकाश और उर्जा लेकर आता है वैसे ही हमारा जीवन भी प्रकाश और उर्जा से पूर्ण हो।

सोहनलाल द्विवेदी की बचपन में पढ़ी एक कविता अब भी निरंतर उर्जा देती है।

'लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती / कोशिश करने वालों की हार नहीं होती / नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है / चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है / मन का विश्वास रगों में साहस भरता है / चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है।'

तो आइए, इस नववर्ष में हम सब मिलकर यही संकल्प लें कि जो ऊर्जा हममें विद्यमान है उसे जाग्रत करना है। 'लेट्स वॉक बैक टू द लाइट' हमें अपने प्रकाश से अपने आसपास को प्रकाशित करना है और जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति यह प्रण ले लेता है कि उसे अपनी दीप स्वयं बनना है तो सारी सृष्टि एक अद्भुत प्रकाश से भर उठेगी। अप्प दीपो भव, अप्प दीपो भव, अप्प दीपो भव।

000

संस्मरण

स्मृति शेष - ज़ाकिर हुसैन

जब ताल-तलैयों की नगरी में जागा ताल के उस्ताद का तिलिस्म

विनय उपाध्याय

विनय उपाध्याय
एम एक्स 135, ई-7, अरेरा कॉलोनी
भोपाल 462016 मप्र
मोबाइल- 9826392428
ईमेल- vinay.srujan@gmail.com

याद एक दरिया है, जिसके किनारे बैठकर समय की लहरों को गिनना गुज़िश्ता दौर के एहसासों को जीना है। 24 जनवरी...साल 2007... भोपाल के बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय का ज्ञान-विज्ञान सभागार। मौसिक़ी के क़द्रदानों का हुजूम। सबकी निगाहें उस लम्हे की मुन्तज़िर थीं जब ताल का फ़रिश्ता अपने साज़ को थामे मंच पर नमूदार हो और तबले पर तिलिस्म जगाती उँगलियों का करिश्माई हुनर 'वाह उस्ताद वाह!!' की दाद के साथ परवान चढ़े। अधीर मन की मुराद अन्ततः पूरी हुई। महफ़िल आबाद हुई। बादामी कुरते-पाजामे में दमकती सूरत और सीरत लिए ज़ाकिर हुसैन की मंच पर जैसे ही आमद हुई, सभागार तालियों से गूँज उठा। जाड़े की गुलाबी रंगत को मानों नया नूर मिल गया। सोलह मात्रा की ''तीन ताल'' पर तबले के बाँए-दाँए ने उमंगों की कुछ ऐसी थापें भरीं कि पेशकार, क़ायदे, टुकड़े, रेले और तिहाइयों में बढ़त लेती उस्ताद की फ़नकारी पर श्रोता निहाल हो उठे। कोई थिरकती उँगलियों के जादू पर फ़िदा था, कोई ताल के गणित का लुत्फ़ ले रहा था, तो बहुत सी नज़रें उस्ताद के घुँघराले बालों की लहराती लटों में उलझी थीं। सब अपनी तरह से हुसैन के रू-ब-रू अपने हसीन ख़्वाब के पूरा होने पर मगन थे। सौम्य मुस्कान के साथ 'सम' पर ठहरा अन्तराल उस्ताद की शिरकत पर चार चाँद टाँक रहा था।

ज़ाकिर हुसैन ऐसी बेशुमार महफ़िलों में मेहताब की तरह रौशन रहे। इस अज़ीम फ़नकार ने हिन्दुस्तान के बाजे को जो इज़्ज़त और शोहरत बख़्शी, संगीत के अतीत में वह सुनहरे अध्याय की तरह पैबस्त रहेगी। वे हमारे संगीत समय में लय लालित्य के अनुपम चितेरे थे। यक़ीनन सदियों में पैदा होते हैं चमन में ऐसे दीदावर। भोपाल से हुसैन का गहरा नाता रहा। पुर-सुकून वादियाँ ही नहीं, इस शहर के संगीतकारों और संस्कारवान श्रोताओं ने भी उस्ताद की तबीयत पर मोहब्बत की मोहर लगा रखी थी। लिहाज़ा जब भी उन्हें भोपाल ने पुकारा, दुनिया के किसी भी कोने में रहे हों, इस महबूब शहर में आने से ख़ुद को रोक न पाए। भोपाल की संगीत बिरादरी उन्हें 'ज़ाकिर भाई' कहकर पुकारती और वे इस प्रेमिल सम्बोधन पर निहाल होते। सारंगी वादक उस्ताद अब्दुल लतीफ़ ख़ाँ, तबला नवाज़ उस्ताद इस्माइल दद्दू ख़ाँ, सन्तूर वादक ओमप्रकाश चौरसिया, तबला वादक पण्डित किरण देशपाण्डे और ध्रुपद के गुन्देचा बन्धुओं से लेकर कवि प्रेमशंकर शुक्ल तथा श्याम मुंशी तक अनेक शख़्सियतें इस अपनापे में शामिल रहीं।

दिलचस्प यह कि ज़ाकिर हुसैन के वालिद उस्ताद अल्ला रखा ख़ाँ को मध्यप्रदेश की सरकार ने राष्ट्रीय कालिदास सम्मान से विभूषित किया। बाद के सालों में ज़ाकिर के हिस्से भी यही सम्मान आया। एक ही वक़्ती दौर में एक ही ख़ानदान की विरासत और उत्तराधिकार के पुरस्कृत होने का यह विरल संजोग है। भोपाल की बड़ी झील की ओर खुलते भारत भवन बहिरंग के मुक्ताकाश में सजे मंच पर पिता और पुत्र ने अपने हिस्से का अलंकरण स्वीकार किया और सम्मान के निमित्त तबला वादन भी किया। भोपाल में बसे अनेक संगीत प्रेमियों को याद होगा जब नौजवान होते ज़ाकिर अपने तबला नवाज़ पिता उस्ताद अल्ला रक्खा के संग अभिनव कला परिषद की महफ़िलों में तबला वादन के लिए चार-छह बरस लगातार आते रहे। सिलसिला बाद के बरसों में भी बना रहा।

इन स्मृतियों को यहाँ साझा करते हुए अपने सौभाग्य पर मुझे नाज़ है कि दोनों (पिता-पुत्र) उस्तादों को मिले कालिदास सम्मान अलंकरण समारोह और उनकी तबले की महफ़िल की उद्घोषणा का ज़िम्मा सूबे के संस्कृति महकमे ने मुझे ही सौंपा था। उन दिनों 'नईदुनिया' जैसे प्रतिष्ठित अख़बार में बतौर कला संवाददाता महत्त्वपूर्ण भूमिका इस जलसे की रिपोर्टिंग की भी थी। 'उस्ताद' से मुलाक़ात और गुफ़्तगू का रास्ता मेरे लिए आसान हो गया था। उस्ताद भारत भवन पहुँचे, उससे पहले होटल ज़हन-नुमा पेलेस में उनसे मुलाक़ात की हसरत पूरी हुई। मुख़्तसर सी यह भेंट मेरे लिए बहुत अहम थी। पाजामा और बनियान पहने ज़ाकिर कमरे में बिछी कालीन पर आसन जमाए थे। उँगलियाँ तबले पर थिरक रही थीं। उनकी आँखों ने मुझे बैठने का इशारा किया। तबले की थिरकन थमी तो हौली सी आवाज़ उठी- ''कैसे हैं हुज़ूर? बताइए क्या

चाहते हैं?" मेरे दो मक़सद थे। एक उद्घोषणा से जुड़ा और दूसरा अख़बार के लिए कुछ सवाल। दोनों ही पूरे हुए। ज़ाकिर हुसैन के लिए कोई भी सवाल बेमानी नहीं। तसल्ली और बेबाकी दोनों ही उनके जवाबों में तैरती रही। उन्होंने जो फ़रमाया उसका सार ग़ौरतलब है- "भारत महान् विरासतों का मुल्क है। यहाँ का संगीत इतना गहरा, बहुरंगी और ज्ञान-विज्ञान से भरा है कि दुनिया की कोई भी बाहरी ताकत इसे नष्ट नहीं कर सकती। दुनिया भर में मैं घूम लिया। भारत के संगीत का गहराता असर मैंने देखा है। यहाँ की नई पीढ़ी के संगीतकारों की प्रतिभा पर सवाल ही नहीं उठता। बेहद शॉर्प हैं आज के कलाकार। समय और संसाधन का सही इस्तेमाल करना वे जानते हैं लेकिन अपनी धरोहर पर नाज़ करना वे सीखें। हमारे पुरखों ने सदियों के बाद यह सब पाया है। लोग मुझे उस्ताद कहते हैं पर मुझे शागिर्द बने रहना पसंद है। शागिर्द रहकर जीवन में बहुत कुछ पाया जा सकता है। देश-विदेश की उड़ान भरते हुए सफ़र के ख़ाली वक़्त में मनचाही पुस्तक पढ़ता हूँ और क्रिकेट मैच चल रहा हो तो नज़रें टीवी पर।"

उस शाम महफ़िल शुरू करने से पहले ज़ाकिर हुसैन ने सुर की देवी सरस्वती और बुद्धि के देव गजानन को नमन किया। वादन के दौरान वे चुटकियाँ लेते रहे। बहरहाल, कलाओं के घर भारत भवन की सालगिरह (13 फरवरी) की शाम ज़ाकिर को सुनने हज़ारों की तादाद में शहरवासी जमा हुए। बहिरंग छोटा पड़ गया। ताल किनारे ताल का उस्ताद अपनी तालीम और तैयारी का जौहर लिए रेलों, परनों और तिहाइयों के रास्तों से गुज़रता उन इलाक़ों में भी गया जहाँ तबले के बोलों में लाल किला, त्योहारी गत, डमरू नाद और घोड़े की टापों से लेकर तिरकिट और किडतक दिचलस्प रूपकों में ढल गए। बेसाख़्ता तालियों और वाह-वाह की आवाज़ों के बीच ठहर गई सी वह फागुनी शाम निश्चय ही भोपाल के तारीख़ी इतिहास में उस्ताद के गहरे दस्तख़त छोड़ गई है।

000

लघुकथा

रानी गोटी

ट्विंकल तोमर सिंह

"माँ, सबके साथ जाने से उनका मज़ा ख़राब हो जाता न?"

"नहीं बेटी, ऐसा नहीं है, वह बात यह है कि..."

"माँ, रहने दो, मैं सब समझती हूँ। मैं विकलांग हूँ न, सबके साथ चढ़ाई चढ़ नहीं सकती....."

"ऐसा न कहो, मेरी बच्ची, तुम तो दिव्यांग हो...'

"माँ विकलांग, विकलांग होता है, दिव्यांग कह देने से कुछ बदल नहीं जाता।" सरोजिनी ने माँ के ऊपर अपना सारा अवसाद उड़ेल दिया। संयुक्त परिवार के सभी लोग पहाड़ों पर घूमने गए थे, पीछे रह गए तो बस सरोजिनी और उसकी माँ। व्हील चेयर पर बैठे बैठे सरोजिनी सुबकने लगी।

माँ के सीने पर धरी सबसे भारी हिमशिला होती है उसकी संतान की लाचारी। इस शिला को पिघला कर ही लाचार को सदाचार सिखाया जा सकता है। मन में उमड़े ग़ुबार को थाम कर माँ ने कहा- "तुम तो बैठे -बैठे कैरम ख़ूब खेलती हो। ज़रा बताओ, कैरमबोर्ड में कौन सी गोटी अलग से चमकती है?"

"यह क्या बेकार का प्रश्न है...."

"बेकार ही सही, बताओ तो..."

"सब जानते हैं... रानी गोटी..."

"दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं। एक जो सम्पूर्ण होते है, दूसरे जो अपूर्ण होते हैं। यह जो अपूर्ण लोग होते हैं न... ये विशेष होते हैं... ईश्वर के बंदे।"

"ईश्वर के बंदे?"

"हाँ, ये अपूर्ण लोग कैरम बोर्ड की काली-सफ़ेद गोटियों के बीच गुलाबी रानी गोटी की तरह होते हैं। ये अलग से इसीलिए चमकते हैं जिससे दूसरे लोग इन्हें देखकर ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होना सीख सकें। उन्हें जो स्वस्थ और पूर्ण शरीर मिला है, उसकी क़द्र कर सकें।"

000

ट्विंकल तोमर सिंह, एम एम एस, 1/7, सेक्टर - A, सीतापुर रोड़ स्कीम,
जानकीपुरम (निकट राम राम बैंक चौराहा) लखनऊ, 226021 उप्र
मोबाइल- 9140862431
ईमेल- twinkletomarsingh@gmail.com

व्यंग्य

खट्टे-मीठे संपादक जी

धर्मपाल महेंद्र जैन

अपने लेखकीय जीवन में मेरा कई संपादकों से पाला पड़ा, उनमें से कई असल के संपादक थे। अब जैसे कुछ उन संपादकों जैसे नहीं थे जो संपादक की जगह केवल अपना नाम देखना चाहते थे। उन संपादकों का भी क्या जज़्बा था, उन्हें लाल स्याही वाला एक अतिरिक्त पेन मिल जाता तो वे सारी दुनिया को ठीक कर देते। जब मेरी कोई रचना अस्वीकृत होती, मैं संपादक के बारे में कुछ ऐसे सोचता जैसे कि संपादक महाज्ञानी हों, चैट जीपीटी की चिप उनके दिमाग़ में फिट हो और वे विकिपीडिया का अद्यतन संस्करण हों। संपादक के बारे में मेरी धारणाएँ बनना छात्र जीवन से ही शुरू हो गई थीं। मैं बी.एससी. कर कॉलेज से निकला तो एक दैनिक में बतौर प्रशिक्षु मेरी ट्रेनिंग शुरू हुई। संपादक जी ने प्रूफ रीडिंग के चिह्न समझाए और हिन्दी का शब्दकोश देखना सिखाया। हॉल के एक कोने में टेबल-कुर्सी मिली और आंचलिक समाचारों का पेज बनाने का काम मिला। तब से मैं ख़ुद को ग्रामीण परिवेश का विशेषज्ञ समझने लगा।

संपादकीय विभाग में काम करने वाला हर शख्स संपादक ही होता है। ऐसे संपादक को कुछ आए या न आए, ख़ुद को विशेषज्ञ कहना तो आना ही चाहिए। डाक छँटती तो कम्पोज़िटर चिट्ठी उठाते और कंपोज कर देते। मेरे प्रशिक्षु संपादक बनने के बाद पोस्ट कार्ड, अंतर्देशीय और लैटरहेड पर आई आंचलिक ख़बरें भी संपादित होने लगीं। मज़ेदार ख़बरें आती थीं। ग्राम फलाना कलां से ख़बर थी कि युग-प्रवर्तक सेठश्री हरीलालजी मिर्चीलालजी के घर अखंड रामायण का पाठ विधि विधान सहित संपन्न हुआ था। इसमें श्री फुंदीलालजी सपरिवार चार, माड़साब कन्हैयालालजी सपरिवार छह..., इस तरह करीब बीस परिवारों के नाम थे। साठ-सत्तर लोगों को दही-केले के प्रसाद वितरण का ज़िक्र था। मैं तब भी संस्कृतिनिष्ठ था। ख़बर में राम का नाम श्रद्धापूर्वक आया तो मैंने ख़बर लगा दी। सामग्री के हिसाब से आंचलिक पेज सबसे ग़रीब पेज होता। विद्वान लोगों के लिए वहाँ पढ़ने को कुछ होता नहीं और जिन लोगों के नाम वहाँ छप रहे होते उनको अपने नाम के सिवाय किसी दूसरे का नाम पढ़ना नहीं आता। यदि आप यहाँ परंपरा की खोज करें तो पाएँगे कि आधुनिक काल के बड़े-बड़े साहित्यकारों को भी अपने नाम के सिवाय दूसरे का नाम पढ़ना नहीं आता है। मैं उस पेज को टाइम्स जैसा तो नहीं बना सका पर ग्राम फलाना कलां में उस दिन हमारे तीस अख़बार बिके।

दूसरे दिन फलाना कलां से नई ख़बर आई। यह श्रमदान की ख़बर थी। लिखा था युगप्रवर्तक नेता श्री हरीलालजी मिर्चीलालजी की अध्यक्षता में गाँववासियों ने सड़क के बड़े-बड़े गड्ढे भरे। इसमें नाम वही थे, बस सपरिवार नहीं लिखा था न बच्चों की संख्या लिखी थी और न ही प्रभु का नाम था। मैंने नेता जी और सारे ग्रामवासियों के नाम काट कर ख़बर को छोटा कर दिया। लिखा ग्राम "फलाना कलां के लोगों ने स्वेच्छा से श्रमदान कर एक किलोमीटर लंबी सड़क की मरम्मत की। यह अनुकरणीय पहल है। ऐसे प्रयत्नों को स्थानीय प्रशासन का सहयोग भी मिलना चाहिए।" मुझे लगा मैंने रचनात्मक ख़बर लिखी थी। उस दिन फलाना कलां से अख़बार का बंडल वापस आ गया। नाम नहीं तो अख़बार नहीं। मेरी रचनात्मक ख़बर का संज्ञान लेने से बीडीओ साहब और सरपंच जी वंचित रह गए।

कुछ दिनों तक काट-पीटकर ख़बरें छोटी करने का यही क्रम चलता रहा। प्रदेश से जितनी

धर्मपाल महेंद्र जैन
22 फार्रेल एवेन्यू, टोरंटो,
M2R 1C8, कनाडा
मोबाइल- 416-225-2415
ईमेल- dharmtoronto@gmail.com

आंचलिक ख़बरें आतीं, डेढ़ पेज में फिट होने लगीं। कम्पोज़िटर कहते और मैटर दो।

'और मैटर नहीं है, किसी का विज्ञापन लगा दो' मैंने कहा।

'आपका दिमाग़ ठीक है, हमें आधे पेज का विज्ञापन कौन देगा?' कम्पोज़िटर ने कहा। हमारा अख़बार सरकार विरोधी था, सरकार तब भी विरोधियों को मुँह नहीं लगाती थी। कबीर न जाने किस गुन्ताड़े में कह गए, निंदक नियरे राखिए। निंदक को कोई अपने पास नहीं फटकने देता, तो विज्ञापन आते कहाँ से! मजबूरी में मैंने अपने अख़बार का ही विज्ञापन बना दिया, "क्या आप माँग कर खाते हो, माँग कर पहनते हो? तो अख़बार माँग कर क्यों पढ़ते हो? आप खरीदकर पढ़ो और अपने अख़बार को मज़बूत बनाओ।" मुझे बड़ा सुकून मिला कि मैं अपने अख़बार को मज़बूत बनाने में मदद कर रहा था। अगले दिन कार्यालय आया तो संपादक जी बोले फलाना कलां का हमारा एजेंट आया था। उसने दो कॉलम ख़बर भेजी थी, तुमने काट कर आधा कॉलम कर दी, क्यों? मैंने कहा फलाना कलां की ख़बर लगभग रोज़ लगती है। उसमें हरीलालजी मिर्चीलालजी कभी राजनेता के रूप में, कभी दानदाता के रूप में, कभी वक्ता के रूप में, कभी फीता काटते हुए उद्घाटक के रूप में होते हैं। मैं फलाना कलां के एजेंट कम पत्रकार को समझा दूँगा कि आगे से इतने सारे नाम लिखने की बजाय श्रमदान जैसी गतिविधि के फ़ोटो भेज दे। लोग ख़ुश हो जाएँगे, हरीलालजी भी ख़ुश, और आंचलिक पेज का गेटअप भी अच्छा हो जाएगा। संपादक जी ने चश्मा उतारा, मुझे घूरा और बोले, "उस गाँव में जो बीस-तीस पेपर जाते हैं हरीलालजी उसका पेमेंट करते हैं। एजेंट धमकी देकर गया है। आगे से नाम काटो तो हमें बिल मत भेजना।" अख़बार चलाने के लिए मैंने नाम काटने बंद कर दिए। हिन्दी साहित्य की जो धुरंधर पत्रिकाएँ बंद हुई हैं वे इस काटने-पीटने के चक्कर में बंद हुई हैं। इसलिए संपादक गण नोट करें, अच्छा संपादक बनने की मृगतृष्णा में पत्रिकाएँ बंद हो जाती हैं। नामों के समूह के आगे सर्वश्री लिखने की परंपरा मैंने तब शुरू की। मैं सब नामों के बाद में 'सर्वजी' भी जोड़ना चाहता था पर संपादक जी ने फटकार दिया।

मैं सालों से सोच रहा था, अपने वर्तमान संपादकों को लिखूँ कि काटना-पीटना बंद करो। इच्छा बलवती होती रही पर यह कहने का साहस नहीं हुआ कि लेखक बड़े भाव से लिखता है, तुम अपना चश्मा लगाकर उसमें क्या ढूँढ़ते हो। रचना में अपने भाव खोजोगे तो अभाव झेलना पड़ेगा। मुक्त मन से रचना पढ़ो और आनंद उठाओ। चीरफाड़ करने से न रचनाएँ ज़िंदा बचती हैं और न पत्रिकाएँ। पर संपादक नस्ल ही ऐसी है कि जब वे टेबल पर बैठते हैं उनका दिमाग़ मित्रवत् नहीं रहता। आपने ठीक पढ़ा, वे टेबल पर बैठते हैं, कुर्सी पर उनका शरीर बैठता है और उनकी आत्मा रचना में घुस जाती है। उस शतरंज की बिसात पर संपादक घोड़े जैसा चलता है। आप हाथी हों या वजीर, आपकी बेखटके पिटाई हो सकती है। आप ख़ुद को साहित्य का राजा समझते हों तो आपको शह और मात सुनने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

एक अन्य संपादक जी छोटी-छोटी ग़लतियों के प्रति भी अति संवेदनशील थे। राजधानी एक्सप्रेस की गति-सी तेज़ उनकी निगाहें किसी ग़लती पर रुकती तो प्रूफ़रीडर को पूरा पेज फिर से चेक करना होता। एक दिन उनके टेबललैंप का बल्ब फ्यूज़ हो गया। आप दोबारा पढ़ लें, मैंने टेबललैंप ही लिखा है, दिमाग़ नहीं। उन्होंने सॉकेट तक की वायरिंग चेक करने का उपक्रम करते हुए अपनी घरेलू संपादिका कम टायपिस्ट से कहा, सुप्रिये तुम ज़रा बल्ब बदलो दो। सुप्रिये ने तुनक कर कहा- आप ही बदल लीजिए, इसमें कौन अकल का काम है। संपादक जी बचाव मुद्रा में अनुनय करते हुए बोले- तुम बदल दोगी तो मेरे लिए 'चेक' करना आसान हो जाएगा।

य़ह किस्सा एक बहुचर्चित संपादक का है। उन्हें मित्र कहो तो वे नाराज़ हो जाते हैं। वे बड़े भुलक्कड़ हैं। जब उन्हें मेरा नाम याद आना चाहिए तब केवल मेरी शक्ल याद आती है। उनके कक्ष में टेबललैंप प्रकाशवान है, शेष कक्ष में घनघोर अँधेरा है। कक्ष के बाहर से सिर्फ उनका चिंतक चेहरा नज़र आता है। आप उनसे मिलने भीतर जाओ तो अँधेरे से मिलकर आ जाओ। संपादक जी के पास बिल्कुल समय नहीं है। वे समय को असमय बनाने की कला जानते हैं। वे डेडलाइन के बड़े पक्के हैं। अपनी 'डेड' लाइन भले ही उन्हें न मालूम हो, सबकी डेडलाइन वे ही तय करते हैं। और हम बेचारे लेखक, किनारे बैठ छप-छप करते हैं पर छपते नहीं है। लेखक को तैरना आता तो वह किनारे पर क्यों रहता। संपादक लेखक को परत दर परत उधेड़ने और उखाड़ने का काम करते हैं। व्यंग्य लिखने में तो और भी बंदिशे हैं, व्यंग्य को सीमित रखना पड़ता है। जितना ज़ोर से मार सकते हो मारो, पर सारा लिखा पाँच सौ शब्दों में फिट हो जाए। व्यंग्य छोटे चुटकुलों जैसे होने लगें तो बोरियत भरे लगने लगते हैं।

मैं जितने संपादकों को याद कर पा रहा हूँ वे सब चश्मा लगाते हैं। इससे एक बात सिद्ध होती है कि ह्रस्व और दीर्घ का अंतर पकड़ना हो तो चश्मा ज़रूरी है। जितना मोटा ग्लास होगा उतनी बारीक पकड़ होगी। कुछ संपादक नियमित रूप से फ़ोन करके बताते हैं कि मुझे किस विषय पर लिखना है। उनमें विचार ऐसे भरे होते हैं कि समय-समय पर उन्हें नहीं निकाला जाए तो संपादक जी को विचारों का अजीर्ण हो जाए। वे 'पंच' व वाक्यांश से लेकर टैग लाइन तक बताते हैं। पाँच सौ शब्दों की व्यंग्य रचना में उनके दो सौ शब्द घुसे हों तो रचना स्वीकृत हो जाती है। हर संपादक की पसंद के कुछ ही लेखक होते हैं। वे उन्हें क्रिसमस ट्री जैसे सजा-धजा कर साल में एक बार तो छापते ही हैं। आमतौर पर नए लेखक विराम चिह्नों का उपयोग करने में कंजूसी करते हैं। यह उन दिनों का किस्सा है जब लेखकगण शाम को अपनी रचना लेकर संपादक जी के अड्डे पर पहुँच जाते थे। मैंने और मेरे मित्र लेखक ने संपादक जी के सामने अपनी ताज़ा रचनाएँ रख दीं। मेरे लेखक साथी केवल पूर्णविराम लगाना जानते थे। पूरे आलेख में कहीं 'कॉमा' नहीं थे। संपादक जी उन्हें समझाते हुए बोले, तुम कोमा नहीं जानते

क्या! मित्र ने कहा - सर कोमा बहुत घातक स्टेज है, किसको हुआ है, उसमें कुछ मालूम ही नहीं पड़ता। संपादक जी ने अपना सिर पीट लिया, कोई और तरह का दफ़्तर होता तो बॉस ऐसे कर्मचारी की पिटाई करवा देते। फिर मेरा नंबर आया। व्यंग्य देख कर संपादक जी बोले - "यह बहुत बड़ा है, इसे छोटा कर दो।"

"सर, कितना छोटा कर दूँ?" मैंने विनम्रता से पूछा।

"जितना तुम्हें समझ में आ सके।" वे कटाक्ष मारते हुए बोले।

"सर, मुझे तो पूरा समझ में आ रहा है, जहाँ आपको समझ में नहीं आ रहा हो, मैं समझा देता हूँ।" मैंने मायूस हो कर कहा।

"चलो छोड़ो। मैं तो पाठकों के हिसाब से सोच रहा था। इसे रविवारीय अंक में पूरा ही छाप देंगे, वहाँ इतनी जगह मिल जाएगी।" वे बोले।

वे मानते थे कि जिन लेखकों को सही मात्रा लगानी नहीं आती, वे नौसीखिए ही रहेंगे। केवल बूढ़ा होने से कोई लेखक बड़ा नहीं हो जाता। वाक्य में ज़बरदस्ती फँसाये गए शब्दों को वे घुसपैठिये मानते थे और तत्काल काट-पीट देते थे। संपादन कला के इतिहास में उन संपादक श्री का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। संपादक गण हमेशा पाठकों के हिसाब से सोचते हैं। उन्हें शीर्षक आकर्षक और मस्त चाहिए। वे मानते हैं कि ख़बर या रचना में दम कम हो तो चलेगा, पर दम शीर्षक में होना चाहिए। पाठक बड़ी फॉण्ट में लिखे शीर्षक पहले पढ़ते हैं, नीचे की सामग्री पढ़े जाने की नौबत तो बाद में आती है। वे मुखपृष्ठ की बहु प्रसारित ख़बरों के शीर्षक इतने पावरफुल और अनूठे चाहते हैं कि कोई और अख़बार उन ख़बरों के वैसे शीर्षक नहीं दे सके। संपादक गण इतनी चाय पीते हैं कि ख़ून की जाँच के लिए निकाले गए उनके ख़ून में आधे से अधिक चाय होती है। अब आप यह न कहना कि कुछ संपादकों के नाम बताओ। पाठकों के बीच यह कौतुहल बना रहना चाहिए कि मैंने यह किन-किन संपादकों पर लिखा है।

000

लघुकथा

बुझी हुई मोमबत्ती

डॉ. मृदुल शर्मा

बाईस वर्षीय एम.बी.ए.की छात्रा सुनयना के विश्वविद्यालय से घर लौटते समय अपहरण, फिर कार में ही कई गुंडों द्वारा उससे समूहिक बलात्कार और उसके बाद निर्दोष कन्या की नृशंस हत्या की घटना पूरे शहर में चर्चा का विषय बनी हुई थी। कोई सरकार को सख़्त क़ानून न बनाने के लिए कोस रहा था तो कोई न्यायालय की तारीख़ पर तारीख़ वाली व्यवस्था को कोस रहा था। अधिकांश लोग अपराधियों की अब तक गिरफ़्तारी न होने के कारण पुलिस को कोस रहे थे।

कुछ सामाजिक संगठनों ने इस घटना के विरोध में सायं छह बजे से शहर की मुख्य सड़क पर कैंडल मार्च निकालने की घोषणा की, जिसमें इन संगठनों के साथ अनेक नागरिकों और राजनीतिक दलों के कार्यकर्ताओं ने भी भाग लिया। गांधी जी की प्रतिमा के सामने पहुँच कर यह प्रदर्शन समाप्त हुआ तो एक युवती ने माइक से अपील की -

"आप लोग अपनी अपनी बुझी हुई मोमबत्तियाँ कृपया मुझे वापस कर दें।"

उसका निवेदन सुनकर एक प्रौढ़ व्यक्ति बोला -"इन बुझी हुई मोमबत्तियों का क्या करोगी?"

"आप लोग यहाँ से अपने-अपने घर वापस लौट जाएँगे और आज की इस दारुण घटना को भूल जाएँगे। इसका लाभ उठा कर फिर बलात्कारी दरिंदे किसी दूसरी सुनयना को अपनी राक्षसी हवस का शिकार बनाएँगे। तब हम इन मोमबत्तियों को फिर जला कर ऐसे ही मार्च निकालकर अपने फ़र्ज़ की अदायगी कर लेंगे।"- कहते कहते वह युवती क्रोध जन्य उत्तेजना से हाँफने लगी।

उसका उत्तर सुनकर भीड़ का सिर शर्म से झुक गया।

000

डॉ. मृदुल शर्मा , 569 क/108/2,
स्नेह नगर, आलमबाग, लखनऊ -226005
मोबाइल- 9956846197
ईमेल- mridulsharma1952@gmail.com

तुर्की यात्रा

प्रतिभा अधिकारी

"तुर्की" नाम भूगोल के साथ पढ़ा था पर जैसे ही भूगोल छूटा नाम भी बिसार दिया गया। ग्रेजुएशन के दिनों में जब यूरोपियन इतिहास पढ़ा तो इस शब्द की आवृत्ति भी बार-बार हुई पर सच कहूँ तो मुझे इस नाम से न लगाव हुआ न ही इस देश को अधिक जानने की इच्छा! हुआ यों कि हैदराबाद में बच्चों के पास कोविड पीरियड में हम दोनों पति-पत्नी ने कुछ टर्किश धारावाहिक देखे, पारिवारिक मूल्यों से भरपूर, आबोहवा और सुंदर लैंडस्केप से भरी इस जगह को देखने की इच्छा बलवती हो गई। सोचा था बच्चों के साथ ही इस जगह के सौंदर्य को जानेंगे पर अचानक ही हम बहनों का यहाँ भ्रमण का प्रोग्राम बन गया और पाँच जन पहली बार एक इस्लामिक देश में पर्यटन को निकल गए।

राजनीति के फ़लक पर यह सर्वविदित ही हैं कि तुर्की हमेशा पाकिस्तान के साथ रहता है। मुझे इस बात का अंदेशा भी था कि इस्लामिक देश का भ्रमण मेरे कई रिश्तेदारों और दोस्तों को अवश्य खलेगा कि हम भारतीय होते हुए उस देश की इकोनॉमी में इज़ाफा कर रहे हैं पर इस प्रकार की संकीर्णता को परे हटा; हमने वहाँ की आबोहवा और जगहों को एक्सप्लोर करने का मन बना लिया। इस देश की भूमि पर सबसे पहली जगह; जहाँ हमारे क़दम पड़े वह जगह थी - इस्तांबुल।

इस्तांबुल को पहले-पहल पत्रिकाओं और फ़िल्म में देखा था फिर धारावाहिक देखते हुए, अंतालिया, बोड्रम, इजमिर, कपाडोकिया से मित्रता हो गई। टर्की जाने के लिए अपनी फ्लाइट सुबह साढ़े पाँच बजे की थी। दिल्ली में रात्रि इमिग्रेशन पैसेज पर इतनी भीड़ थी जैसे कोई मंदिर का प्रांगण ! रात्रि ग्यारह बजे इंदिरा गांधी अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट पहुँचे हम लोग बोर्डिंग - इमिग्रेशन के रूल्स पूरा कराकर अब ऊँघ रहे थे। यह समय बिताना मुश्किल था। भीतर प्रत्येक गेट-पैसेज पर बहुत भीड़ थी। ख़ैर टर्की जाने का समय आ गया और प्लेन चल पड़ा। प्रात:काल के समय सोने की कोशिश में कुछ नींद आई पर टेढ़ी कमर और टेढ़े सिर को झुकाकर-भटकाते हुए पौने नौ बज गया होगा। अभी हमारी घड़ियाँ भारतीय समय के साथ ही सेट थी। धरती पर धूप की चमक फैली थी और बादलों का नामोनिशान न था।

अब शायद प्लेन धरती से ऐसी ऊँचाई पर था कि मुझे नीचे रेत की पहाड़ियाँ दिख रही थीं। ये पहाड़ियाँ इतनी कोमल प्रतीत होती थीं जैसे किसी ने सिल्क के सलेटी दुपट्टे को लहराकर स्टिल लाइफ़ आर्ट के चित्र बनाने को रखा हो। मुझे हर बार विंग्स वाली विंडो ही क्यों मिलती है !! मैं पूरा-पूरा भाग एक ही स्ट्रोक में नहीं देख पा रही थी। यह रेतीला भाग ईरान-इराक का रहा होगा। टर्की आने से पहले इसी रूखे से भाग में दो शहर भी नज़र आए और कुछ जल की छाँह भी।

मैं विमान की खिड़की में सिर टिकाए नीचे छूटती जगहों को भली-भाँति देखना चाहती थी पर सोच रही थी; कब आएगा हमारा गंतव्य ! यह बिना रुके यानी सीधी फ्लाइट थी। गर्दन, कंधों और हाथ-पैरों की सिकुड़नों को रह-रहकर दूर करने के बाद फिर बाहर झाँका तो समुद्र के साथ इस्तांबुल ने दर्शन दे दिए और सारी थकान फुर्र हो गई ! अहा ! नीला-सलेटी समुद्र का पतला भाग और उस पर तैरते क्रूज़ ! हमने साढ़े चार हज़ार किलोमीटर का सफ़र तय कर लिया था। शायद भारत के समयानुसार सुबह के सवा ग्यारह बजे थे।

प्रतिभा अधिकारी
अपर्णा सरोवर जेनिथ, ब्लॉक न. आई 2001, गच्चीबौली, नल्लागंडला- 500019, हैदराबाद, तेलंगाना
मोबाइल- 7839319549
ईमेल- pratibhaadhikari1964@gmail.com

तुर्की की धरती

पहले से ही बुक की हुई एक सुंदर वी.आई.पी टाइप वैन हम पाँच जनों को लेने आई थी। अति उत्साह में वैन का नाम भूल गई, यह वही वैन थी जिसका चित्र हमारे बुकिंग पेपर्स में था। नई, चमचमाती हुई सीट, ऊपर सनरूफ़ और काले शीशे वाली इस गाड़ी में बैठते ही और गाड़ी के होटल की ओर रवाना होते ही हमने शीशों से बाहर की विदेशी भूमि पर अपने नेत्र-द्वय टिका लिए। स्वच्छ चौड़ी सड़कें, हल्की मेहराब सी कुछ पहाड़ियाँ, चीड़ के छोटे–छोटे पेड़, अब आबादी शुरू हो गई यानी घना शहर, पीली रंग की फिएट टैक्सियाँ, चमकती-दमकती गाड़ियाँ ! हमारा होटल आ गया। हमारा होटल 'क्राउन प्लाज़ा' हर्बिय ज़िले में था। होटल पहुँचकर नहाने-भोजन के पश्चात् हम सब फिर नीचे डाइनिंग एरिया में बैठे रहे।

जब मनुष्य सभ्य नहीं हुआ था तो उसने भूख की ललक के चलते अनाज तो पहचान लिए थे पर कुछ बर्तनों का आविष्कार अभी बाक़ी था तो उसने आटे के डो बनाकर उसे यूँ ही भट्टी में या लकड़ी में लपेटकर पकाना शुरु किया और उसे इसमें स्वाद आने लगा। भली-भाँति आटा गूँथकर दोनों तरफ से सेंककर और फिर आँच में पकाकर रोटी; शायद हमारे देश भारत में ही खाई जाती है। अधिकतर इस्लामिक देश या अपना सहोदर पाकिस्तान भी तवे में अल्टाई-पल्टाई रोटी ही खाता है। अधिकतर देश ब्रेड ही खाते हैं। होटल क्राउन प्लाज़ा तुर्की में रोटी के नाम पर करीब बारह तेरह प्रकार की बेक्ड रोटी/ ब्रेड थी।

पहले दिन वहीं आसपास पैदल घूमकर मौसम और विदेशी भूमि का जायज़ा लिया। रात्रि, दोपहर भारतीय पर्यटकों के लिए ख़ास बुफे/ बफे लगे थे पर यह टूर ऑर्गनाइज़र द्वारा और ख़ास रसोइयों की देखरेख में तैयार थे।

आया /हाया सोफिया

दूसरे दिन प्रात: हम सब पाँचों जन के लिए एक पंद्रह या बारह सीटर ट्रेवलर गाड़ी खड़ी थी जो फुल एसी थी। रास्ते में चौड़ी

सड़कें, पतली सड़कें, अँगूरनुमा बेलें और काले अंगूर की असली बेलों वाले रंगीन होम स्टे और होटलों से बाकी मुसाफ़िरों को लेकर वह गाड़ी एक स्लोप वाली जगह में जाकर रुक गई। यहाँ एक क़रीब पचास वर्ष के गाइड हमारे सामने थे, जो अपने हाथ में एक लंबी छड़ी में कुछ काले–लाल रिबन-झंडे लगाए हुए थे। असल में यह समूह के मुसाफ़िरों के लिए था जिससे कि उनको अपना समूह पहचानने में दिक़्क़त न हो। कुछ जन उस जगह से और बाकी हमारी गाड़ी वाले मुसाफ़िर उस गाइड के पीछे चल पड़े। लगभग आधा किलोमीटर चलने के बाद हम एक बड़े दालान और स्मारक के सामने थे। चारों ओर समीर की ठंडी नाम सुबह थी और जंगली पाँगर, स्थानीय वनस्पति की प्रचुरता सुषमा बिखेर रही थी। यहाँ आया / हाया /

हागिया सोफिया मस्जिद के लिए अचानक से कई समूह दिख पड़े जो पंक्तिबद्ध थे। जूते उतार कर मस्जिद में प्रवेश किया। भीतर दो बड़े नक़्क़ाशी वाले प्राचीन भव्य दरवाज़े थे।

प्रवेश करते ही छतों दीवारों पर प्राचीन भित्ति चित्र कला और प्राकृतिक रंगों से बनी कला के नमूने थे। भीतर विशाल हॉल और बड़ी तेरह–चौदह फीट लंबी-चौड़ी पत्थर की टाइल्स वाली दीवारें मोहक थीं। कुछ स्तम्भों में मुस्लिम क़ब्ज़े के बाद बड़े–बड़े गोल आकारों की आकृतियों पर हरे रंग के बेस में श्वेत रंग से लिखीं शायद क़ुरान की आयतें थीं। बड़े और भव्य झूमर मस्जिद को अजब–सम्मोहक आभा प्रदान कर रहे थे। आया सोफिया पूर्वी रोमन साम्राज्य द्वारा चर्च के रूप में बनाया गया भवन था, जो पाँच सौ सैंतीस में बनकर तैयार हुआ। यह रोमन कैथेड्रल था पर बाद में ओटोमन तुर्कों द्वारा इस पर क़ब्ज़ा हुआ और यह पहले संग्रहालय और बाद में पूर्णत: मस्जिद में तब्दील हुआ। इसकी बाकी बाहरी मीनारें बाद में बनाई गई हैं। सन् चौदह सौ के आसपास यह मस्जिद थी। संग्रहालय बनने और फिर बीसवीं शताब्दी में यह फिर मस्जिद बना दी गई। अब यहाँ नमाज़ भी पढ़ सकते हैं। कई पर्यटक यहाँ नमाज़ भी पढ़ रहे थे। हाया सोफिया की सुन्दरता नेत्रों में बसाए हम सब वापस गाइड की शरण में थे। अब ब्लू मास्जिद को देखना था पर वहाँ मरम्मत कार्य के चलते नहीं देखी गई। इस बीच वहाँ के विशाल प्रांगण में गर्म सिंके हुए चेस्ट–नट खाए और ठेलों पर बिकते बीगल बन का आनंद लिया। यहाँ इस समय गुनगुनी सी सर्दी थी। बीगल बन - न ! नहीं ! ये सिंगल रिंग होते हुए भी सिंगल नहीं हैं; दीदी ने चुटकी लेते हुए कहा, दरअसल हम लोगों में से जो कुमाऊँनी जन हैं; उन्होंने इसे अचकचाकर देखा होगा। हमारे कुमाऊँ के सिंगल तो नाम के सिंगल होते हुए ट्रिपल रिंग यानी तीन-तीन वर्तुल लिए हुए जुड़े रहते हैं। यह बहुधा दीवाली पर ही बनने वाला व्यंजन है।

"हाया सोफिया" जाते वक़्त जब हम पंक्तिबद्ध रूप में प्रतीक्षारत खड़े थे तो टाइम

पास करने के लिए एक इंडोनेशियन समूह के कुछ सदस्य बाएँ खड़े शीशे के ठेले से इनको ख़रीद रहे थे। मैंने नोटिस किया यह सादा बीगल नहीं बल्कि बीच में चॉकलेट भरा हुआ था जबकि हमारे होटल में इनको नाश्ते के लिए कई टुकड़े में काटकर सादे रूप में रखा गया था।

हम लोग गाइड के जाल से बँधे थे। देखते –देखते लंच का समय हो गया था, गाइड ने एक स्थानीय रेस्तराँ में सबको बिठाया। हम सबको यहाँ छोटी राजमाँ जो उबली रंगत के साथ केवल टमाटर सॉस में बनी थी और हरी सरसों की पिसी हुई सब्ज़ी/ शाक था जो मोटे रेसोटो के लिए उपयुक्त चावलों के भात के साथ परोसा गया था। अंत में बेयरा सबके लिए कुछ टुकड़े अमेरिकन मुसम्बी यानी ऑरेंज / माल्टा के काटकर रख गया। यह स्वादिष्ट थे। अब हमारा छोटा समूह फिर गाड़ी में था।

बोस्फोरस समुद्र और सांयकालीन क्रूज़ की सवारी

बोस्फोरस तुर्की का वह भाग है जहाँ समुद्र का एक छोटा हिस्सा है जो यूरोप और टर्की को पुलों द्वारा जोड़ता है। यहाँ ओर्त्कोय मस्जिद बनी है जो पर्यटकों को आकर्षित करती है और किनारे से कई–कई छोटे–बड़े क्रूज़ पर्यटकों को समुद्र की सैर कराते हैं। क्रूज़ में क़रीब दो-तीन सौ जन होंगे। इस क्रूज़ ने हमें टर्की के प्रसिद्ध पुल बोस्फोरस के नीचे से ले जाते हुए वापस एक चक्कर लगाया। यहाँ के पंचसितारा होटल और प्रसिद्ध सिराजन पैलेस दिख रहे थे। क्रूज के बाद हमें एक-दो किलोमीटर दूरी पर एक पहाड़ी पर ले जाया गया जहाँ से समुद्री एरिया 'गोल्डन हार्न' का सायंकालीन दृश्य देखा, यह दृश्य समुद्र में हॉर्न की भाँति तस्वीर बनाता है जहाँ ढलते सूरज की सुनहरी रश्मियाँ इसे गोल्डन रूप देकर 'गोल्डन हॉर्न' बनाती हैं। यहाँ हमें केबल कार की सवारी भी कराई गई थी। केबल कार की सवारी कर नीचे उतर आए।

गोल्डन हॉर्न

गोल्डन हॉर्न (प्राचीन यूनानी क्रिसोकेरस, लैटिन) एक प्रमुख जलमार्ग है। तुर्की का जो

समुद्र का एक पतला भाग इस्तांबुल का प्रवेश द्वार है वह बोस्फोरस है। यही बोस्फोरस इधर तुर्की को यूरोप से विभाजित करता है। यूरोप के भाग को जोड़ने के लिए इसमें कई पुल हैं। बोस्फोरस एक ओर मरमरा सागर से भी मिलता है। गोल्डन हॉर्न का यह भाग ऐतिहासिक और भौगोलिक रूप से मुख्य शहर इस्तांबुल को बाकी हिस्से से अलग करता है। इस भाग को शरणस्थली के रूप में भी जाना जाता है; इतिहास गवाह है कि यूनान, बैजन्तीन, रोमन आदि समुद्री व्यापारिक जहाज़ों को इस भाग ने आश्रय दिया। उस ऊँचाई से हमें साँझ का गोल्डन हॉर्न यानी समुद्र का वह हिस्सा जो सींग की भाँति है और जिसमें सूर्य किरणें सुनहरा रूप प्रतिबिम्बित करती हैं। इस लिए इस जगह को गोल्डन हॉर्न कहते हैं। इस पहाड़ी पर भी छोटे-मोटे रेस्तराँ

और सोवेनियर की दुकानें थीं। यहाँ भी सोवेनियर इठलाते हुए पर्यटकों को ललचा रहे थे। यह भू-भाग मुझे नैनीताल–भीमताल की पहाड़ियों का स्मरण करा रहा था।

ग्रैंड बाज़ार तुर्की

आज का दिन ग्रैंड बाज़ार के लिए सुरक्षित था। "कपालिकार्सी" का अर्थ है कवर किया हुआ बाज़ार ! यह दुनिया का प्रथम मिली/ इकट्ठी हुई दुकानों वाली जगह है यानी दुनिया का प्रथम मॉल। यह बाज़ार करीब पाँच सौ वर्ष पुराना है। यहाँ कवर्ड लगभग चार हज़ार दुकानें हैं। जानकारों का मानना है कि यूरोप की सस्ती जगह होने के कारण यहाँ प्रतिदिन ढाई लाख से चार लाख तक पर्यटक आते हैं। इन सभी दुकानों में घूमना संभव नहीं था पर तीन घंटे के भीतर हमने कई दुकानों का दौरा किया। दुनिया के बड़े शहरों में गिने जाने वाले इस्तांबुल के ग्रैंड बाज़ार में सुबह नौ बजे से लेकर दिन के दो बजे तक जितना विंडो शॉपिंग कर सकते थे ; की गई पर कुछ ही सामान ख़रीदा गया।

कपाडोसिया के लिए प्रस्थान

इस्तांबुल में तीन दिन हो चुके थे, जितना घूमना था घूम लिया था। नियत समय गाड़ी लेने आ गई, पिछले तीन दिनों की भाँति सुबह ठंडी हवा थी। ग्यारह बजे फ्लाइट कपाडोसिया के लिए उड़ चली। अरे वाह ! एक झपकी क्या लगी कपाडोसिया पहुँच गए! हम पाँचों रोमांचित थे।

कपाडोसिया टर्की का मध्य भाग है, जहाँ मीलों लंबे रूखे-मैदान, शंकु के आकार यानी शंक्वाकार चट्टानें हैं। इन चट्टानों से मिट्टी-रेत निकल चुकी है पर ठोस रेतीली मिट्टी से बनी चट्टानों के कुनबे पूरे-पूरे गाँव की भाँति लगते हैं। मुख्य सड़क से आते हुए हमें तुर्की की राजधानी "अंकारा " का बोर्ड भी दिखा था; हूक सी उठी काश ! अंकारा भी जा पाते ! क्या है आख़िर यहाँ ! रेतीली मिट्टी, एकाध वृक्ष, अंगूरों की बेलें ! बस ! फिर भी इस स्थान के लिए पर्यटक इतने बेताब क्यों रहते हैं भला ! क्योंकि वहाँ की सरकार, मुट्ठी भर जनता ने इस स्थान को आकर्षक बना दिया है। हम जिस आबादी वाले स्थान में थे उसका

नाम गोरीम था। यहाँ होटल के आसपास ही पुलिस का एक बड़ा सा कार्यालय था; वहाँ लगे बोर्ड को देखकर मैंने संज्ञान लिया। तीन बजे लंच के बाद हम वहाँ मार्केट घूमने गए थे हालाँकि हमारे टूर प्लानर ने वहाँ हमें ओपन एयर म्यूज़ियम के बारे में बताया था पर मेरे साथ के बाकी यात्रियों को वहाँ जाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

मैंने और दीदी ने लंच के बजाय तीस-तीस लीरा में भुट्टे ख़रीदे और वही खाए। हल्की बारिश ने वहाँ की मुल्तानी मिट्टी के रंग जैसी मिट्टी को गीला कर रखा था। मौसम नम और ठंडा था। नीचे बाज़ार छोटा था पर वहाँ इस्तांबुल बाज़ार जैसे गिफ़्ट, सोवनिअर लगभग सभी छोटे-बड़े आयटम और आकर्षक गलीचे थे। इस बाज़ार के ऊपरी हिस्से वही मंदिरों जैसी पहाड़ियों से घिरे थे। हम सबका पहाड़ी मन ऊपर टॉप पर जाने को उल्लसित हो उठा और तिरछी चढ़ाई चढ़ते हम लोग ऊपर की पहाड़ियाँ घूम आए। इन शंक्वाकार पहाड़ियों को काटकर वहाँ के बुतकार (यहाँ बुतकार मैंने पहाड़ी टर्म में लिखा है जबकि यह भी उर्दू या फ़ारसी का शब्द है) जनों ने होटलों में तब्दील किया है और विदेशी पर्यटकों की सुविधा का इंतज़ाम भी किया है। इन होटलों को देखकर मुझे भूले-बिसरे अलीबाबा, मरजीना याद हो आए। नीचे शो रूम और रेस्तरां के आगे एक-एक आड़ू का पेड़ देखकर हैरानी हुई जिसमें आड़ू भी लगे थे। यह पेड़ कितनी मुश्किलों से लगाए और जिलाए गए होंगे सोचकर मैं पेड़ लगाने वाले की जिजीविषा पर क़ुर्बान हो गई।

अरबोरियो / तुर्किश या रिसेटो वाले चावल भरे बैंगन, टमाटर, ब्रेड, ग्रिल सब्ज़ी, चीज़, मक्खन हमें अब रात्रि को तो बिल्कुल भी खाने का मन नहीं था। हमारे होटल ने हमें एक भारतीय रेस्तराँ सुझाया; जो एक किलोमीटर दूर था। 'India Gate Restaurant' वाओ ! टर्की में अपने देश का नाम देखकर मन कितना मुदित था बता नहीं सकती ! पिछले चार दिनों से भारतीय भोजन न मिलने से पैदा हुई भुखान अब चरम पर थी। रेस्तराँ पर्यटकों से भरा था, कुछ फ्रेंच पर्यटक

समोसा ऑर्डर कर रहे थे कुछ मुँह पानी के बताशों से भरे थे। एक युवा हिन्दी बोलते आया। मेरे मुँह से निकला "यह हिन्दी कौन बोल रहा !"

"मैं बोला मैम" कहता हुआ वह युवक सामने था। भोजन का ऑर्डर देना छोड़ जैसे बिछड़े भाई से मिली हूँ, मैंने पूछा -

"इंडिया से हो?"

"नो मैम अफ़गानिस्तान से"

"फिर इतनी हिन्दी कैसे आती ?" चौंकते हुए बोली।

"बोलते-बोलते आ गई।" होटल का युवा मैनेजर और युवा लंबी लड़की प्रत्येक की टेबल पर व्यक्तिगत रूप से जाकर मेन्यू देख रहे थे साथ ही उनकी रेस रेस्तराँ के किचन की ओर भी जारी थी। पूछने पर पता चला लड़की तुर्किस्तान की थी और लड़का लद्दाख का !

दोनों यहाँ के विश्वविद्यालय से 'इंटरनेशनल रिलेशन' में पी.ऍचडी कर रहे थे; फिर क्या था सामान्यत: कम बोलने वाले मेरे पतिदेव को टॉपिक मिल पड़ा और उन्होंने दोनों बच्चों की लगभग क्लास ही ले ली। दोनों बच्चे ख़ुश दिखे, लड़का तो हिन्दी बढ़िया जानता था पर लड़की केवल इंग्लिश बोल रही थी। उस दिन दालचीनी की ख़ुशबू से सराबोर हिंदुस्तानी भोजन खाया गया और तृप्त होकर बाहर निकले।

सामने नुक्कड़ पर एक बच्चा आइसक्रीम पार्लर लगाए हुए था। मुझे तुर्किश तरीक़े से आइसक्रीम सर्व करने वाले पर बड़ी कोफ़्त होती है पर चट-चटी कम क्रीमी आइसक्रीम ठंड में शौक से खाई गई। आइसक्रीम में शायद शर्करा की जगह शहद पड़ा था। आइसक्रीम बेचने वाला किशोर उम्र का बच्चा मेरी दीदी की बिंदी देखकर माधुरी दीक्षित और हिन्दी फ़िल्मों का ज़िक्र करने लगा और प्रसन्न दिखा। पैदल ही चलते हुए अब हम होटल वापस आ गए।

The valley of beautiful horses, Kaymakli और Ehlara घाटी देखने के बाद यात्रा के अंत में मध्य टर्की की घाटियों से रू-ब-रू होकर हम अपने होटल ऑटोमन केव में हाज़िर थे। एक बात बताती चलूँ कि टिप लेने में तुर्की वाले महा-होशियार हैं ख़ासकर प्राइवेट चालक जन ! एयरपोर्ट से आते-जाते वक़्त भी उनको टिप दी गई थी। अंग्रेज़ी का "मनी-मनी" शब्द उनकी ज़ुबाँ पर अंकित था।

टर्की के सुन्दरता को देखते हुए और वहाँ के सीरियल्स को देखते हुए मैंने एक बात नोटिस की, कि टर्की के धारावाहिकों में प्राय: वहाँ की प्रकृति को दर्शाया जाता है; चाहे वे बड़े रिज़ोर्ट के आसपास बिखरी सुषमा हो या समुद्र का वह धड़ा जहाँ तुर्की अपने पूरे शवाब पर रहता है। रात्रि में एशिया और यूरोप को जोड़ने वाली पुलों की जगमगाहट देखते ही बनती है। क्या भारतीय धारावाहिक भारत के नैसर्गिक सौन्दर्य को अपने धारावाहिकों में परिलक्षित कर पर्यटकों को नहीं लुभा सकते।

000

ग़ज़लें

अशोक 'अंजुम'

जब देखो तब आनाकानी, हय रब्बा!
बरसे कंबल, भीगे पानी, हय रब्बा!
इक दूजे की आस्तीन में रहते हैं
फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी, हय रब्बा!
रातों को गिद्धों के सपने आते हैं
जबसे बिटिया हुई सयानी, हय रब्बा!
लोकतंत्र में लोक किनारे लगा दिया
तंत्र सदा करता मनमानी, हय रब्बा!
फिर कचरे में कहीं कोई नवजात मिला
ख़त्म हुई फिर प्रेम-कहानी, हय रब्बा!
हर इक घर में ईद मने, ख़ुशियाँ आएँ
बकरों ने दे दी क़ुर्बानी, हय रब्बा!
बाबर, खिलजी बारूदों के खेल रचें
मारे जाँय चचा रमज़ानी, हाय रब्बा!

000

जैसा सोचा है क्या वैसा कभी न आएगा..
रात में दिन का वो सपना कभी न आएगा... ?
साध के चुप्पियाँ बैठा है, अरे बोल भी दे
आज निकला तो ये मौक़ा कभी न आएगा
प्यास के वास्ते चलना पड़ेगा तुझको ही
पास चल के तेरे दरिया कभी न आएगा
तेरे धोखे ने मुझे इस कदर किया हैरां
उम्र-भर अब तो भरोसा कभी न आएगा
दूर बजती हुई शहनाइयाँ बताती हैं
अब तेरी छत पर वो चंदा कभी न आएगा
आम रस्ते का मुसाफ़िर हूँ मुझे है मालूम
मेरे कदमों में गलीचा कभी न आएगा
ये जो पल है इसे कर ले मुफ़ीद ऐ 'अंजुम'
ये जो पल है ये दोबारा कभी न आएगा

000

जनवरी का ज़ख़्म शायद जून में भर जाएगा
पर लहू मेरा तेरे नाख़ून में भर जाएगा
क़त्लो-गारत की तरफ़दारी सियासत कर रही
इक धुआँ-सा देखना क़ानून में भर जाएगा
लो वहाँ भी बस्तियाँ बसने की तैयारी हुई
गंदगी के ढेर, कचरा मून में भर जाएगा
ये विदेशी ब्रांड ऊँची क़ीमतों का मसअला
क्या पता कैसी ख़लिश ख़ातून में भर जाएगा
हर तरफ से रोज़ ही चोटों पे चोटें गर मिलें
जलजला-सा क्यों नहीं फिर ख़ून में भर जाएगा

000

बेटे पर विश्वास करो यों मत घबराओ बाबूजी!
जो मन आए करो इशारा, पीयो-खाओ बाबूजी!
ख़ूब किया है जीवन-भर ही नहीं कभी आराम किया
अब सुकून से घर पर बैठो, हुकुम चलाओ बाबूजी!
कब तक बेटों की उतरन से हर त्योहार मनाओगे
कसम आपको अब की कपड़े नए सिलाओ बाबूजी!
ज़िम्मेदारियों ने जीवन-भर नहीं निकलने दिया कभी
अम्मा के संग तीरथ जाओ, गंग नहाओ बाबूजी!
बोनस आज मिला है मुझको अकस्मात् ही दफ्तर से
कहाँ ख़र्च करना है इसको, ज़रा बताओ बाबूजी!
राग-रागिनी, आल्हा-ऊदल सब के सब बिसरा बैठे
अब फुर्सत है झूम-झूम कर ढोला गाओ बाबूजी!
कष्ट कोई हो उसे छिपाकर हरदम मुस्काते रहते,
कहाँ दर्द है, यूँ न छिपाओ, हमें बताओ बाबूजी !

000

झील-सी आँखों में तब माहताब देखेंगे
पेट भर जाए तो कुछ और ख़्वाब देखेंगे
राह इस वक़्त तो काँटों से घिरी है अपनी
ज़ख्म भर जाएँ तो हम भी गुलाब देखेंगे
ज़िन्दगी हमने तुझे सौंप तो दी है हर शय
तू अता क्या करेगी ये हिसाब देखेंगे
हम उसूलों के तरफ़दार रहे एक उमर
ज़िन्दगी देती है क्या-क्या खिताब देखेंगे
जो अँधेरों का सियासत में दख़ल है ज़ारी
दीपको जागो तुम्हारा जवाब देखेंगे

000

करे कोशिश अगर इन्सान तो क्या-क्या नहीं मिलता
वो उठकर चल के तो देखे जिसे रास्ता नहीं मिलता
भले ही धूप हो काँटे हों पर चलना ही पड़ता है
किसी प्यासे को घर बैठे कभी दरिया नहीं मिलता
कमी कुछ चाल में होगी, कमी होगी इरादों में
जो कहते कामयाबी का हमें नक़्शा नहीं मिलता
कहें क्या ऐसे लोगों से जो कहकर लड़खड़ाते हैं
की हम आकाश छू लेते मगर मौक़ा नहीं मिलता
हम अपने आप पर यारों भरोसा करके तो देखें
कभी भी गिड़गिड़ाने से कोई रुतबा नहीं मिलता

000

अशोक 'अंजुम'
संपादक : अभिनव प्रयास, स्ट्रीट-2, चन्द्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद), क़्वारसी बाईपास, अलीगढ़-202002 (उ.प्र.)
मोबाइल- 9258779744
ईमेल- ashokanjumaligarh@gmail.com

इन्सान स्वभाव से ही प्रवासी है

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

इन दिनों बहुत चर्चा होती है प्रवासी शब्द को लेकर। विशेषकर साहित्य में तो प्रवासी शब्द इन दिनों कुछ ज़्यादा ही चर्चित है। हिन्दी साहित्य में एक अलग धारा हो गई है प्रवासी हिन्दी साहित्य की। जिस प्रकार स्त्री और दलित साहित्य की अगल धाराएँ बनाई गईं, या बनीं, उसी क्रम में यह भी एक प्रयोग है। प्रयोग कहने के पीछे कारण यह है कि अलग कोष्ठकों में बंद ये धाराएँ स्वत: ही कोष्ठकों में बंद नहीं हुईं, बल्कि, ऐसा किया गया है। बहरहाल वह एक लम्बी बहस का मुद्दा है कि क्यों किया, किसने किया और कब किया। मूल प्रश्न यह है कि सही किया या ग़लत किया। प्रवास शब्द अपने आप में बहुत से अर्थ रखता है और इसी से जन्म लेता है प्रवासी शब्द भी। सबसे पहले 'प्रवास' शब्द का सबसे व्यापक अर्थ तलाशना होगा, जिसमें सब कुछ समाहित हो जाए- समय भी, दूरी भी, भाषा भी, संस्कृति भी और सभ्यता भी। प्रवास का समय कितना है, प्रवास की दूरी कितनी है और उस प्रवास के कारण आपके मूल स्थान से भाषा, सभ्यता और संस्कृति के स्तर पर नए स्थान पर कितना परिवर्तन हो रहा है। प्रवासी साहित्य के बारे में कोई भी स्थापना देने के पहले समग्र रूप से इन सारी बातों का अध्ययन करना होगा।

इन्सान स्वभाव से ही प्रवासी है। या इस वाक्य को और सही किया जाए, तो यूँ कहना होगा कि पृथ्वी का हर प्राणी, स्वभाव से ही प्रवासी होता है। यह प्रवास बहुत से कारणों के चलते अपने जन्म स्थान से दूर खींच ले जाता है। कई बार वापस लौट आने के लिए, तो कई बार कभी भी वापस नहीं लौटने के लिए। पशु-पक्षी भी प्रवास करते हैं लेकिन, उनका प्रवास मौसम और प्रकृति के संकेतों पर होता है। मौसम की मार से बचने के लिए या अनुकूल परिस्थितियों की तलाश में वे प्रवास करते हैं। उनका प्रवास 'जीवन' के लिए होता है जबकि मानव का प्रवास 'बेहतर जीवन' के लिए होता है। बहुत अंतर है दोनों में। 'जीवन' के लिए प्रवास तथा 'बेहतर जीवन' के लिए प्रवास। हज़ारों किलोमीटर का फ़ासला तय करके पशु-पक्षी अपने जीवन को बचाने के लिए प्रवास कर जाते हैं और समय अनुकूल होने पर वापस लौट भी आते हैं। सूर्य की पृथ्वी के सापेक्ष स्थिति प्रतिदिन बदलती है। मकर रेखा पर 21 दिसम्बर को केन्द्रित सूर्य, 21 जून को लगभग 5190 किलोमीटर दूर कर्क रेखा पर केन्द्रित होता है। 6 माह में 5190 किलोमीटर अर्थात् प्रतिदिन लगभग 28.44 किलोमीटर की दूरी से सूर्य की स्थिति बदलती है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे जीवन में हमेशा एक सा ही मौसम रहे तो हमें प्रतिदिन 28.44 किलोमीटर प्रवास करना होगा सूर्य की दिशा में। यही कारण होता है पशु पक्षियों के प्रवास करने का। प्रतिदिन लगभग 28.44 किलोमीटर की दूरी के कारण मौसम में आते परिवर्तन के साथ चलना। मानव का प्रयास बेहतर जीवन की तलाश में होता है। जो है, जहाँ है, उससे बेहतर की तलाश में। यह प्रवास जीवन बचाने के लिए नहीं होता, क्योंकि मानव ने तो मौसम की मार से बचने के लिए साधन बना लिए हैं, खोज लिए हैं। मानव का प्रयास प्राकृतिक नहीं होता बल्कि, भौतिक होता है। भौतिकता कहती है कि जो कुछ है उससे और बेहतर हो, और बेहतर हो, और बेहतर हो। इस और... का कोई अंत नहीं है। हर 'और' के बाद एक और 'और' होता है। बेहतर का आकर्षण खींचता है।

हम सब अपने जीवन में प्रवास करते हैं, स्थाई भी और अस्थाई भी। अंतर बस यह होता है कि हमारे प्रवास अक्सर उन लकीरों के अंदर होते हैं, जिन लकीरों को देश की सीमाएँ कहा जाता है। हम इन लकीरों के अंदर ही अंदर प्रवास करते हैं और इधर से उधर होते रहते हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में यदि कोई आसाम का नागरिक, केरल जा रहा है तो वह प्रवास भले ही सीमा के अंदर है लेकिन उसमें सब कुछ बदल जा रहा है। संस्कृति, खान-पान, रहन-सहन, मौसम, वातावरण, भाषा आदि। ऐसे में उसे आप किस श्रेणी में रखेंगे ? क्या उसको प्रवासी नहीं कहा जाएगा ? क्या उसे नहीं लग रहा है कि वह किसी दूसरे देश में ही आ गया है ? हम क्यों केवल पृथ्वी पर खींची गई लकीरों, जिन्हें देशों की सीमाएँ कहते हैं, उनके आर-पार हुए स्थानांतरण को ही प्रवास मानते हैं ? पृथ्वी पर खींची हुई लकीरों को प्रकृति नहीं मानती। उसका चक्र अपने ही हिसाब से चलता है। तो यदि हम भी इन लकीरों को शून्य मान लें, तो फिर तो हर कोई प्रवासी

होगा, कहलाएगा। क्योंकि हम सभी जहाँ पैदा हुए, जहाँ पले, बढ़े, पढ़े, उस जगह को अंतत: छोड़ ही देते हैं, कहीं और चले जाते हैं। आज के इस तेज़ी से दौड़ते समय में कितने लोग ऐसे होंगे, जो जिस घर, जिस मोहल्ले, जिस शहर में पैदा हुए, सारा जीवन उसी में रहे और अंतिम यात्रा पर भी वहीं से गए।

वह जगह जहाँ आपका बचपन बीता और जहाँ आप युवा हुए, उस जगह से जब भी आप कहीं और जाएँगे तो आप प्रवासी होंगे। बात उन जड़ों की है, जिन्होंने एक स्थान पर अपने को फैलाया हुआ था, फिर पौधे को अन्यत्र स्थानांतरित करने के लिए उसे उखाड़ा गया और इस क्रम में कुछ जड़ें उसी ज़मीन में छूट गईं। वे छूटी हुई जड़ें उसके बाद जीवन भर याद आती हैं। जिनको कहीं से उखाड़ कर कहीं और लगाया गया, जिनकी जड़ें कहीं छूट गईं, वे प्रवासी हैं। इस हिसाब से स्त्रियाँ हमेशा से प्रवासी रही हैं। वे जहाँ पलती हैं, बढ़ती हैं, उस जगह को छोड़कर कहीं और बाक़ी का जीवन व्यतीत करती हैं। ख़ैर यह तो अब बेटे और बेटी दोनों के ही मामले में हो गया है कि अब दोनों ही पढ़ने के बाद आजीविका के लिए प्रवासी हो जाते हैं। मगर बेटियों की बात विशेष रूप से इसलिए कि उनको तो हमेशा से ही 'आँगन की चिड़िया' जैसे नाम दिए गए। और पक्षियों को ही प्रवास का प्रतीक भी माना जाता है। जब बेटियाँ विदा हो जाती हैं तो माँ का घर उसके बाद पूरे जीवन उनके साथ चलता है- सपनों में... यादों में... ऐसे में उनका प्रवास क्या प्रवास की श्रेणी में नहीं आएगा। वे भी तो जीवन भर के लिए प्रवास कर रही हैं। कभी न लौटने के लिए। तो, हमें सबसे पहले तो प्रवासी शब्द को सीमाओं के साथ बाँधने के बजाय और व्यापक करना होगा। उन छोटे-छोटे प्रवासों को भी जानना होगा, जो हर स्तर पर होते हैं। जब प्रवास शब्द को कुछ व्यापक किया जाएगा, तभी हम प्रवासी और प्रवासी साहित्य को ठीक से परिभाषित कर सकेंगे।

जैसे हम अगस्त 1947 के उस महाप्रवास को ही देखें। जो मानवता के इतिहास का सबसे बड़ा प्रवास था। उस प्रवास के मूल में धर्म था, राजनीति थी और महत्त्वाकांक्षाएँ थीं। ऊपर से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि वह प्रवास धर्म के आधार पर हुआ था। क्योंकि, उसमें कुछ विशेष धर्मों के लोग अपने अपने विशेष इलाक़ों की ओर प्रवास कर गए थे। या, प्रवास करने के प्रयास में मर गए थे। हम उसे बहुत आसानी से प्रवास की संज्ञा इसलिए दे देंगे क्योंकि यह प्रवास सीमाओं के आर-पार हुआ था। अभी-अभी खींची गई सीमाओं के आर-पार। ऐसे में जो साहित्यकार यहाँ से वहाँ चले गए, या वहाँ से यहाँ आ गए, उन्हें हम प्रवासी साहित्यकार कहेंगे। लेकिन अगर देखा जाए तो ऐसा हुआ नहीं। जो यहाँ से वहाँ गया, या वहाँ से यहाँ आया, वह साहित्यकार ही कहलाता रहा। मण्टो को कभी भी प्रवासी साहित्यकार नहीं कहा गया। उसके पीछे एक बड़ा कारण यह था कि जो प्रवास हुआ था, वह भले ही सीमा के आर-पार हुआ था लेकिन, उसमें सभ्यता, संस्कृति, जीवन शैली और भाषा में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ था। जो इधर था लगभग वैसा ही उधर था। इसलिए, साहित्य और साहित्यकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा इस प्रवास का, वे साहित्यकार ही बने रहे, प्रवासी साहित्यकार नहीं कहलाए। प्रभाव, शब्द का उपयोग यहाँ केवल स्थिति को बताने के लिए है।

तो फिर हम प्रवासी साहित्य को परिभाषित कैसे करेंगे ? और हम निर्मल वर्मा के बहुत से साहित्य को उस श्रेणी में रखेंगे अथवा नहीं ? क्योंकि, वे अस्थाई प्रवास करते थे। करते थे और लौट आते थे। पंछियों की तरह। लेकिन उनके साहित्य में प्रवास होता था, प्रवास किये गए देश की सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, जीवन शैली, भाषा, सब कुछ होता था। तो क्या जो साहित्य बाहर के देशों में लिखा तो जा रहा है लेकिन उसमें कहानी और बाक़ी का सब कुछ भारत का ही है, उसे हम प्रवासी साहित्य नहीं कहेंगे ? ये सारे प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। क्योंकि इन प्रश्नों के उत्तरों की रौशनी में ही हमें प्रवासी साहित्य की ठीक परिभाषा मिलेगी। असल बात यह है कि जब आप किसी ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ आपके चारों तरफ़ सब कुछ अपरिचित होता है, अंजान होता है, तब उस अपरिचित से परिचय बढ़ाना और फिर परिचित होकर उसके बारे में लिखना, शायद वही प्रवासी साहित्य कहलाएगा। भारत से किसी दूसरे देश चले जाने के बाद भारत की ही कहानी लिखना, उसे कैसे प्रवासी साहित्य कहा जा सकता है। आपकी भौगोलिक स्थिति प्रवासी की है, किन्तु आपका साहित्य अपनी भौगोलिक स्थिति नहीं बदल पा रहा है। जब तक आपका साहित्य अपनी भौगोलिक स्थिति नहीं बदलेगा तब तक उसे प्रवासी साहित्य नहीं कहा जा सकता।

साहित्य के लिए या लेखन के लिए देशाटन को पहली आवश्यकता माना गया है-

"देशाटनं पण्डित मित्रता च वाराङ्गना राजसभा प्रवेश: । अनेकशास्त्रार्थ विलोकनं च चातुर्य मूलानि भवन्ति पञ्च ॥"

यदि देशाटन को पहली ज़रूरत माना गया है, तो फिर प्रवासी लेखन या प्रवासी साहित्य से इनकार तो किया ही नहीं जा सकता। मगर प्रश्न वही है कि जो कुछ भी लिखा जा रहा है उसमें देशाटन के अनुभव कितने समाहित हैं। जब हम देशाटन करते हैं तो हमारे ऊपर दो प्रकार से उसका प्रभाव पड़ता है। पहला तो अपनी पीछे छूट गई मातृभूमि की यादें, और दूसरा जिस नए देश में हम गए हैं, उस देश की वह जीवन शैली या वातावरण जो हमारे लिए सर्वथा अपरिचित है। और ज़ाहिर सी बात है कि जब हम क़लम उठा कर (या की-बोर्ड उठाकर) लिखने बैठेंगे तो ये दोनों बातें हमारे लेखन पर हावी रहेंगी। बहुत सा साहित्य पहले कारण के चलते लिखा गया। अपने देश की याद, अपने देश के छूट जाने की कसक, आदि आदि। अंग्रेज़ी में जिसे नॉस्टेल्जिया कहते हैं। शादी के बाद ससुराल में रह रही स्त्री भी जब अपने मायके को याद करते हुए कुछ लिखती है, तो उसकी भावना भी वही होती है जो किसी नॉस्टेल्जिक प्रवासी लेखक की होती है। क्योंकि, दोनों ही प्रवास पर हैं। मगर उसके इतर एक पूरी दुनिया है जो हमारे सामने खुली है। एक नया देश, नया समाज, नए लोग। जिनके बारे में हम बहुत कुछ लिख सकते हैं। लिख सकते हैं ताकि उसे पढ़कर

दूसरे लोग जान सकें कि कैसी है वह दुनिया। जैसे निर्मल वर्मा का साहित्य उस स्थान को हमारे सामने तस्वीर की तरह ले आता है। निर्मल वर्मा की कहानियाँ पढ़ कर आप कल्पना करने लगते हैं कि वो पार्क ऐसा है, वो बैंच ऐसी है, वो लड़की, वो चर्च ऐसा है। साहित्य से पाठक यही उम्मीद रखता है। नॉस्टेल्जिक साहित्य, जड़ता को बढ़ाता है। पढ़ने वाला समझता है कि देखो जो छोड़कर गए हैं, वे भी तो यहीं को याद करके अब तक रो रहे हैं तो हम क्यों जाएँ?

अब बात की जाए प्रवासी साहित्यकारों की। बहुत से ऐसे साहित्यकार हैं जो भारत छोड़कर बरसों पहले जा चुके हैं, दूसरे देश में बस चुके हैं, मगर अपने साहित्य के माध्यम से आज भी भारत से जुड़े हुए हैं। इनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा में शामिल की जाती हैं, और पाठक इनकी रचनाओं को पसंद भी करते हैं। उषा प्रियंवदा, सुधा ओम ढींगरा, अनिलप्रभा कुमार, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, पुष्पा सक्सेना, ममता त्यागी, रेखा भाटिया (सभी अमेरिका), तेजेंद्र शर्मा, दिव्या माथुर, कादम्बरी मेहरा, उषा राजे सक्सेना, ज़किया ज़ुबैरी, अरुणा सब्बरवाल, अचला शर्मा, शिखा वार्ष्णेय (सभी इंग्लैंड), हंसा दीप, धर्मपाल महेंद्र जैन, सुमन कुमार घई (सभी कैनेडा), रेखा राजवंशी (ऑस्ट्रेलिया), अर्चना पैन्यूली (डेनमार्क), पूर्णिमा वर्मन (संयुक्त अरब अमीरात), ये उन लेखकों के नाम हैं, जिन्होंने भारत से बाहर रहते हुए भी भारत के हिन्दी साहित्य के पाठकों के बीच अपना ख़ास स्थान बना लिया है। सूरज क्यों निकलता है, कौन सी ज़मीन अपनी (सुधा ओम ढींगरा), क़ब्र का मुनाफ़ा, कल फिर आना (तेजेंद्र शर्मा), 2050, ज़हर मोहरा (दिव्या माथुर), मेहरचंद की दुआ (अचला शर्मा), अख़बार वाला (सुदर्शन प्रियदर्शिनी), साँकल (ज़किया ज़ुबैरी), हाईवे-47 (अर्चना पैन्यूली), मैं रमा नहीं हूँ (अनिलप्रभा कुमार), टूटी पेंसिल (हंसा दीप), मुखौटे (पूर्णिमा वर्मन), खूँटी पर टँगा ओवरकोट (ममता त्यागी), सुबह साढ़े सात के पहले (सुमन कुमार घई), ये कहानियाँ प्रवासी लेखकों की वे महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं, जिनको हिन्दी के पाठक ने हाथों हाथ लिया, ख़ूब पसंद किया और आलोचकों / समीक्षकों ने भी इन कहानियों पर ख़ूब चर्चा की। इन कहानियों को आप प्रवासी साहित्य के कोष्ठक में नहीं रख सकते, ये कहानियाँ हिन्दी की मुख्य धारा की कहानियों से किसी भी मामले में कमतर नहीं हैं। भाषा, शिल्प, कथ्य, सब मामलों में ये कहानियाँ हिन्दी की मुख्य धारा की कहानियों के टक्कर की हैं। यदि आप इन कहानियों को प्रवासी कहानी के कोष्ठक में रख देंगे तो उससे बड़ा अन्याय इन कहानियों और इनके लेखकों के साथ और कोई दूसरा नहीं हो सकता। इन लेखकों की रचनाओं का हिन्दी के पाठकों को इंतज़ार रहता है। ये लेखक लगातार लिख रहे हैं, कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, कथेतर... सारी विधाओं में इनका लेखक पाठक के सामने आ रहा है। ये वे लेखक हैं, जो केवल अपने लेखन के बल पर ही भारत में अपना स्थान बना चुके हैं।

इन सतत् लिखने वाले लेखकों से इतर बहुत से ऐसे नहीं लिखने वाले लेखक भी हैं, जो केवल प्रवासी होने का अतिरिक्त लाभ लेते हुए भारत के प्रवासी साहित्य के कार्यक्रमों में बहुतायत से दिखाई देने लगे हैं। इन लेखकों का लिखा हुआ कभी दिखाई नहीं देता, बस ये ही कार्यक्रमों में दिखाई देते हैं। यह प्रवासी साहित्य केंद्रित कार्यक्रमों के बढ़ने के कारण सामने आ रहा एक दुष्प्रभाव है, जिसके कारण इस तरह के अलेखक चेहरे केवल किसी अन्य देश का होने के कारण इन कार्यक्रमों में स्थान बनाते जा रहे हैं। इसलिए क्योंकि ये नहीं लिखने वाले लेखक प्रवासी साहित्य नाम के कोष्ठक में बड़ी आसानी से अपनी जगह बना लेते हैं, क्योंकि भले ही ये लेखक न हों किन्तु प्रवासी तो ये हैं ही। इन्हीं के कारण लिखने वाले लेखक इन कार्यक्रमों से दूरी बनाए हुए हैं। इस बीच एक और नया वर्ग सामने आया है प्रवासी लेखकों का, भारत में रह कर कभी-कभार कुछ तुकबंदी वाली कविताएँ लिखने वाले वे लेखक, जिनके बच्चे रोज़गार के लिए विदेश चले गए हैं। ये लोग अपने बच्चों के पास विदेश जाते रहते हैं, कई बार लंबे समय के लिए भी जाते हैं। वहाँ के साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग भी लेते हैं, और वहाँ से लौटकर भारत में प्रवासी लेखक हो जाते हैं। यहाँ के प्रवासी साहित्य के कार्यक्रमों में मंच पर नज़र आने लगते हैं, बाक़ायदा प्रवासी साहित्य पर अधिकारपूर्वक बोलते हुए। ये भी कोष्ठक की सुविधा के चलते ही प्रवासी साहित्यकार बन जाते हैं।

ये लिखने वाले और नहीं लिखने वाले लेखक, ये सभी भारत से ही बाहर गए हैं, इनमें से किसी का जन्म, शिक्षा, परवरिश सब कुछ भारत से बाहर नहीं हुआ है। कोई भी भारतीय मूल का ऐसा लेखक नहीं है, जिसके माता-पिता भारत से बाहर गए हों, और उसने वहीं जन्म लेकर फिर हिन्दी साहित्य को अपने लिए चुना हो। उसके लिए हमें अभी कुछ वर्षों का इंतज़ार और करना होगा। क्योंकि तब ही हमारे सामने वे साहित्यकार आएँगे जिनका जन्म भी भारत के बाहर उसी देश में हुआ है, जहाँ वे रह रहे हैं। अभी जो साहित्यकार लेखन में सक्रिय हैं, वे सब भारत से ही गए हैं। उनमें से कुछ तो भारत में भी लेखन अथवा पत्रकारिता में सक्रिय थे। ऐसे में इन्हें हम अपनी मुख्य धारा का ही साहित्यकार मानेंगे। कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा की तरह ये भी प्रवास पर हैं (स्थाई और अस्थाई से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता)। लेकिन, जब कुछ ऐसे लेखक भी सामने आएँगे जिन्होंने वहीं जन्म लिया, उसी माहौल में पले, बढ़े, और अब हिन्दी का लेखन कर रहे हैं, तब हमें उनके बारे में नए सिरे से सोचना होगा। यह वह दूसरी पीढ़ी होगी जो अपने साथ भारत को लेकर नहीं गई है बल्कि, उसने भारत को केवल क़िस्से, कहानियों में ही सुना है। वह पीढ़ी एक अलग प्रवासी साहित्य को लेकर आएगी। हमें इस पीढ़ी के सामने आने तक इंतज़ार करना ही होगा।

(नवनीत पत्रिका के जनवरी 2025 अंक से साभार।)

सादर आपका ही

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

सुधा ओम ढींगरा का साहित्य - महत्त्व एवं मूल्यांकन, शोध
प्रो. नवीन चन्द्र लोहानी, डॉ. योगेन्द्र सिंह
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2024

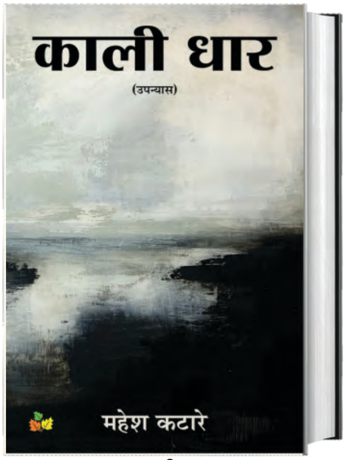

काली धार
उपन्यास
लेखक - महेश कटारे
मूल्य- 450 रुपये, वर्ष- 2025

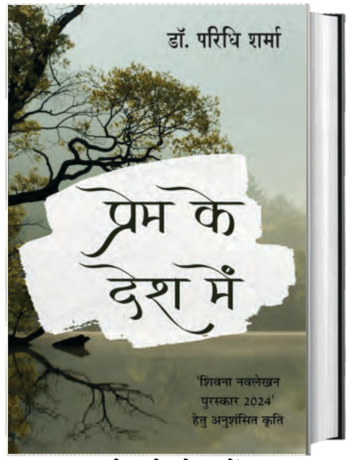

प्रेम के देश में
कहानी संग्रह
लेखक - डॉ. परिधि शर्मा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2025

कही-अनकही
संस्मरण
लेखक - डॉ. अनन्या मिश्र
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

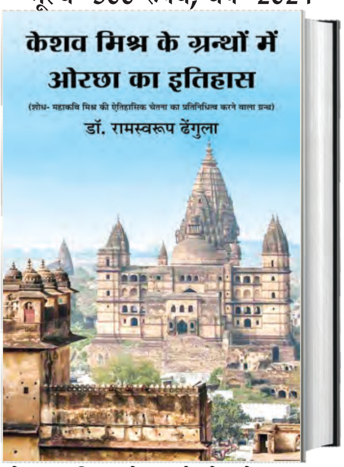

केशव मिश्र के ग्रंथों में ओरछा का इतिहास (आलोचना)
लेखक - डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला
मूल्य- 800 रुपये, वर्ष- 2025

हाजरा का बुर्क़ा ढीला है
कहानी संग्रह
लेखक - डॉ. तबस्सुम जहां
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2025

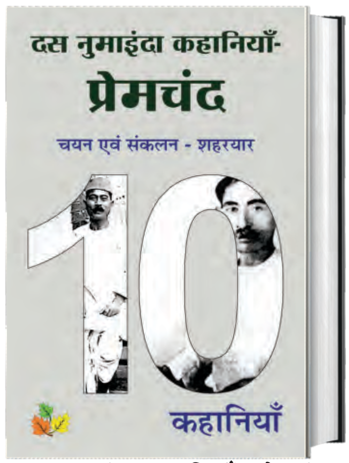

दस नुमाइंदा कहानियाँ - प्रेमचंद
कहानी संकलन
चयन एवं संकलन - शहरयार
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2025

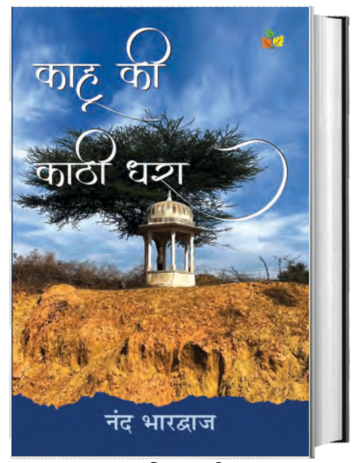

काहू की काठी धरा
उपन्यास
लेखक - नंद भारद्वाज
मूल्य- 550 रुपये, वर्ष- 2025

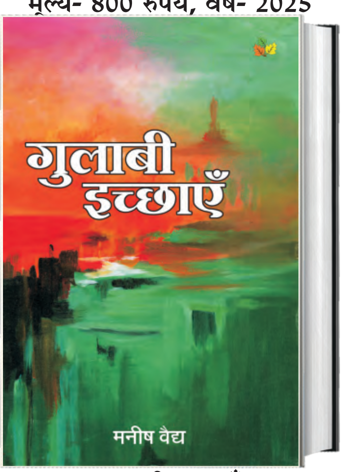

गुलाबी इच्छाएँ
कहानी संग्रह
लेखक- मनीष वैद्य
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

गोदान
उपन्यास
लेखक - प्रेमचंद
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2025

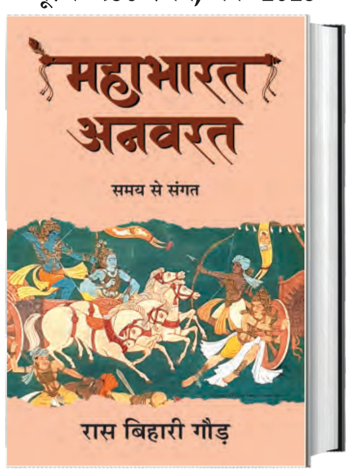

महाभारत अनवरत
कविता संग्रह
लेखक - रास बिहारी गौड़
मूल्य- 500 रुपये, वर्ष- 2025

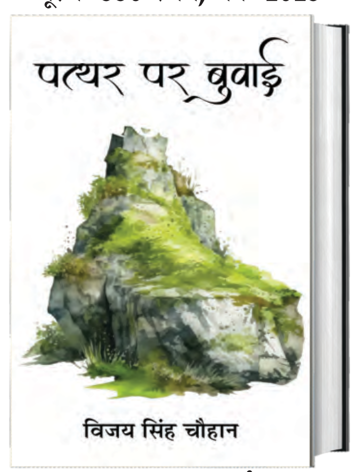

पत्थर पर बुवाई
लघुकथा संग्रह
लेखक - विजय सिंह चौहान
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2025

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com, वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

कथा-सप्तक - उषा प्रियंवदा
कहानी संकलन
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

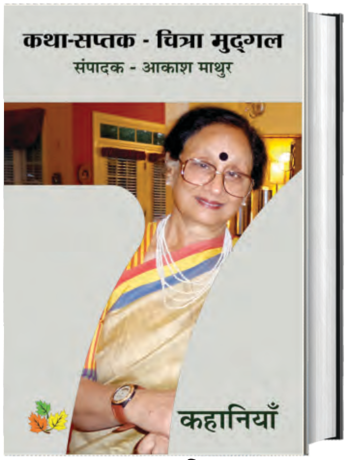

कथा-सप्तक - चित्रा मुद्‌गल
कहानी संकलन
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

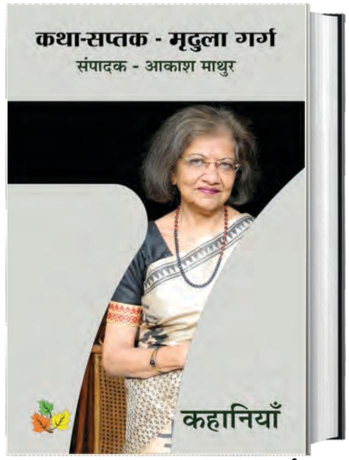

कथा-सप्तक - मृदुला गर्ग
कहानी संकलन
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2025

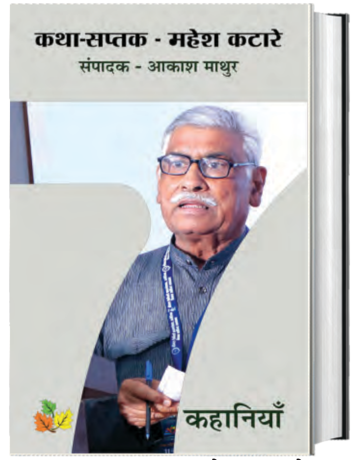

कथा-सप्तक - महेश कटारे
कहानी संकलन
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

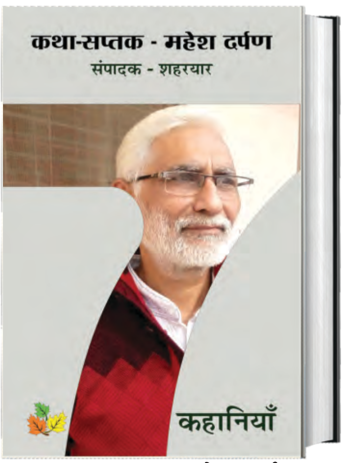

कथा-सप्तक - महेश दर्वण
कहानी संकलन
संपादक - शहरयार
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2025

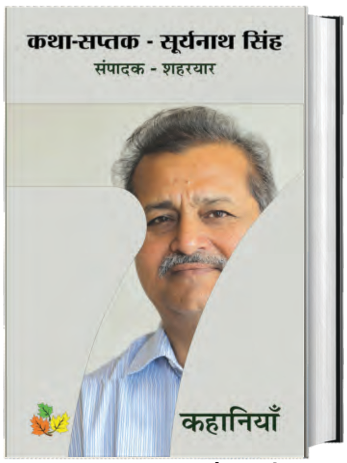

कथा-सप्तक - सूर्यनाथ सिंह
कहानी संकलन
संपादक - शहरयार
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

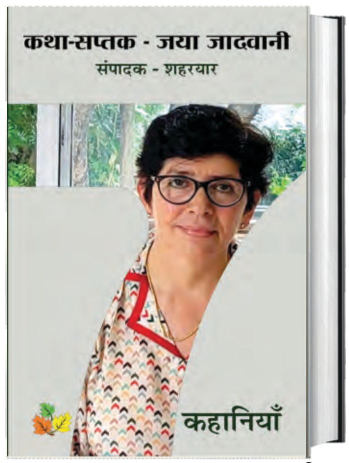

कथा-सप्तक - जया जादवानी
कहानी संकलन
संपादक - शहरयार
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2025

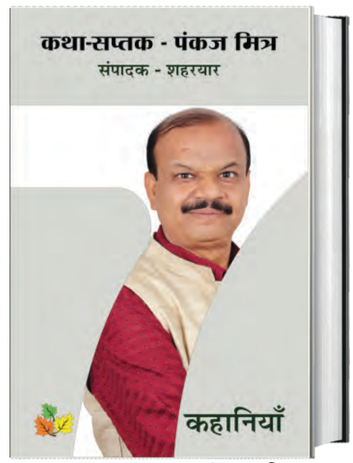

कथा-सप्तक - पंकज मित्र
कहानी संकलन
संपादक - शहरयार
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2025

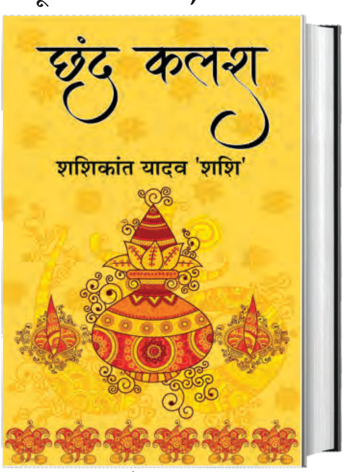

छंद कलश
छंद संग्रह
लेखक - शशिकांत यादव 'शशि'
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

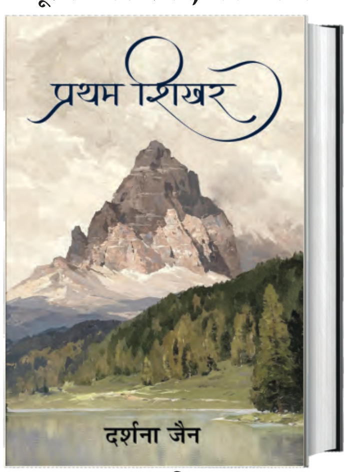

प्रथम शिखर
लघुकथा संग्रह
लेखक - दर्शना जैन
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

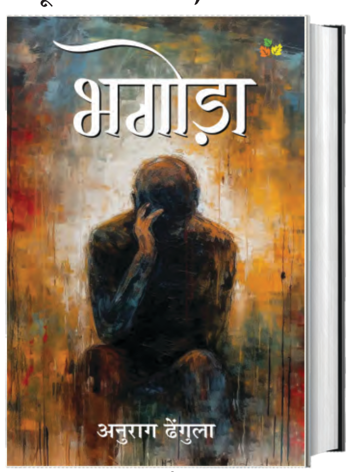

भगोड़ा
कहानी संग्रह
लेखक - अनुराग ढेंगुला
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

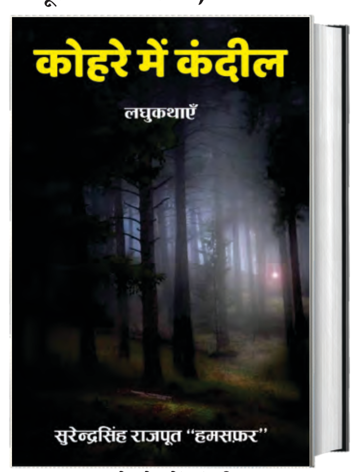

कोहरे में कंदील
कहानी संग्रह
लेखक - सुरेंद्र सिंह राजपूत
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), व्हाट्सएप- +91-6265665580
ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com, वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नए सेट में शामिल पुस्तकें

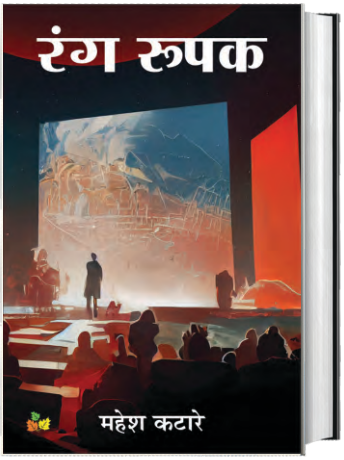

रंग रूपक
नाटक
लेखक - महेश कटारे
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2025

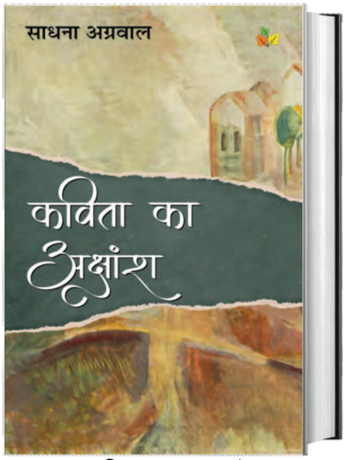

कविता का अक्षांश
आलोचना
लेखक - साधना अग्रवाल
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

ग्लोबल गाँव में स्त्री
आलोचना
संपादक - भालचन्द्र जोशी
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2025

पत्तियों पर काँपता कोमल गांधार
कविता संग्रह
लेखक - पल्लवी त्रिवेदी
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

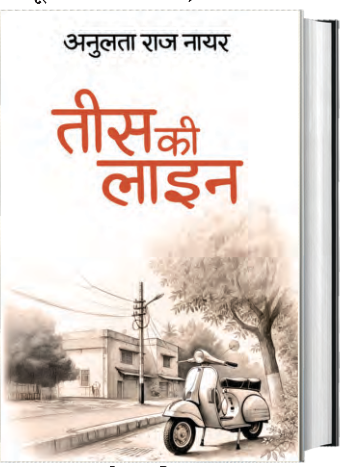

तीस की लाइन
उपन्यास
लेखक - अनुलता राज नायर
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2025

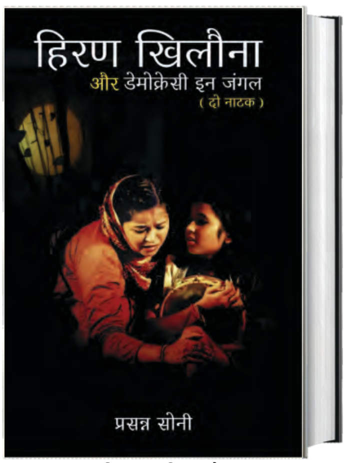

हिरण खिलौना
नाटक
लेखक - प्रसन्न सोनी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

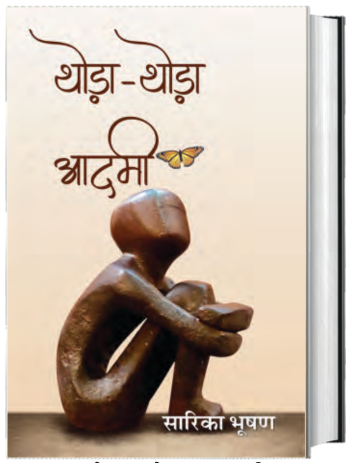

थोड़ा-थोड़ा आदमी
कविता संग्रह
लेखक - सारिका भूषण
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2025

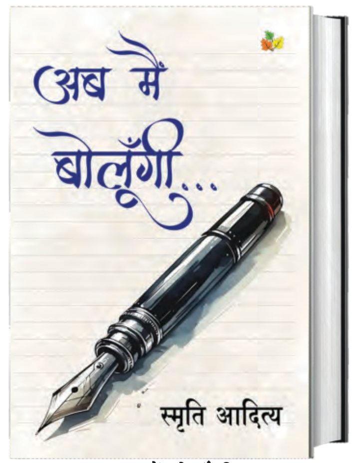

अब मैं बोलूँगी...
डायरी
लेखक - स्मृति आदित्य
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2025

21 किताबें ग़ज़लों की
आलोचना
लेखक - नीरज गोस्वामी
मूल्य- 230 रुपये, वर्ष- 2025

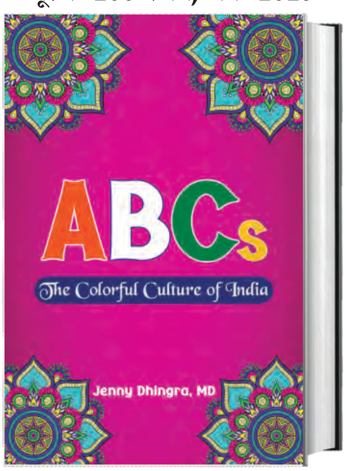

ABCs
English Alphabet Book
Writer -Jenny Dhingra, MD
Price- 700Rs., Year- 2025

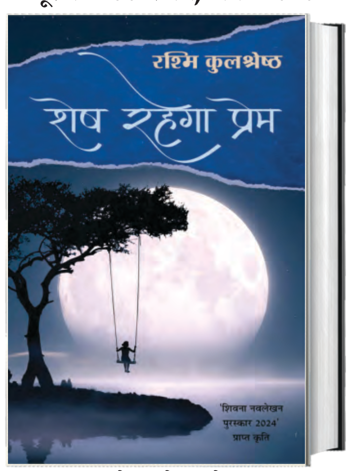

शेष रहेगा प्रेम
उपन्यास
लेखक - रश्मि कुलश्रेष्ठ
मूल्य- 350 रुपये, वर्ष- 2025

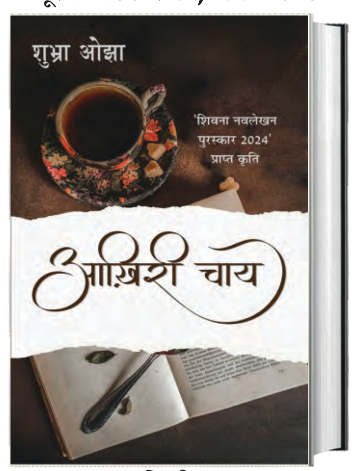

आख़िरी चाय
कहानी संग्रह
लेखक - शुभ्रा ओझा
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2025

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेंसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562-405545, 07562-490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार)
व्हाट्सएप- +91-6265665580, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
WhatsApp +91-62656 65580 https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
available at amazon https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- महामंडलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. विजय सक्सेना।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- महामंडलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. विजय सक्सेना।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- महामंडलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. विजय सक्सेना।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2023-24 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- महामंडलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा वरिष्ठ चिकित्सक डॉ. विजय सक्सेना।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।